बड़ा आदमी

वह कभी बहुत छोटा आदमी था, बहुत ही छोटा। पर वह बड़ा आदमी बन गया। बड़े पैसे वाला। कैसे बड़ा आदमी बना? बड़ा आदमी कैसे बना जाता है?

आप सोचेंगे—इसके लिए उसने क्या किया होगा?

वास्तविकता यह है—उसने क्या नहीं किया होगा?

यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' का यह नवीनतम रहस्यमय उपन्यास राजस्थानी वातावरण और पात्रों के माध्यम से समूचे मानव-समाज की एक समस्या पैसा–पैसा–पैसा पर कलापूर्ण ढंग से प्रकाश डालता है। कथा बेहद रोचक है।

यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'

मूल्य	:	चार रुपये
प्रथम संस्करण	:	मार्च, १९६१
प्रकाशक	:	राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली
मुद्रक	:	युगान्तर प्रेस, दिल्ली

भयंकर आग की लपटों से पूर्व की दिशा जल उठी। रेलगाड़ी विशाल अजगर की तरह पृथ्वी पर चल रही थी। उसकी गति इतनी धीमी थी मानो वह बड़ा अजगर अपने पेट में अनेकों इन्सानों को समाविष्ट किए हुए रेंगता हुआ चल रहा हो। कारण स्पष्ट था क्योंकि गाड़ी गोल घुमाव घूम रही थी। अब मेरा मुख उस आग के सम्मुख आ गया था। मेरी कल्पना एक आदरसूचक और पवित्र वाक्य की रचना कर बैठी—'यह आग हमारे सूर्य भगवान हैं, हम सबको जीवन देनेवाले।' कई [illegible] मेरी ओर देखने लगे।

गाड़ी कुछ दूर और चली। अब सूर्य का गोला क्षितिज पर तेज़ी से घूमता हुआ दिखलाई पड़ने लगा था। उसके समीप विस्तृत अरुण आभा में तैरते बादलों के टुकड़े किनारों से एक हल्का ताम्र-पीत प्रभाव देने लग गए थे। वह नैसर्गिक दृश्य अन्तराल की गहराइयों में छिपी मेरी उदासी और घुटन को दूर करके मुझमें अलौकिक ताजगी व आनन्द भर रहा था। मैंने खिड़की के बाहर अपनी गर्दन निकालकर दो-तीन लम्बे सांस लिए और पुनः अपनी सीट पर बैठ गया।

गाड़ी चल रही थी।

फर्स्ट क्लास का कम्पार्टमेंट। संयोग समझिए, अभी उसमें मेरे सिवाय कोई नहीं था। थोड़ी देर पहले उसमें मेरे साथ कोई मजिस्ट्रेट महोदय थे। बड़े ही दुःखी और परेशान। मितभाषी और साधारण बोलचाल में भी उनका टोन हुक्मराना था। उनका नौकर एटेण्डेण्ट्स कम्पार्टमेंट में था। हर स्टेशन पर आकर अपने स्वामी को देखता और चला जाता था। वह एक अत्यन्त सूखा-दुबला आदमी था। उसकी धंसी-धंसी आंखों में आयु की दीप्ति और गहराई दोनों थीं। वह भी अपने स्वामी की तरह बहुत कम बोलता था।

मजिस्ट्रेट साहब मेरे सामने ही डिब्बे में आए थे। बहुत देर तक वे अपने

कागजों में तन्मय रहे। मैंने भी कोई विशेष दिलचस्पी नहीं दिखाई। अन्त में उन्होंने मुझसे एक समाचारपत्र मांगा। यह पत्र फिल्मी मासिक था। रेल के सफर में मैं समझता हूं कि साधारणतया लोग जासूसी तथा फिल्मी पत्र ही पढ़ना अधिक पसंद करते हैं। मैंने उन्हें एक पत्र दे दिया। वे पत्र को पढ़ने लगे। हठात् उनकी दृष्टि फिल्मी पत्र में छपी एक घटना पर पड़ी। उनके चेहरे पर विस्मय की रेखाएं तैर उठीं। वे कुछ देर तक उसे पढ़ते रहे। अन्त में मुझसे बोले, "क्यों भाई साहब, आप इस न्यूज़ को कहां तक निष्पक्ष समझते हैं ?"

मैंने उस न्यूज़ को पढ़ रखा था। अपने-आपको गंभीर बनाकर, क्योंकि मैं उन महोदय के प्रभावशाली व्यक्तित्व से आतंकित नहीं होना चाहता था, बोला, "यह न्यूज सही है।"

"इसकी शब्दावली कहां तक निष्पक्ष है।"

"मतलब ?"

"मतलब यह है, सम्पादक ने लिखा है कि नारी-जाति की यह दुर्दशा असह्य है।"

"सही है। किसी नारी का, चाहे वह आपकी पत्नी ही क्यों न हो, आप बीसवीं सदी में एक व्यापारिक वस्तु की तरह उपयोग नहीं कर सकते। पत्नी को जूए में हार जाना देश और समाज के लिए कलंक है।"

"मुझे इस तरह की शब्दावली से चिढ़ है। वस्तुतः सारे पत्रकार, सारे साहित्यकार, सारे राजनीतिक नेता नारी-जाति के नाम पर सबको बरगलाना चाहते हैं। वस्तुतः नारी जैसी भयंकर कोई भी वस्तु नहीं होती। लगातार नारी के शोषण के नारों ने हमें निष्पक्ष व तटस्थ रूप से यह सोचने नहीं दिया है कि वह पुरुषों के द्वारा कहां तक स्वतन्त्र और सम्मानीय रही है। हमने उन्हें कितना आदर दिया है।...पर आज नारी-जाति के उत्थान को लेकर लिखना या भाषण देना एक आम फैशन हो गया है, हालांकि इसमें किसी स्थायी प्रभाव की कोई गुंजाइश नहीं दिखती है।"....कहकर वे मौन हो गए। उनकी पलकों की छाया में हल्का-हल्का दर्द तैर उठा। वे अपनी पलकों को बन्द करके कुछ दे

तक जड़वत् बैठ रहे ।

गाड़ी चल रही थी, द्रुतगति से ।

"मैं यह नहीं मानता । यहां सचमुच नारी का अत्यन्त शोषण हुआ है । यहां नारी का अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व व अस्तित्व कुछ भी नहीं रहा है। वह केवल एक वस्तु है । एक गुलाम है । एक बच्चा पैदा करनेवाली मशीन है ।"

मेरा इतना कहना था कि वे मेरी ओर उन्मुख हुए । उनके चेहरे पर आक्रोशजनित व्यथा के धुंधले-धुंधले आवरण छा गए । आन्तरिक व्यग्रता अधिक होने के कारण वे कुछ देर तक बोल नहीं सके । अन्त में वे कहने लगे, "औरत सांपिन है, जहरीला तीर है, वह एक ऐसा फूल है, जिसकी सुगन्ध में मृत्यु छिपी रहती है । वह ऐसा चन्दन का वृक्ष है, जिसके स्पर्श-मात्र से उससे लिपटे अदृश्य नाग डसने लगते हैं ।"

मैं नारी के प्रति उनके इतने निम्न, हेय व एकपक्षीय विचार सुनकर घृणा से भर उठा । कुछ कहना चाहता था कि वे फिर बोले, "आप अनुभव-हीन हैं । आपमें जीवन का तजुर्बा नहीं है । आप सदा अखबारों व कहानियों में नारी के शोषण की घटनाएं पढ़ते हैं और समझने लगते हैं कि नारी का यहां शोषण होता है । नारी का यहां कोई सम्मान नहीं है । पर नारी वास्तव में बहुत ही कपटी और खतरनाक है ।······मैं आपको एक किस्सा सुनाता हूं ।"

और वे मेरे उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही कहने लगे, "मेरी अदालत में वकील थे । नामी वकील । अत्यन्त प्रभुत्वसम्पन्न । उनकी पहुंच बड़ी-बड़ी ह थी । काफी अच्छी प्रेक्टिस थी । दो-तीन हज़ार रुपये सहजता से कमा े थे । वे वकील भी फौजदारी के थे । अतः लोग वैसे ही उनसे घबराते थे । र तो और, वे सच्चे-झूठे किस्से बनाकर अपने विपक्षी को परेशान करते रहते । इसके साथ-साथ वे अत्यन्त कठोर परिश्रमी, नियमबद्ध एवं अध्यवसायी । रात-रात-भर किताबी कीड़ों की तरह कानून की धाराओं में खोए रहते थे । नियमित परिवार और कायिक सुख से परे उनका सारा जीवन अपने मुवक्किलों में मशगूल रहता था । एक श्रेष्ठ वकील के समस्त गुण उनमें थे

और वे अवश्य ही चंद दिनों में भारत के श्रेष्ठ वकीलों की पंक्ति में आ जाते पर····।" वे कहते-कहते चुप हो गए। उनकी चुप्पी मेरी जिज्ञासा को बढ़ा गई। बात ऐसी जगह पर उन्होंने छोड़ी थी कि मेरी उत्कंठा जाग उठी। मैंने उनकी ओर प्रश्न-भरी दृष्टि से देखा। वे मेरी दृष्टि के मर्म को समझ गए और सिगरेट जलाकर बोले, "पर उनकी तमाम जिन्दगी अपनी पत्नी के कारण बरबाद हो गई।" वे सिगरेट का धुआं ऊपर की ओर छोड़ रहे थे। मुझे उनपर गुस्सा आ रहा था। गुस्सा इसलिए आ रहा था कि उन्होंने मुझे सिगरेट ऑफर नहीं की। 'यह कैसा मजिस्ट्रेट है?' मैंने मन ही मन कहा और मैं उनकी ओर अनिमेष दृष्टि से देखता रहा।

वे बोले, "आप कहते हैं, ये स्त्रियां अच्छी होती हैं; इनका आदर नहीं हुआ; इनका यहां सम्मान नहीं हुआ है। पर मैं आपको पूछता हूं कि एक स्त्री जिसका पति रात-दिन अपनी पत्नी की प्रसन्नता के लिए काम करता है, जो एक बच्चे की मां है, जिसका महीने-भर का बाज़ारू खर्च लगभग हज़ार रुपये है, वह पत्नी अपने पति को धोखा देकर पर-पुरुष से रंगरेलियां मनाती है—मैं कहता हूं कि मैं यह नहीं सह सकता, सह क्या, कह भी नहीं सकता उसकी कथा। लेकिन मैं आपको अवश्य कहूंगा। इसलिए कहूंगा क्योंकि आप भावना में बह गए हैं। आपने एकपक्षीय निर्णय ले लिया है। उस वकील साहब की पत्नी इतनी सम्पन्नता के बावजूद एक युवक से प्यार कर बैठी। उस युवक से जो रेलवे का एक अदना अधिकारी था और स्त्रियों को फुसलाने के हुनर में अत्यन्त प्रवीण था; वकील की पत्नी ने उसे अपना धर्म-भाई बनाया। क्योंकि भाई बनाए बिना वह उसके साथ स्वतन्त्रतापूर्वक नहीं आ-जा सकती थी और वह घृणित कर्म भी नहीं कर सकती थी। इसमें एक यह भी कारण था कि वकील साहब की झगड़ालू प्रवृत्ति से सभी लोग परिचित थे और उनसे अच्छी-अच्छी हस्तियां भी भय खाती थीं।······तो वह अपने तथाकथित भाई के साथ गुलछर्रे उड़ाने लगी। एक दिन वकील साहब को भी इस पाप का रहस्य मालूम हो गया और उन्होंने अपनी पत्नी को डांटा। पत्नी जिसे मैं कुलटा से अच्छी संज्ञा नहीं दे सकता, जिसकी स्मृति-मात्र से मेरी रग-रग में पीड़ादायक

घृणा का संचार होता है, वह पत्नी स्पष्ट शब्दों में बोली, 'मैं इससे प्यार करती हूं। अगर आपने अधिक विरोध-अवरोध किया तो मैं आपको सदा-सदा के लिए छोड़ दूंगी।'

" वह भी एक नारी है। आप नारी-मात्र की प्रशंसा करते हैं, जिसके शोषण की बड़ी-बड़ी कहानियां लिखी जाती हैं। क्या वह वकील-पत्नी जो नारी भी है, एक पिशाचिनी से कम है ? आप जानते हैं कि इसके बाद उस वकील साहब का क्या हुआ ? मस्तिष्क का संतुलन बिगड़ गया और वे पागलों की तरह कभी करुण विलाप करते रहे और कभी तीखा प्रलाप।...... सच, आप उसे देख लेते तो कराह उठते। वह चाहता तो उसे छोड़ भी देता पर वह अपनी पत्नी को खूब चाहता था, अपने-आपसे भी अधिक। "

मैंने उनसे साफ कह दिया, "मैं आपकी बातचीत में तनिक भी दिलचस्पी नहीं ले सकता हूं। मैं नारी को पवित्र, ज्योतिर्मयी, वरदा मानकर चलता हूं। ...और आपको बता सकता हूं कि इसमें भी उसी वकील का कोई दोष है। शायद वे क्लीव हों।"

"नहीं !" मजिस्ट्रेट साहब चीख-से पड़े।

"उन्होंने कभी भी उसके भाव-पक्ष को संतुष्ट करने की चेष्टा-प्रचेष्टा नहीं की होगी। प्रायः देखा गया है कि ये वकील लोग अपने धंधे में इतने खो जाते हैं कि उन्हें जीवन के दूसरे कार्य-कलापों की तरफ रुचि भी नहीं होती।" मैंने पूछा।

"ऐसा आप कैसे कह सकते हैं ?"

"अनुमान है।"

"मैं आपको प्रमाणित रूप से कह रहा हूं। सप्ताह में कई रातें ऐसी उदात्त-पूर्ण क्षणों में गुज़रती थीं कि वे दोनों पत्नी-पति अपने को फरिश्तों से कम सुखी नहीं समझते थे।"

"पर आप यह कैसे कह सकते हैं ?" मैंने भी शब्दों पर जोर देकर कहा।

मजिस्ट्रेट साहब एकदम झल्ला उठे। उनके ऊपर के दांतों ने निचले होंठ को काट लिया। उनका अंग-अंग कांप उठा। बोले, "मैं आपको सही कहता

हूं कि वकील पौरुषमय हैं। वे वेचारे छले गए हैं। उनका जीवन एक पत्नी के कारण नष्ट हो गया। वह एक जन्मजात कुलटा थी। उसे वह अवगुण अपनी मां से मिला था।"

"मैं नहीं मानता।"

मजिस्ट्रेट साहब बीच में ही तीव्र स्वर में बोले, "आप मेरी बात के नायक को देखना चाहते हैं तो लीजिए……।" वे एकदम चुप हो गए। मैं उन्हें विस्मित-सा देखने लगा। मेरी आंखें उनकी आंखों में निहित उस अधूरे वाक्य की पूर्णता ढूंढने लगीं। उनके अन्तस् के भाव उनकी व्यथापूरित आंखों में इस स्पष्टता से दीप्त हुए कि मुझे लगा कि अपनी बात के नायक वे खुद हैं क्योंकि प्रायः मनुष्य अपने जीवन के बदनामीसूचक घटिया किस्सों को दूसरों पर आरोपित करके ही कहता है। कहने से उसके हृदय का बोझ कम होता है और उसे एक विचित्र आनंद की अनुभूति होती है, जिसका अहसास उसे नहीं होता। अक्सर हम किसीके प्रति समवेदना प्रदर्शित करते हैं, तब हमारी आंखें सजल हो उठती हैं, कंठ रुद्ध हो जाता है और हम बार-बार दुःख, कष्ट और शांति जैसे शब्दों का प्रयोग करते हैं पर उन सबके अन्तस् की ध्वनि में एक अनिर्वचनीय आनंद झलकता रहता है। तब लगता है, अभिनय से दूर स्वाभाविक रूप से किए किसी भी कार्य में, चाहे वह सुख का हो या दुःख का, एक अनूठा आनंद ही मिलता है और इस आनंद का स्रोत ही हमारे जीवन की वास्तविकता है। यही वास्तविकता उद्विग्न और आकुल मजिस्ट्रेट साहब की आंखों में थी।

मुझे अपने पर एकाग्र हुए देख वे घबरा उठे और जैसे वे अपनी भूल का सुधार करते हुए बोले, "मैं आपको अपनी बात के बदनसीब नायक को भी दिखा देता। पर क्या करूं, मैं और आप अभी इसके लिए तत्पर नहीं हो सकते। अभी मैं भी……।"

न मालूम वे क्या कहता रहे, मुझे पता नहीं। पर मैं अपने-आपमें खो गया। कोई स्टेशन आनेवाला था। गाड़ी की रफ्तार धीमी हो गई और इंजन बार-बार सीटी दे रहा था। पता नहीं, मेरे मन में बार-बार यह प्रश्न क्यों उठ रहा था कि हो न हो, उस कथा के नायक यही हैं। उनकी परेशान आंखें,

उनकी झुंझलाहट और उनका आक्रोश, उनकी नारी के प्रति तीव्र गहरी घृणा''''
मैं उन्हें देखता रहा। वे मेरी दृष्टि को अधिक देर तक नहीं सह सके। कांप-कांप-से गए। कदाचित् वे समझ गए होंगे कि मैं उनकी कहानी की मूल प्रेरणा को समझ गया हूं। वे एक बार कड़ककर बोले, "आप मुझे इस तरह क्यों घूर रहे हैं?"

मैं निरुत्तर रहा। उनकी गम्भीर आवाज़ के कारण मैं क्षण-भर विमूढ़ रहा। तभी वे तनिक हताश कोमलता से अपने हाथ से मुझे आगाह करते हुए बोले, "आपको अब विश्वास हो गया होगा कि स्त्रियां सचमुच सांपिनें होती हैं।"

और मैंने सम्मोहित प्राणी की तरह सिर हिलाकर कहा, "जी।"

वे प्रसन्न हो गए और स्टेशन के आते ही उतर गए। मैं कुछ देर तक उनके बारे में सोचता रहा। हमें दूसरों के दुःख और परेशानी की कहानियों को दुहराने में आनंद की अनुभूति होती है। मैं बार-बार उस मजिस्ट्रेट की इस कथा को लेकर मन ही मन आधारहीन प्रश्न बनाता रहा और उसके उत्तर भी मैं अपने-आपको विश्लेषणात्मक ढंग से देता रहा। पर जैसे ही गाड़ी रवाना हुई, वैसे ही डिब्बे में वही घोर एकांत छा गया और उस एकांत में मैं पुनः अपनी यात्रा के कारण पर विचार करने लगा।

मैं आपको पहले अपने बारे में बता देना चाहता हूं। कि मुझे शुरू से ही जासूसी करने का बड़ा शौक था। कोई भी घटना क्यों न हो, मैं उसपर लैब्क के जासूसी उपन्यासों के आधारों पर खोज आरम्भ कर देता था। नतीजा कुछ न निकले पर फिर भी मेरे प्रयत्न जारी रहते थे।

जब मैंने स्कूली शिक्षा समाप्त कर दी तब मैंने अपने पिताजी से अपनी यह हार्दिक, जासूस बनने की, इच्छा जाहिर की। वे आग-बबूला हो गए और उन्होंने मुझे कई जासूसों की दुःखांत घटनाएं सुना दीं। मैं भी डर गया। पर मैं चाहता था, कुछ इसी तरह का जॉब।''''''तब मैंने एक साप्ताहिक का संवाददाता होने का निश्चय किया। क्योंकि एक संवाददाता का कार्य, अगर वह अपने कर्तव्य के प्रति ईमानदार है तो, एक जासूस से कम नहीं है। छोटी से

छोटी बात के सत्य को पा जाना कोई खेल नहीं हो सकता। तो मैं संवाददाता हो गया और आज तक हूं। ऐसा संवाददाता जिसका मुख्य पेशा सनसनीखेज घटनाओं की तह में जाना होता है। अखबार खूब बिके और मेरा व्यापारी मालिक मुझसे खुश रहे। साथ ही मुझे अपने हुनर में श्रेष्ठ माने, यही मेरा लक्ष्य है।

और आज भी मैं एक विचित्र चरित्र के जीवन की सही-सही जानकारी पाने के लिए जा रहा हूं। मेरा एक अन्यतम मित्र अपने घर से एकाएक पलायन कर गया। उसने एक पत्र में अपने-आपको खत्म करने की घोषणा भी की है। पर कारण अभी तक अज्ञात है। दोस्त की मृत्यु की कल्पना के कारण मेरा मन असीम व्यथा से भर आया है और मैं अपने-आपको व्यवस्थित करके सोच रहा हूं—ऐसा कौनसा कारण हो सकता है कि उसे इतनी मर्मान्तिक पीड़ा और ग्लानि हुई जिसके कारण वह आत्महत्या के लिए विवश हो गया।······ और फिर मैं अपने मित्र की कायर मनोवृत्ति से परिचित था। क्या एक कायर आदमी सहजता से आत्महत्या कर सकता है? तब मैं आत्महत्या के 'प्रकार' के बारे में सोचने लगा। मेरा मन गहरी उदासी में डूब गया। सचमुच एक सच्चे दोस्त के लिए इससे बड़े दुर्भाग्य की बात क्या हो सकती है कि उसका एक दोस्त आत्महत्या कर ले। मैं समझता हूं कि उसने इंजन के भयानक चक्कों के नीचे अपनी गर्दन रख दी होगी?······पर यह सम्भव नहीं, मेरे मन का संवाद-दाता बोला कि वह इंजन की भयावह मृत्युसूचक आवाज सुनकर ही कांप गया होगा।······फिर तालाब में डूब कर? नहीं, जिस आदमी का मन दुर्बल होता है, वह तालाब के किनारे तक जाकर वापस लौट आता है और मेरा मित्र अत्यन्त कायर है।······फिर वह छत पर गया होगा, सड़क पर चलते बौने लोगों को देखकर उसका अन्तस् आर्तनाद कर उठा होगा। मृत्यु की दुष्कल्पना के मारे वह उन्मादग्रस्त प्राणी की तरह चीखकर नीचे भागा होगा। नहीं, नहीं, यह भी संभव नहीं है।······तब? तब मेरे मन में सहसा यह शब्द बिजली की तरह कौंध गया—'ज़हर'। सबसे सहज ज़हर खाना ही मुझे लगा, पर संतोष में, मेरे मित्र का नाम यही है, ऐसा साहस कहां है? हालांकि ज़हर दूध के साथ अमृत की तरह पिया जा सकता है, मिठाई के बीचोंबीच डालकर

उसके कड़वेपन को दूर किया जा सकता है पर मृत्यु जैसी भयानक कल्पना को क्या वह तत्काल भूल पाएगा ? क्या वह धीरता से इन सबके बारे में विचार कर पाएगा ? उसकी उत्तेजित स्मृति क्या मृत्यु के उपरान्त के निविड़ अन्धकार जैसे अस्पष्ट पीड़ामय आघातों को भूल जाएगी ? नहीं ?''''''''तब मुझे उसका करोड़पति होना याद हो उठा और वह जब करोड़पति है तब उसकी उंगुली में अवश्य हीरे की अंगूठी होगी। तब मेरे सम्मुख कई लोककथाएं नाच उठीं। उनके कई नायकों ने अपना अंत हीरे खाकर किया था।''''मेरा रोम-रोम सिहर उठा। क्या संतोष ने सचमुच आत्महत्या कर ली ? और मैं एकाएक हंस पड़ा। मुझे लगा कि ये केवल एक उपन्यासकार की ही कल्पनाएं हो सकती हैं ? एक संवाददाता का कर्तव्य इससे पृथक् होता है। वह सही स्थिति को देखे बिना किसी तरह की निराधार बातें नहीं विचारता। क्या पता कि उसे यह खबर ही झूठी दे दी गई हो ? मैं पुनः उस मजिस्ट्रेट पर अपने-आपको केन्द्रित करने लगा।

सूरज की किरणें डिब्बे में अठखेलियां करने लग गई थीं। गाड़ी की गति के साथ कई किरणें आ-जा रही थीं। मेरा ध्यान एक पल के लिए उनपर रुकता और फिर अपने जलते प्रश्न पर आ जाता था। मेरी आत्मा ने एक बार सम्पूर्ण विश्वास के साथ कहा, 'संतोष आत्महत्या नहीं कर सकता। पिताजी से झगड़ा होगा और वह घर से भाग गया होगा—केवल आतंक फैलाने के लिए।'

इंजन ने ज़ोर की सीटी दी।

स्टेशन दिखलाई पड़ने लगा था। मैंने अपना बिस्तर और सामान ठीक किया। अब इंजन निरन्तर सीटी दे रहा था। देखते-देखते उसकी गति धीमी हो गई। मैंने लपककर बाहर की ओर देखा—मुझे खिड़कियों पर गर्दनों की एक लम्बी कतार दिखलाई पड़ी। प्रायः लोग हाथ हिला रहे थे। कुछएक के हाथों में रूमाल थे। अप्रत्याशित एक रूमाल उड़ता हुआ गया, मैंने देखा—रूमाल उड़ानेवाले के तीसरे डिब्बे में खंजन नयनवाली एक युवती मुक्तहास कर रही है। पर वह रूमाल वह युवती नहीं पकड़ सकी। मैंने तुरन्त अपने पत्र के लिए

एक 'बॉक्स न्यूज' बनाने की सोची।

गाड़ी प्लेटफार्म में प्रवेश करने लगी।

मैंने चारों ओर देखा। मुझे विश्वास था कि मेरी अगवानी करने के लिए संतोष के पिता सेठ श्री फतहचंद अवश्य आए होंगे। मैं अपनी नजर उस भीड़ पर दौड़ा रहा था जो अपने-अपने सम्बन्धियों की अगवानी करने आई थी। मेरी नजर खोजती हुई सेठजी पर पड़ी—स्थूल शरीर, गेहुंआ रंग, बड़ी-बड़ी तेज आंखें, राठौड़ी मूंछें और ऊंची-ऊंची भौंहें जो प्रायः चलचित्रों में मेक-अप द्वारा ही बनाई जाती हैं। मैंने हाथ हिलाकर उन्हें अपनी ओर आकर्षित किया। गाड़ी रुक गई थी। मैंने एक बार उन्हें और नमस्कार किया, उत्तर में उनकी दंभपूर्ण मुस्कान उनके अप्रिय मोटे अधरों पर बिखर गई। उनकी उजली दंत-पंक्ति को देखकर मुझे लगा कि सेठजी ने कृत्रिम बत्तीसी बंधवा ली है क्योंकि इसके पहले मैं उनसे एक औद्योगिक संस्था के उद्घाटन-भाषण में मिला था और तब उनके मुंह में बहुत-से दांत नहीं थे और जब वे अपने भाषण के प्राणवान हिस्सों पर बोलते थे तब मुझमें उनके प्रति एक अप्रिय और बेरुखी की भावना जाग जाती थी।

अब वे मेरे सन्निकट आ गए थे। उनके पीछे एक-सी पोशाक पहने तीन नौकर और कई हाजिरिये थे। उन्होंने मुझसे टिकट मांगा और उन नौकरों को सामान लाने का आदेश देकर मुझसे कहा, "आओ चलें।"

बाहर एक बड़ी कार खड़ी थी। हम दोनों उसमें बैठे और कार हवा से बातें करने लगी।

एक कोठी। भव्य और आकर्षक। लाल-लाल पत्थर पर सामंती कला का अंकन। कहीं-कहीं मिस्री सभ्यता का मिश्रण।

कार वहां पहुंची।

एक दरबान ने आकर कार का दरवाजा खोला। फिर सलाम करके खड़ा हो गया जैसे कोई फौजी अफसर परेड के समय खड़ा होता है। हम दोनों उतरे। उन्होंने एक नौकर को आदेश दिया कि बाबूजी को अपने कमरे में ठहरा दो।

मैं जैसे ही अपने कमरे में पहुंचा, वैसे ही मुझे लगा कि यह आदमी रहस्य-मय है। क्योंकि उसने मुझसे संतोष के बारे में किसी तरह की चर्चा नहीं की। आखिर उनका इकलौता बेटा गुम हुआ है और वह भी ऐसी भयानक धमकी देकर, और उनके चेहरे पर ऐसी शांति ? और हां, मैंने जब-जब कार में उनपर दृष्टिपात किया तब-तब उनके चेहरे पर कठोरता परिलक्षित हुई। कभी-कभी वे मन ही मन हंस पड़ते थे जिससे उनके चेहरे पर कठोरता की जगह क्षणिक कोमलता, वह भी उपहास-भरी, दिखलाई पड़ती थी और उनकी मूंछें थोड़ी ऊपर उठ जाती थीं।

विचारों की तीव्रता में मैं कुछ देर स्नान करना भी भूल गया। ज्योंही मैं स्नान करके बाहर निकला त्योंही वे गंभीरता से बोले, "मैं दो-तीन घंटे बाद आऊंगा। भूख लग जाए तो खाना खा लेना।" वे चलने लगे। मुझे उनपर गुस्सा आ रहा था कि वे मुझसे उस विषय पर बातचीत क्यों नहीं करते जिसके लिए उन्होंने मुझे बुलाया है ? सहसा वे रुककर बोले, "संतोष के लिए अधिक चिंता करने की कोई आवश्यकता नहीं है। वह कायर आदमी है। मरना और मेरे अस्तित्व से पृथक् होकर खुद के श्रम से आजीविका के लिए कुछ उपार्जन करना उसके लिए संभव नहीं है। वह बड़ा दुर्बल है। मैं तुम्हें कहता हूं कि वह दस-पन्द्रह दिन इधर-उधर घूमकर वापस आ जाएगा।···तुम नहीं जानते—जिन्हें परोसी हुई रोटी मिल जाती है, वे क्यों पकाने के लिए कष्ट करेंगे ?··· मैं तुम्हें यह स्पष्ट रूप में कह देना चाहता हूं कि अगर मेरी पत्नी एक लड़का और उत्पन्न कर देती तो मैं ऐसे गलत कदम उठानेवाले सर्वथा मूर्ख लड़के को वापस घर में पांव भी रखने न देता।" बात की समाप्ति पर उनके चेहरे पर क्रूर-विकृत मुस्कान की झलक-सी दीखी जैसे कुटिल प्राणी के चेहरे पर एक साधारण आदमी से बातचीत करते समय दीखती है। फिर जैसे वे चौंककर बोले, "तुम्हें इस बात के लिए आश्चर्य होगा कि फिर मैंने तुम्हें यहां क्यों बुलाया है ? इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। यह एक बहाना है, सर्वथा एक साधारण बहाना, अगर तुममें अनुभूति की प्रखरता व समझ है तो तुम्हें यह तय कर लेना चाहिए कि तुम इसे लेकर अखबारों में चर्चा नहीं करोगे,

क्योंकि यह मेरी प्रतिष्ठा का प्रश्न है और मुझे पूरा विश्वास है कि इस तरह की चर्चाएं संतोष के प्राणों के लिए घातक बन सकती हैं। इस नंगे-भूखे देश में करोड़पति का इकलौता बेटा होना भी एक गुनाह होता है।" और वे तीर की तरह निकल गए। उनके जाते ही मेरे मन में घृणा का विस्फोट-सा हुआ। मुझे लगा कि यह आदमी नहीं राक्षस है; पर मैंने तुरन्त अपने विचारों को संयत किया। इस तरह की अपमानसूचक शब्दावली का प्रयोग सेठजी के प्रति करना मुझे शिष्टता के विरुद्ध लगा। किन्तु मेरे मन में दुःख ज़रूर हो रहा था। संतोष का पलायन वस्तुतः एक दुःखद घटना थी, जिसका प्रमाणित रूप से वहन करना मेरे लिए असह्य था। हां, यह भी सही था कि मेरे मन में जो आदर-सूचक भाव संतोष के पिता के प्रति थे, वे मिट गए। मुझे लगा कि यह व्यक्ति रोगग्रस्त है। एक साधारण घटना के प्रति उनका असीम धैर्य मुझे एक रोग-सा ही प्रतीत हुआ।

अब मैं थोड़ा-सा वास्तविक कथानक पर आ रहा हूं। लगभग पांच दिन पहले संतोष घर छोड़कर चला गया था। सेठजी ने उसके बारे में किसीको किसी तरह की सूचना नहीं दी। अखबारों में गुमशुदा की तलाश कॉलम में भी किसी तरह का समाचार नहीं छपा। सेठजी ने उसके प्रति गहरा मौन धारण कर रखा था। केवल मुझे ही उन्होंने सूचना दी। इस सूचना में उन्होंने एक पत्र का उल्लेख किया था, वह पत्र भी उन्होंने मुझे अभी तक नहीं दिया। आखिर एक बाप अपने बेटे के प्रति ऐसी उदासीनता कैसे बरत सकता है?

मैं आपको पहले ही बता चुका हूं कि संवाददाता बनने का इरादा भी मैंने इसलिए किया था कि मेरी जासूसी चलती रहे। सो मैं भोजन करने के लिए उनके 'रसोड़े' में गया। एक पचास वर्ष का बूढ़ा उनका खाना पकाता था। एकदम राजस्थानी परम्परा का खाना बनता था। चार-पांच सब्जियां, दाल, कढ़ी, चावल और अन्त में पापड़। भोजन अत्यन्त स्वादिष्ट और हल्का था। मुझे रुचिकर लगा। भोजन करते समय मैंने रसोइये से पूछा, "क्यों महाराज, (रसोई बनानेवालों को इसी संज्ञा से सम्बोधित करते हैं) आप छोटे बाबू के बारे में कुछ कह सकते हैं?"

"नहीं बाबू सा, मुझे कुछ भी पता नहीं है।"

इसके बाद मैंने उससे इधर-उधर के कई प्रश्न किए पर उससे मुझे किसी तरह का कोई सुराग नहीं मिला। उसका सभी प्रश्नों का एक-सा उत्तर और उसके पश्चात् गहरा मौन। मुझे लगा कि यह व्यक्ति किसी विशेष व्यक्तित्व से आतंकित है। मैंने भी उससे अधिक नहीं पूछा। तब मैं एक अन्य पुराने नौकर के पास गया। उसने भी मुझे वैसा ही उत्तर दिया। तब मैंने एक नये नौकर से पूछा। उसने भी मुझे ऐसा ही उत्तर दिया, पर उसने अपने उत्तर में मुझे एक नया संकेत दिया। वह संकेत यह था कि मैं पागल बूढ़े नौकर 'सम्पत' से मिलूं। सम्पत शब्द ने मेरे मन में तीव्र प्रतिक्रिया की। मतलब यह कि जैमिनी के इसी नामधारी चित्र के नायक की तिकड़मबाजियां इतनी प्रसिद्ध हुईं कि लोग चार सौ बीसी करनेवालों को मिस्टर सम्पत कहने लगे। मुझे न जाने क्यों यह अनायास ही विश्वास हुआ कि वह नौकर ज़रूर इन सभी नौकरों से भिन्न होगा? अवश्य ही वह···?

मैं उसके पास गया। सम्पत अफीम की पिनक में था। वह हरदम अफीम के नशे में मस्त रहता था। वह अत्यन्त बेडौल और दुबला-पतला था। मुझे देखते ही वह अप्रिय हंसी हंसा। दार्शनिक की तरह उंगली ऊंची करके बोला, "मेरी समझ में आप संतोष बाबू के दोस्त हैं। शायद आपका नाम वृज बाबू है। छोटे बाबू आपकी बड़ी प्रशंसा करते थे। क्या करूं···।" वह एकदम चुप हो गया। मैं कुछ देर मौन खड़ा रहा। सोचा, शायद वह अपनी बात कहता-कहता भूल गया है। पर थोड़ी ही देर में मुझे मालूम हुआ कि वह नशे की पिनक में बात का क्रम छोड़ बैठा है। मैंने मौन हंसी के साथ कहा, "आप कह रहे थे कि मैं क्या करूं···?"

"हां, मैं चाहता था कि आपकी सूरत अच्छी तरह से देखूं। पर इस नशे और कम दिखाई देने के कारण आपको ठीक से नहीं देख पा रहा हूं। मैं आपकी सौगन्ध खाकर कहता हूं कि मैं अधिक बूढ़ा नहीं हूं।"

उसके इस कथन पर मुझे जोर की हंसी आ गई। कंकाल-मात्र! विस्तृत वर्णन इस प्रकार हो सकता है, धंसी हुई आंखें, उभरी हुई गालों की हड्डियां,

काला रंग, गले के चारों ओर उभरी हुई नसें। सूराख की तरह घिनौना मुंह। लकड़ियों की तरह हाथ-पांव, आप समझ लीजिए, प्रत्यक्ष रूप में प्रेतात्मा।

"हंसकर आप मेरा मज़ाक उड़ा रहे हैं ?"

मुझे तुरन्त उसपर रहम आया और मुझे लगा कि मुझे अपनी इस भावना पर काबू पाना चाहिए था। इस तरह की विद्रूप हंसी अमानवीय है। किसीकी दुर्दशा पर हंसने का किसीको मानवीय अधिकार नहीं है। एक ऐसी करुणा का मेरे मन में उद्भव हुआ जिसे अनायास उत्पन्न करुणा ही कह सकते हैं। मैंने उसके हाथों को मज़बूती से पकड़कर कहा, "मैं आपसे क्षमा चाहता हूं। यह सब मैंने किसी दुर्भावना से प्रेरित होकर नहीं किया। यह तरुण अवस्था की स्वाभाविक प्रक्रिया है।

मेरे इस उत्तर की निश्छलता उसपर प्रभाव कर गई। वह सूखी-बुझी आवाज़ में बोला, "मैं जानता हूं कि आपने यह सब मेरे शरीर को देखकर ही कहा होगा। आप क्या, कोई भी ऐसा ही सोचेगा। पर मैं आपको सच कहता हूं कि यह बेवक्त बूढ़ा हो गया शरीर है।...आपको उदाहरण देता हूं। बड़े बाबू मुझसे पांच बरस बड़े हैं। सौभाग्य की बात है कि उनका और मेरा जन्मदिन भी एक ही तिथि और माह का है। पर क्या करूं, समय की बात है; जब उनकी वर्षगांठ आती है तो इस कोठी को सजाया जाता है, शहर के बड़े-बड़े रईस, रईसों की पत्नियां और अधिकारी लोग आते हैं पर मैं, मैं उस दिन अपनी बूढ़ी घरवाली को ज़बरदस्ती पकड़कर नाचा करता हूं। हालांकि अपने यौवनकाल में वह मेरी अत्यन्त चहेती रही है पर अब उसे भी मेरे साथ नाचने में किसी तरह का आनन्द नहीं आता। हां, जब मैं उसे निराशा से देखता हूं तब न जाने क्यों वह अपने अधरों पर कृत्रिम मुस्कान लाकर मुझे चूम लेती है और वह बिलकुल एक तरुणी की तरह उछल-कूद करती है। तब मैं उसे प्यार से 'बन्दरिया' कहता हूं और वह मुझे 'बन्दर'।....आप मुझसे ऊब गए होंगे ? शायद आप यह नहीं जानते कि अफीमची को अधिक बोलने की आदत होती है। दरअसल वह अधिक बोले बिना नहीं रह सकता।" वह एक पल के लिए रुका। अल्पकाल के लिए उसके मुख पर समाधिस्थ की-सी जड़ता के भाव आए।

उसकी आंखें भी बन्द थीं। मैं करुणाभिभूत-सा खड़ा रहा। वह चौंककर बोला, "मेरी समझ में आप कुछ दिन और ठहरेंगे। मैं आपको अपनी जवानी की कुछ रोचक घटनाएं सुनाऊंगा—दिलचस्प और मज़ेदार घटनाएं। इतिहास-सी सत्य और उपन्यास-सी रोचक।" फिर इधर-उधर देखकर वह बोला, "बड़े बाबू के दुष्टता और चरित्रहीनता के किस्से भी? उनके कमीनेपन और नीचता की कथाएं।...हे प्रभु! यह आदमी सचमुच राक्षस है। कहता है, और विश्वास के साथ गम्भीर होकर कहता है जैसे वह कोई सूक्ति बोल रहा हो, 'अगर पुरुष को सदा बढ़िया माल मिलता रहे तो वह कभी बूढ़ा नहीं होता। जिन्दगी की बड़ी से बड़ी ताकत या आघात भी उसे नहीं तोड़ सकता।'...आह!" बूढ़े की आंखों में उल्लास दीप्त हो उठा। वासना उसकी धंसी हुई आंखों में आग की लकीर की तरह दहक उठी। वह जीभ को अपने अधरों पर दौड़ाने लगा—सर्प-जिह्वा की तरह। उसके दोनों पांव द्रुतगति से हिलने लगे।

मैं उस नौकर को और भी अर्थभरी दृष्टि से देखने लगा।

उसने कपड़े की एक छोटी-सी थैली में से अफीम की एक मोती जितनी गोली निकाली। उसे सुपारी की तरह चबाता हुआ बोला, "मैं समझता हूं कि अब आपको मेरी बातों में दिलचस्पी होने लगी है। आदमी भी कितना नीच है, ईश्वर की अपेक्षा वह गंदी बातों को सुनने और कहने में एक अपार आनन्द लेता है। मुझे ही देखो न, मरने चला हूं फिर भी उस......"

"सम्पत!" बड़े बाबू का भारी-भरकम स्वर गूंजा। मेरे मन में कंपकंपी-सी दौड़ गई। भय की लहरों ने मुझे विमूढ़ कर दिया।...और बेचारा सम्पत सूखे पत्ते की तरह कांप उठा। वह बड़े बाबू के चरण पकड़कर बोला, "मुझे क्षमा कर दीजिए, मैं नशे में आवश्यकता से अधिक बोल दिया करता हूं।" उसकी आंखें एकाएक भर आईं। उसकी आंखों के आंसुओं को देखकर मुझे यह संदेह हुआ कि यह अवश्य नाटकीय है। सम्पत गिड़गिड़ाकर कह रहा था, "बड़े बाबू, मुझे क्षमा कर दीजिए, मैं सठिया गया हूं। सचमुच, मैं पागल हूं। अपनी समझ में मैं अब भला आदमी कहलाने लायक नहीं हूं। फिजूल की बकवास करता रहता हूं। मेरी हर बात बे-सिर-पैर की होती है। पर क्या

करूं ? संतोष बाबू की याद जब खूब तड़पाने लगी तब मैंने वृज बाबू को अपने पास बुला लिया। मैं केवल उनके बारे में पूछ रहा था। क्या उनके बारे में पूछना मेरा धर्म नहीं है ? आखिर मैं आपका स्वामीभक्त और ईमानदार नौकर हूं। मैंने इस घर का नमक खाया है।"

"चलो वृज। इसका दिमाग खराब हो गया है। मेरा पुराना दलाल और मुनीम है।"

हम दोनों वहां से चले। बड़े बाबू के चेहरे पर कोई विशेष प्रतिक्रिया नहीं थी। वही गहरी गंभीरता।

रास्ते ही में उन्होंने मुझसे कहा, "चलो, मैं तुम्हें संतोष का पत्र दिखा देता हूं।"

पर मेरे मन में जिज्ञासा और उत्सुकता आन्दोलन कर रही थीं। ऐसा लग रहा था कि गत वर्षों में यहां अनेक गंभीर परिवर्तन हुए हैं। वैसे बड़े बाबू का धन की तरफ तीव्र आकर्षण बचपन से ही रहा है। वे धन को प्राप्त करने के लिए नीचतम कार्य भी कर सकते हैं पर मैंने उन्हें इतना धन-प्रेमी नहीं समझा था कि वे इस तरह धन के लिए अपने लाड़ले पुत्र से भी मुंह मोड़ लेंगे। कभी-कभी मेरी इच्छा होती थी कि मैं उन्हें एक उपदेशक की तरह लम्बा भाषण दूं। पुत्र की महत्ता पर प्रकाश डालूं कि पुत्र ही पिता की नरक से रक्षा करता है। बुढ़ापे का सहारा होता है। पिंड देनेवाला होता है। वंश की वृद्धि करता है। हालांकि ये वाक्य अत्यन्त प्राचीन ग्रन्थों के हैं पर हैं अत्यंत प्रभावशाली। किन्तु मैं इस तरह की योजना ही बनाता रहा। मैं बड़े बाबू को कुछ भी नहीं कह सका। मैं एक आतंकित नौकर की तरह उनके पीछे-पीछे चलता रहा।

कभी-कभी वे मुझपर दृष्टि फेंक देते थे शायद मेरे मनोभावों को पढ़ने के लिए; पर मैं उनसे चार नजर नहीं होता था और मैं दीवारों पर दृष्टि-विक्षेप कर देता था। वे कुछ विशेष गंभीर हो गए। मैंने उनसे पूछा "दीवारों की नक्काशी बड़ी कलात्मक है।"

उत्तर में वे केवल मुस्करा-भर दिए थे।

आज से कई वर्ष पहले मैं इस घर में बराबर आता था। मैं भी यहीं रहता था, पर यह संयोग ही समझिए कि आज मुझे इस घर में दुःखद घटना पर आना पड़ा है। क्योंकि संतोष घर से मरने की धमकी देकर भाग गया है। मैं नास्तिक हूं, फिर भी किसी शक्ति से प्रार्थना करता हूं कि वह संतोष को सही-सलामत घर वापस भेज दे। यह प्रार्थना करना क्या आस्तिकता का चिह्न नहीं ? खैर, यह दूसरा विषय है। मैं बड़े बाबू के साथ उनके कमरे में गया। कमरा क्या था, पूरा सामन्ती महल था। बड़े-बड़े झाड़-फानूस और आदमकद शीशे। दो पलंग शीशम की लकड़ी के, जिनके दोनों तरफ मयूरों की आकृतियां बनी थीं। फर्श पर बढ़िया गलीचा था जिसमें एक शेर एक गाय को मार रहा था। मैंने उन्हें हठात् पूछा, "आप हिन्दू हैं, फिर आपने गाय को मारनेवाले गलीचे को क्यों खरीदा ?"

वे धीमे से हंसे। उनकी हंसी का अभिप्राय मैं तुरन्त समझ गया कि वे मुझे बेवकूफ समझ रहे हैं। फिर भी मैंने अपनी आकृति को गंभीर बनाए रखा ताकि उनकी हंसी से उत्पन्न मेरे चेहरे की झेंप उन्हें न दीखे।

वे आरामकुर्सी पर बैठते हुए बोले, "यह इसलिए खरीदकर लाया हूं ताकि लोग यह समझते रहें कि गाय बेचारी कितनी भली और सीधी होती है पर जो जन्म से हिंसक होता है वह उस निर्दोष पर भी प्रहार किए बिना नहीं रह सकता। यह दृश्य मुझे गाय की रक्षा के लिए सदा प्रेरित करता है। खैर, मैं तुम्हें एक बात बताने आया हूं। संतोष जाते समय एक पत्र छोड़ गया था। मैं उस पत्र को तुम्हें दिखाना चाहता हूं। रही संतोष की बीवी की बात। वह तुमसे तीन दिन के बाद भेंट करेगी। अभी वह मिलने और ठीक से बातचीत करने की स्थिति में नहीं है। बहुत दुःखी और भावावेश में है। उसका मन घोर एकांत और शून्यता पाकर संतोष प्राप्त करेगा। उसके साथ दो दासियां भी हैं।"

"लेकिन आपको संतोष की खोज ज़ोर-शोर से करनी चाहिए। कहीं उसने

कुछ कर लिया तो आपके घर का चिराग बुझ जाएगा।"

"नहीं वृज, मेरे घर का चिराग नहीं बुझ सकता।" उन्होंने दृढ़ता से कहा, "फिर, वह मुझे इस तरह सताया करेगा तो मैं उसकी चिंता नहीं करूंगा। लोग औलाद को सुख के लिए पाल-पोसकर बड़ा करते हैं, परेशानी के लिए नहीं; पर तुम्हारा दोस्त मुझे ऐसी गलत धमकियां देने लगा है, यह मुझे अच्छा नहीं लगता। संतोष की बहू नीता उसके कारण कितनी दुःखी है! बेचारी तीन दिन से कुछ भी खा-पी नहीं रही है। रही उसकी तेज़ी से खोज की बात, सो मैं इसके सर्वथा पक्ष में नहीं हूं। इससे उसका महत्त्व बढ़ जाएगा और तब कोई चोर-डाकू उसे अपने कब्ज़े में करके मुझसे दस-बीस लाख की मांग कर लेगा। फिर इस तरह की चर्चाएं कुटुम्ब के गौरव पर भी धब्बा लगाती हैं। मैं ऐसी चर्चाओं को गूंगी बनाकर रख देना चाहता हूं। घर के नौकर जो मुझसे अत्यन्त आतंकित हैं, वे इस घटना की ओर अधिक ध्यान नहीं देते। वे जानते हैं कि छोटे बाबू काम से बाहर गए हुए हैं। पर हां, नीता के कारण मुझे तुम्हें बुलाना पड़ा। ज़रा सोचो न, वह कहती है कि यदि संतोष लौटकर नहीं आया तो वह आत्महत्या कर लेगी। यह तो लैला-मजनूं का किस्सा हो गया। वृज, आखिर वह घर से क्यों चला गया, यह मेरी समझ में नहीं आया। हर बात का निर्णय हम बैठकर भी कर सकते हैं। पत्नी पर उसके द्वारा लगाए गए आक्षेप सर्वथा गलत हैं। मैं नीता को जानता हूं—वह एक पवित्र और शुद्ध आत्मा है। उसके चेहरे और मुख पर वैसी ही आभा है जैसी तुम पुराणों में वर्णित सतियों के चेहरों पर पाते हो। वह हृदय से इतनी ही कोमल और दयालु है जितना हमारा ईश्वर। फिर ये आंखें हमारी आन्तरिक कुटिलता का पर्दाफाश किए बगैर नहीं रह सकतीं।...और तुम नीता की बड़ी-बड़ी गहरी-गहरी आंखों में आंखें डालकर देखोगे तो तुम्हें लगेगा कि उसकी आंखों में कृष्ण की मैया यशोदा की ममता, सावित्री की निष्ठा और सुकन्या का सा तप है। वह निर्मल-हृदया है। सच, मैं केवल उसीके आगे नतमस्तक होता हूं। अगर उसने आत्म-हत्या कर ली तो मुझे सचमुच बहुत दुःख होगा।" वे एकदम चुप हो गए। एक गहरी वेदना उनके मुख पर छा गई। मैं खुद उनके दुःख से दुःखी हो गया।

वे उठे। उनके मुख पर रहस्यभरी मुस्कान की क्षीण रेखाएं चमकीं और उन्होंने एक पत्र मेरे हाथ में थमा दिया। मैं उस पत्र को लेकर पढ़ने लगा—

श्रद्धेय पिताजी,

मैं आत्महत्या करने के लिए जा रहा हूं। मैं इस पत्नी के रहते, इस घर में नहीं रह सकता। वह सचमुच कुलटा है। यह उसने अपने मुख से स्वीकार किया है। उसका सहवास मुझे रात-दिन पीड़ा दे रहा है। मुझे हर आदमी की हंसी एक ऐसा क्रूर व तीखा व्यंग्य लग रही है जो मुझे चैन से सोने भी नहीं देती। मैं हर घड़ी उद्विग्न रहता हूं। चैन की मुझे एक सांस भी नसीब नहीं है। क्या करूं? उस कुलटा का साया भी मुझे सहन नहीं। जिसने अपने पाप को छिपाकर मेरे सम्मान को खत्म कर दिया।

मुझे अब मालूम हुआ है कि यह लड़की ठीक नहीं है। मुझे इसने एक ऐसी दुश्चिन्ता और अपमान के वातावरण में छोड़ दिया है जो मेरे लिए असह्य है। एक मर्द जो सदा अपने आदमियों में अपनी श्रेष्ठता और महत्ता का उद्घोष करता आया है, वह एक पतिता का पति बनकर कैसे जी सकता है! सच, पिताजी, मेरे परिचितों की खोखली हंसी कितने मर्मान्तिक विद्रूप से भरी होती है मानो उन सभी को मेरी दशा पर तरस है। मानो वे हरदम कहते रहते हैं कि देखो बेचारे की बहू भी···

और आपके सामने मैं कुछ अधिक कह नहीं सकता। इसलिए, मैंने यह रास्ता निकाला है। मैं उस जैसी स्त्री का पति होकर जीवित नहीं रह सकता और आप अपनी बहू को सती-साध्वी से कम मानने को तैयार नहीं हैं। एक बार नहीं, सौ बार मैं आपसे प्रार्थना करूंगा कि आप मुझे क्षमा कर दें। —संतोष

पत्र मैंने पढ़ लिया।

मेरे लिए यह एक सर्वथा रहस्यमय घटना थी। बड़े बापू के कथन में और इस पत्र के अनुसार संतोष की बीवी नीता के चरित्र के बारे में कोई स्पष्ट धारणा मैं नहीं बना सका। यह मेरा दुर्भाग्य था कि मैं संतोष के विवाह पर

नहीं आ सका। उस समय कम से कम नीता भाभी से तो मिल लेता। पर जो हो गया, उसके लिए सोचना व्यर्थ है।

"अब तुम्हीं बताओ।" बड़े बाबू ने मेरे विचारों को भंग करते हुए कहा, "ये समझदार आदमी की बातें हो सकती हैं? कुछ मित्रों ने बरगला दिया और खुद अपने विश्वास को खो बैठा! यह हिन्दी फिल्मों का प्रभाव है। जीवन की घटनाओं को बिना समझे, केवल नाटकीय दृश्य उत्पन्न करने के लिए वे व्यर्थ की भावुकता को उभारकर आज के युवकों को गलत राह दे रहे हैं।"

"आप ज़रा सी···।"

"सुनो बृज, मैं जीवन में गलत परम्परा को डालने का इच्छुक नहीं हूं। तुम यह चाहते हो कि तुम्हारा दोस्त भविष्य में मुझे बात-बात पर तंग करे। मैं चाहता हूं कि यह साधारण प्राणी की तरह संतुष्ट जीवन गुज़ारे। वह मेरी आज्ञा और इच्छा के ज़रा भी विरुद्ध न चले।···और वह मुझे इस तरह का वाहियात खत लिखकर चला गया। मैं इसे सहन नहीं कर सकता। मैं नहीं चाहता कि एक अयोग्य और मूर्ख पुत्र के लिए पागलों की तरह विलाप करूं और रो-रोकर पिंजर हो जाऊं? मैं एक वीर और पत्थरदिल इन्सान हूं। मैं यह चाहता हूं कि वह स्वयं आए और मुझसे क्षमा मांगे।"

उनका कहना अत्यन्त प्रभावशाली था। उनके कथन में एक निश्चितता थी जैसे खोया हुआ संतोष आ जाएगा। क्या वह आ जाएगा? मैंने भी अपने-आपसे ऐसा प्रश्न किया। उत्तर में अन्तस् पर धुंधले-धुंधले बादल छा गए।

इसी रात बड़े बाबू को बम्बई से बुलाने का ट्रंक आ गया। उनकी एक फैक्टरी में मज़दूर हड़ताल करने जा रहे थे। स्थिति बिगड़ने को थी। वहां के मैनेजर ने स्पष्ट रूप से यह लिख दिया था कि अगर आप नहीं आए तो स्थिति असंतोषजनक हो सकती है। अतः बड़े बाबू को वहां से जाना पड़ा। उनके जाते ही मैं शेर हो गया। मेरा जासूस दूने वेग से कार्य करने लगा। उत्साह और उमंग मेरी नस-नस में समा गए।

जाते समय बड़े बाबू ने रोष-भरे स्वर में मुझसे कहा था, "अब तुम्हीं कहो, अगर वह होता तो मुझे वहां जाना नहीं पड़ता। वस्तुतः वह एक अत्यन्त

ही मूर्ख लड़का है।...किंतु मैं तुम्हें आज्ञा के साथ-साथ आग्रह भी कर रहा हूं कि आदमी की अधिक चतुराई उसके सिर में धूल डलवा देती है।"

मैं उनका संकेत समझ गया था। वे मुझे शांति से पड़े रहने को कह रहे थे। पर मैंने उसकी किंचित् भी परवाह नहीं की। मैंने अपना कार्य आरम्भ कर दिया। मुझे रह-रहकर यह ख्याल आता था कि सम्पत के अन्तस् में बड़े बाबू के जीवन के प्रच्छन्न पृष्ठ अंकित हैं। मैं पुनः उसीसे मिला।

उसने मुझे देखते ही कहा, "मैं समझता हूं कि वृज बाबू, आप मेरे पास मेरी जवानी की रोचक घटनाएं सुनने के लिए आए हैं।"

मैंने कहा, "हां।"

"फिर सवेरे आना।"

बिजली पीछे की ओर जल रही थी, इसलिए मैं सम्पत के चेहरे के भावों को नहीं पढ़ सका। पर मुझे यह विश्वास हो गया था कि वह नशे में है और अभी उसका सावधानी से बोलना सम्भव नहीं है। मैं वापस आकर अपने कमरे में सो गया।

एक नौकर दूध रख गया। मैंने दूध पी लिया और पुस्तक पढ़ने लगा। न मालूम मुझे कब नींद आ गई।

सुबह-सुबह ही मैं सम्पत के पास पहुंचा।

सम्पत सोया हुआ था। मैंने उसे उठाया। वह उठकर अपने चारों ओर लिहाफ लपेटकर बोला, "क्या है वृज बाबू ?"

मैंने उसे कहा, "अभी तक आप नहीं उठे ?"

"मैं कभी का उठ गया था।"

"सच ?"

"हां। मैंने बीच-बीच में जब कभी भी अपनी आंखें खोलीं, मुझे आपका ही ध्यान आया। मैं सोचने लगा कि अपनी जवानी की मधुर स्मृतियां आपको सुनाकर मेरा मन अत्यन्त प्रसन्न होगा।...यह नौकरानी मुझे कितना कृत्रिम पर उत्तेजित प्रेम करती थी !"

"तो मैं...।"

वह मुझे रोककर बोला, "ठहरो।" फिर उसने ऊंचे स्वर में कहा, "ओ री सीता'''सीता ओ !"

मैंने देखा, वही नौकरानी हाथ में पानी का गिलास लिए हुए आ रही है। अत्यन्त कृशकाय और सूखी-सूखी। वह संभल-संभलकर कदम उठा रही थी। उसकी आंखें नीली और आकर्षक थीं और उसीसे उसके यौवन-काल के सौंदर्य को आंका जा सकता था। यह सही था कि वह अपने यौवनकाल में अत्यन्त तेज-मयी व आकर्षक रही होगी। उसके अन्तराल से प्रेम का निर्झर निरन्तर झर्झरित होता रहा होगा, क्योंकि उसकी आंखों में भावना की दीप्ति मुखर थी।

उससे मेरा प्रथम बार ही साक्षात् हुआ था। वह मुझे देखकर ठिठकी। उसका ठिठकना मुझे एक तरुणी के स्वभाव-सा लगा। इस अवस्था में ठिठकना सहज स्वाभाविक नहीं लगता। मैंने यह भी अनुमान लगाया कि वह मुझे बेटा कहेगी, पर उसने मुझे इस तरह भी सम्बोधित नहीं किया। वह अपना घूंघट थोड़ा-सा खिसकाकर बोली, "आज आप जल्दी उठ गए।"

वह विहंसकर झूठ बोला, "नहीं तो ? वृज बाबू ने उठा दिया। वरना अफीमची का जल्दी से उठना संभव नहीं हो सकता।" कहते-कहते उसने सीता के हाथ से पानी का गिलास लेकर अफीम की एक डली निकाली। आंखें बन्द कीं। सीता चली गई। वह होंठ फड़काता रहा जैसे कोई मंत्र बोल रहा हो। फिर वह प्रकट में बोला, "न ली जिसने अफीम की डली, उस लड़के से लड़की भली। जो लेवे अफीम की डली, उसकी खिल जाए कली-कली। अफीम देवा, दे मेवा।"'''और उसने अफीम खा लिया। इस कार्य से निवृत्त होते ही वह बोला, "अरे, सीता चली गई ? वह तुमसे शर्मा गई वृज बाबू, अन्यथा वह मुझसे दो-चार प्रेम की बातें अवश्य करती।"

मैंने विषय को बदलते हुए कहा, "आप मुझे बड़े बाबू के बारे में कुछ बता रहे थे न ?"

"हां, हां !"

"फिर बताइए न ? आज वे यहां हैं भी नहीं।"

वह कुछ देर तक विचारता रहा। गहरा सन्नाटा। मैं उत्सुकता से उसके चेहरे को देखता रहा।

वह बोला, "बड़े बाबू जल्लाद हैं। उस लालची की तरह निर्दय और स्वार्थी हैं जो सोने के अंडों के मोह में मुर्गी को भी मार डालता है। पौराणिक कथा में वर्णित दैत्य और उनमें कुछ भी अन्तर नहीं है।"

वह जलती आंखों से मुझे देखने लगा। उसके स्वर में घृणा बोल रही थी। मैं डर-सा गया। मुझे लगा कि नशे के कारण वह अपनी सहज बुद्धि को खो चुका है।

"आप मुझे इस तरह घूर-घूरकर क्यों देख रहे हैं? क्या मैं झूठ बोल रहा हूं। मैं आपको कहता हूं कि बड़े बाबू किसी राक्षस से कम नहीं हैं।"

"पर···?"

"मेरी समझ में आप अभी नीता बहू से मिल लीजिए।"

"पर बड़े बाबू ने उससे दो दिन के बाद मिलने को कहा है।" मैंने सोचा कि यह अचानक विषयान्तर क्यों हो गया।

वह बोला, "बड़े बाबू को किसीसे प्यार और मोह नहीं है। वे सम्पत्ति के सागर में डूबकर पागलों की तरह चीखना चाहते हैं। पर मैं आपको वैसा नहीं समझता। आप उनकी तरह अनुभूतिहीन नहीं हो सकते। आप जाइए और पता लगाइए।"

मैं क्या करता? मैं सीधा नीता के पास गया। नीता की आंखें रो-रोकर सूझ गई थीं। सूझी हुई आंखों और उतरे हुए मुख ने मुझे भी उदास कर दिया। मैं एक कुर्सी पर बैठ गया। अपना परिचय दिया। उसने मुझे पहचान लिया। उसकी आंखें सजल हो उठीं। वह मधुर स्वर में एक-एक शब्द को तोल-तोलकर बोली, "आपका इस समय आना मेरे लिए अत्यन्त शुभ रहेगा। मैं अकेली घबरा रही थी।"

"बड़े बाबू का पत्र पाते ही मैंने यहां आना अपना कर्तव्य समझ लिया। आप जानती हैं—मैं उसका बचपन का संगी हूं। बचपन में हम दोनों कृष्ण-सुदामा की तरह रहते थे—एक-दूसरे के सुख-दुःख के हिस्सेदार।"

"हां भाई साहब, प्रायः वे आपकी चर्चा करते रहते थे। कई बार उनकी यह भी इच्छा होती थी कि वे आपके लिए किसी समाचारपत्र का आरम्भ करें ताकि यह दूरी भी समाप्त हो जाए, पर ससुरजी से भय खाते रहे।"

अभी तक मैंने एक जासूस की तरह उसके चेहरे के भावों का निरीक्षण नहीं किया था। अब मैंने पहली बार उसकी ओर देखा। मैं मंत्रमुग्ध-सा उसे देखता रहा। उसके चेहरे पर वही सौम्यता, सौजन्य तथा पवित्रता थी जो पवित्र व सच्चरित्र स्त्री के चेहरे पर ही रहती है। मुझे लगा कि यह स्त्री कुलटा नहीं हो सकती। इसपर सन्देह करना भी अपराध होगा। अप्रत्याशित मैंने अपने-आपको रोका, क्योंकि मैं भावुकता में बहने लगा था। एक जासूस के कर्तव्य के लिए भावुकता का बहुत कम महत्त्व रहता है। और भावुकता में किसीके चेहरे के चक्षुओं द्वारा अन्तस् की वास्तविकता को पा जाना अत्यन्त दूभर ही नहीं, असम्भव भी है, अतः मैं सावधानी से एक वैज्ञानिक की तरह उसे देखने लगा।

मैं प्रकट रूप में बोला, "मैं उसके बंधुत्व को बड़े सम्मान की दृष्टि से देखता हूं। पर उस दुर्घटना के कारण मेरा मन दुखी हो गया है। क्या आप उसपर कुछ प्रकाश डाल सकती हैं ?"

"मैं इतना ही जानती हूं कि सत्य का उद्घोष हानिप्रद ही नहीं, सर्वनाश का सूचक भी हो सकता है। मैं चाहती तो उन्हें कुछ भी नहीं बताती, पर मुझे क्या पता था कि उनकी निश्छलता में एक कलुषित जिज्ञासा है और उस जिज्ञासा के पीछे उनका संदेहयुक्त हृदय भी।" वह कुछ रुककर बोली, "मैंने उनको सत्य-सत्य कहा कि वह युवक मेरे प्रति जरूर आकर्षित हुआ था। इसी चीज को लेकर उन्होंने मेरे जीवन को जहर बना दिया। अगर मैं समझती कि इस कारण इतनी बड़ी दुर्घटना घटनेवाली है तो मैं भी हजारों लड़कियों की तरह अतीत की इस साधारण घटना को स्वप्नवत् की घटना की तरह विस्मृति के गहरे गर्त में फेंक देती।"

"वह लड़का कौन था ?"

"वह मेरे पड़ोस में रहता था। अच्छा लड़का था। छोटे बाबू ने उसे एक

बार देखा भी है। पर मैं यह नहीं समझी कि इस कारण वे घर छोड़कर आत्म-हत्या करने चले जाएंगे! मेरी ओर 'आकर्षित हुआ' कहना इतना बड़ा अपराध नहीं हो सकता! अगर वे इस संसार में नहीं रहेंगे तो मैं भी ऐसा लांछित व अपमानित जीवन लेकर जीवित नहीं रह सकती।"

"मुझे लगता है कि इसमें कोई रहस्य है।" मैंने अपनी जासूसी बुद्धि का परिचय दिया।

"रहस्य के बारे में मेरी जानकारी कुछ भी नहीं है। पर मैं इतना दावे से कह सकती हूं कि यह इतनी अपमानसूचक बात नहीं थी।" इसके पश्चात् उसने मुझे सारी बातें विस्तृत रूप में बताईं जिसपर मैं बाद में प्रकाश डालूंगा। यहां मैं इतना ही आपको कहना चाहूंगा कि नीता से हुई बातचीत से यह स्पष्टतया संकेत मिल गया कि उसके और संतोष के बीच दुराव उत्पन्न कराने के लिए कोई अज्ञात शक्ति कार्य कर रही है। उसका यह भी निश्चय दृढ़ है कि अगर संतोष ने वस्तुतः आत्महत्या कर ली तो वह अपनी जान पर खेल जाएगी। पर उसे भी विश्वास है कि यह सम्भव नहीं है। उसने ईश्वर से मनौती कर रखी है। सदा प्रार्थना करती है।...

मैं अपने कमरे में चला आया। मुझे आए एक सप्ताह हो गया था। इस बीच मैंने एक जासूस की तरह कितने ही सत्य व तथ्य एकत्रित किए। मुझे लगा कि इस घर का हर व्यक्ति एक अच्छी कथा का नायक हो सकता है। चाहे वह पुरानी शास्त्रीय मान्यताओं के आधार पर नायक न बने, पर प्रत्येक के साथ एक दिल-चस्प कथा जुड़ी है जो उसे नायक जैसा महत्त्व दिला ही सकती है। इस घर में बड़े बाबू का चरित्र किसी हिस्टीरिया के रोगी से कम नहीं है जो पूंजी को जीवन का सर्वोपरि सत्य और चरम ध्येय मानकर चलते हैं।

क्योंकि तीसरे ही दिन बम्बई से लौटते ही बड़े बाबू ने मुझसे कहा, "मुझे यह पता लग गया है कि तुम जासूसी कर रहे हो! यह जासूसी मुझे कतई पसंद नहीं है। क्या तुम मेरे घर से अपमानित होकर जाना चाहते हो? सुनो, हमारे वैयक्तिक जीवन में कुछ ऐसी बातें होती हैं जिनके हम संतोषप्रद उत्तर नहीं दे सकते और न ही हम देना चाहते हैं। इसपर भी तुमने अपने-आपको अधिक

महत्त्वपूर्ण बनाने की चेष्टा की तो मैं तुम्हें कल ही यहां से रवाना कर दूंगा। बस अपने साधनों द्वारा उसे पाने की चेष्टा करो—प्रच्छन्न रूप से।......एक बात याद रखो कि तुम मेरे बेटे के मित्र बनकर आए हो न कि पत्रकार और जासूस बनकर।"

मैंने देखा, बड़े बाबू की आकृति बड़ी भयंकर हो गई है। क्रूरता की रेखाएं उनके चेहरे पर खेलने लगी हैं।

मैंने उनसे ऊपर के मन से माफी मांगी।

मैं एक सप्ताह उस घर में और रहा। जहां तक हो सका, मैंने उस घर के प्रत्येक चरित्र को बखूबी समझने की कोशिश की। वहां की हर रहस्यमयी घटना और दुर्घटना का मैंने एक जासूस की तरह पता लगाया। संतोष के कमरे की खोज में एक सैटन के तकिये के अन्दर उसकी डायरी मिली। उस डायरी ने मुझे कई नये तथ्यों से परिचित कराया। घर के सभी व्यक्तियों की आत्माओं एवं उनके मस्तिष्कों के पोस्टमार्टम के बाद मुझे लगा कि मेरे इस उपन्यास का नायक ही बदल गया है और विषयवस्तु का केन्द्र कुछ और ही हो गया है। लीजिए, आप भी सुनिए—

फतह एक मामूली घराने में उत्पन्न हुआ था। उसका पिता एक साधारण बनिया था। लगभग छह सौ रुपये साल कमाता था, अर्थात् उनचास रुपये, पांच आने और चार पाई प्रत्येक माहवार। गृहस्थी की गाड़ी रेत में चलती बैल-गाड़ी की तरह अत्यन्त मद्धिम गति से चल रही थी। फतह न अच्छा पहन सकता था और न अच्छे ढंग से रह सकता। तभी उसके दुर्भाग्य ने एक नई करवट ली। उसका बाप बीमार पड़ा। पहले उसे बुखार आया। बुखार के साथ पेट में दर्द। दर्द के साथ मृत्यु! फतह ने उस दुःख को भी सहा।

बाप को जलाकर वह आया था। वह भद्र (मरने पर सारे बाल कटाना)

हो गया था और उसने ऊनी वस्त्र पहन रखे थे। उसकी मां सफेद लिबास में कमरे के एक कोने में मुरझाई कली-सी पड़ी थी। उसके ललाट की बिंदी, उसकी चूड़ियां और उसका शृंगार लुट गया था। वह अपने-आपको नहीं रोक सका। एक बार उसके अन्तराल का बांध टूट पड़ा। मां ने उसे आंचल में छिपाकर रोदन-भरे स्वर में कहा, "न रो फत्तू, तू इस तरह रोएगा तो अपने जीवन को कैसे संवारेगा ?"

"मां ! मुझे पिताजी बहुत याद आते है।"

"हां बेटा, वे आदमी थे ही ऐसे। उनके जैसा देवता पुरुष इस कलि-काल में कहां ? जितना मिल जाए, उसीमें संतोष और शांति। पर हमारे ऐसे पुण्य कहां कि उनका साया हमें उम्र-भर मिलता ? तो भी हमें साहस के साथ जीना पड़ेगा।"

मां की विश्वास-भरी बातें फतह को हिम्मत बंधाती रहीं। मां प्रायः कहा करती थी कि फतह इस जगत् में पैसा बहुत बड़ी चीज है। अब इस कुटुम्ब का सारा भार तुम्हारे पर है। बस, परीक्षा देकर तू अपने मामा के पास चला जा।

फतह भी अपने घर की आर्थिक स्थिति को देखकर यही सोचता था। उन दिनों फतह सोलह वर्ष का था। आठवीं में पढ़ता था। उसके संग कई अच्छे-अच्छे सेठों के बेटे पढ़ते थे। वे फतह को अपनी सोसायटी में सम्मिलित करके प्रायः उसे हंसी का पात्र बनाया करते थे। वे उसका तरह-तरह से अपमान करते थे और उस पीड़ा से फतह के हृदय का विद्रोह ऐंठने लगता था, इसपर भी वह उन लड़कों का विरोध नहीं करता था। सारे क्रोध और अपमानों के दुःख को वह एक कृत्रिम हंसी में छिपा लेता था ताकि वे धनपतियों के लड़के उसे अपनी सोसायटी से अलग न करें। स्कूल में वे लड़के फतह को खूब तंग करते थे। कोई उसका होल्डर छिपा देता, कोई उसकी पुस्तक गायब कर देता। कोई उसकी पीठ पर गधा लिख देता तो कोई उसकी कापियों में अश्लील अंगों के चित्र बना देता था। स्कूल से छुट्टी होने के बाद वे फतह की जूती छीनकर एक-दूसरे लड़के के पास फेंकते रहते और फतह कभी उसके और कभी इसके पास दौड़ा फिरता था। कभी-कभी उसकी टोपी एक हाथ से दूसरे हाथ जाती-जाती लुंस हो जाती

थी और जब तक फतह रो न देता तब तक वह पुनः प्रकट नहीं होती थी। टोपी जैसे ही उसके हाथ में आती, वैसे ही वह उन सभी को गंदी गालियां बकता था लेकिन थोड़ी देर के बाद वह उनसे समझौता कर लेता था। उन्हें विश्वास दिलाता था कि उसने जो गालियां बकी थीं, वे क्रोध की ही उपज थीं। फतह उन लड़कों के बीच रहकर गौरव का अनुभव करता था। वह अपनी मां को भी सदा कहा करता था कि उसके फलां-फलां सेठों के बेटे पक्के मित्र हैं। गोया उन लड़कों की मित्रता कोई महत्त्वपूर्ण बात हो। मां भी कहती थी—बेटा, आदमी की संगत ही उसे बनाती, बिगाड़ती है। काले के पास गोरा बैठे, रंग न बदले पर अक्ल ज़रूर बदल जाती है। अच्छे के पास बैठोगे तो अच्छी अक्ल आएगी और बुरे के पास बैठोगे तो बुरी।" तब फतह एक पूरी लिस्ट अपनी मां को सुना देता था। मां को संतोष हो जाता था कि उसका बेटा अच्छे लड़कों के साथ रहता है।

कभी-कभी कोई घटना जीवन के इरादों को स्पष्ट और मजबूत कर जाती है। एक ऐसी ही घटना फतह के जीवन में घटी।

होली के दिन थे। शहर में बड़ी मस्ती थी। लोग अपने-अपने दलों को लेकर आनन्द लूट रहे थे। सेठ पुरुषोत्तम के लड़के पूनम ने इस अवसर पर एक दावत की। दावत में सभी मित्रों को निमन्त्रण दिया गया। फतह भी उसका मित्र था। जब लिस्ट बन रही थी तब फतह भी पीठ किए बैठा था। उसका नाम उस लिस्ट में नहीं लिखा गया। कारण भी सुना। उत्तम कह रहा था, "हम सब पैसेवाले हैं, हमारे बीच यह कंगला (गरीब) ठीक नहीं रहेगा।" फतह ज़हर का घूंट पीकर रह गया। उसके हृदय-सागर में पीड़ा की कई लहरें एकसाथ दौड़ पड़ीं। वह घर आया। उसके चेहरे पर उदासी की रेखाएं स्पष्ट झलक रही थीं। मां को यह सब समझते देर न लगी। फतह के पास आकर बोली, "क्यों रे, आज तेरा मुंह उतरा-उतरा क्यों?"

"नहीं तो!"

"मां से भी झूठ बोलता है।...फत्तू, मेरा तेरे सिवाय कौन है। ले-देकर आगे-पीछे तू ही एक है। इस घर का चांद, सूरज, कर्ता, मालिक, और विधवा

मां का आसरा। बोल बेटे, मां से कुछ भी न छिपा।"

अपने हृदय के आवेग को दबाता हुआ फतह रुद्ध कण्ठ से बोला, "मां, इस संसार में सबसे बड़ी इज़्ज़त किस चीज़ की है ?"

मां बेटे के प्रश्न का मर्म समझ गई। वह गंभीर हो गई। फतह की आंखों में अपनी आंखें डालकर बोली, "लोग कहते हैं कि इज़्ज़त सदा ईमान की होती है। आदमी सच्चा बना रहे, उसका सम्मान कभी नहीं मिटता। पर यह सब पहले होता था। अब सब बदल गया है।" उसने 'पहले' शब्द पर खूब ज़ोर दिया।

"मैं पहले की बात नहीं पूछता।" फतह ने फिर पूछा।

"आज एक ही वस्तु की इज़्ज़त होती है। और वह वस्तु है पैसा।"

"ठीक कहती हो मां। पैसे के बिना कुछ भी नहीं है।"

"हां बेटा, पैसेवालों के कुत्तों की भी लोग बड़ी तारीफ करते हैं। अगर वह दौड़कर किसीको काट भी ले तो लोग यही कहेंगे—सेठजी के कुत्ते का कोई दोष नहीं, दोष इस आदमी का ही है। ज़रूर इसने उसे छेड़ा होगा हालांकि ऐसी कोई बात नहीं होती।"

"मां, पिताजी का पैसा कहां है ?" वह अनायास ही यह प्रश्न कर उठा।

"कहां है ?" मां के होंठों पर तड़प-भरी सूखी मुस्कान नाच उठी, "पैसा उनके पास कहां था बेटा ! जो वे कमाते थे, उससे गुज़र भी कठिनता से होती थी। सच बात यह है कि हम बहुत गरीब हैं, किसी तरह रूखा-सूखा खाकर निर्वाह कर लेते हैं।"

"मां, मैं पैसा बहुत कमाऊंगा।"

"भगवान तुम्हें सफलता दे। सुन फत्तू, कलकत्ते में तेरे मामा हैं। तू उनके पास चला जा, वे तुझे कहीं न कहीं काम पर लगा ही देंगे।"

"हां मां, मैं कलकत्ता जाऊंगा। बहुत बड़ा आदमी बनूंगा।"

"पर पहले इम्तिहान तो दे ले।"

"दूंगा।" फतह के चेहरे पर हिंस्र दृढ़ता चमक उठी।

होली की छुट्टियों के बाद फतह स्कूल गया। उस दावत से उसका जो

बहिष्कार हुआ था, वह बात इतनी अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं थी, फिर भी फतह को वह बहुत ही लग गई। वह विचित्र दुष्कल्पनाओं में झूलता रहा। होली जैसे त्यौहार में वह घर से बाहर नहीं निकला। घुटता-घुटता-सा रहा। मित्रों से कतराता रहा। अगर कोई घर भी आ जाता तो वह उसे बहाना बनाकर टाल देता। उन दिनों वह इतना अन्तर्मुख रहा कि स्कूल में भी उसकी गंभीरता नहीं टूटी। उत्तम को उससे प्रयोजनहीन दुर्भाव था। वह फतह को पीड़ा पहुंचाने के लिए कोई न कोई बात कहता ही था। स्कूल में उसे देखते ही उत्तम बोला, "कहो, ईद के चांद, इतने दिन कहां रहे ?"

"घर पर।"

"क्यों ?"

"तबीयत ठीक नहीं थी।"

"वाह भई वाह, उस दिन तुम पार्टी में भी नहीं आए। ऐसी भी क्या नाराज़गी थी ?" उत्तम ने बड़ी चतुराई से दुष्टता की। फतह को गुस्सा आया कि वह उसके दो-चार थप्पड़ मारे, पर उसकी गरीबी ने उसे ऐसा नहीं करने दिया। वह अपमान को स्वाभाविक प्रतिक्रिया में पी गया। बोला, "मैं नहीं आ सका।"

"तुम बड़े भाग्यहीन हो। कितनी बढ़िया रसोई बनी थी ! मैं तुम्हें हर कौर के साथ याद करता था।"

"तुम मेरे पक्के दोस्त हो न ?" कहकर वह आगे बढ़ गया। उसका दिल भर आया। उसकी क्या ज़िन्दगी है ! क्या उसे इसी तरह अपमानित और उपेक्षित होना पड़ेगा ? जब कि यह सत्य था कि उसे न्योता नहीं दिया गया था। इस तथ्य से अपरिचित व अनजान मित्रों को वह यही कहता रहा कि उसकी एकाएक तबीयत खराब हो गई थी और वह उस पार्टी में सम्मिलित नहीं हो सका। किन्तु जब उसकी वही मित्रमंडली जमती तब वह फतह को संकेत बनाकर उसकी खूब खिल्ली उड़ाती। उसपर व्यंग्य कसती और उसकी दशा ऐसी कर देती जैसी एक घायल पखेरू की होती है। तब वह एकांत में रात-दिन सोते-जागते एक ही बात सोचा करता था कि वह बड़ा होते ही

इतना रुपया कमाएगा कि इन सबसे गिन-गिनकर बदला लेगा। प्रतिशोध की यह भावना उसमें पलने लगी। इसके साथ उसकी मां उसके मन-मस्तिष्क में एक ही महामंत्र फूंका करती थी कि बेटा, धन के बिना बनिये का कोई जीवन नहीं।

परीक्षा समीप आ रही थी। फतह खूब मेहनत के साथ पढ़ने लगा। वह चाहता था कि मिडल की परीक्षा पास करके वह कलकत्ता चला जाएगा। अब उसे हिन्दी, अंग्रेज़ी और मारवाड़ी के नाम-पते पढ़ने व लिखने आ गए हैं।

इसी बीच शहर में कोई तांत्रिक महात्मा आए। हिमालय से लेकर कुमारी अंतरीप तक उन्होंने पैदल-यात्रा की थी। दिगम्बर रहते थे। प्रशस्त भाल और हृदयस्पर्शी वाणी। उनकी जलती-गहरी आंखों में सम्मोहन का आकर्षण!

कहते हैं, साधु नहीं पूजता है बल्कि उसके साधक उसे पुजवाते हैं। जब प्रत्येक की ज़बान पर उस महात्मा का नाम आने लगा तब फतह भी मां के अनुरोध पर उसके पास गया। महात्माजी उस समय लगभग पच्चीस-तीस व्यक्तियों को प्रवचन दे रहे थे। एक जिज्ञासु ने उनसे प्रश्न किया था, "मैं देवता के विभिन्न रूपों को नहीं मानता। मैं इतना ही मानता हूं कि एक अलौकिक शक्ति है जो हमें निर्दिष्ट करती है। रूपों की विभिन्नता और नामों की अनेकता प्राणी-मात्र के लिए घातक सिद्ध हुई। यह मुझे कपोल-कल्पित-सी लगती है।"

महात्माजी ने उत्तर में कहा, "आप एक शक्ति में विश्वास करते ही हैं। वह महाशक्ति अलौकिक और अनुपम है। आपने कठोर साधना द्वारा उसे प्राप्त कर लिया। आप उस परम ब्रह्म परमात्मा की शक्ति को जान गए पर आप अपने अनुयायियों एवं उपासकों को इस बात का कैसे विश्वास दिखाएंगे? आपके हज़ार बार कहने पर भी संशय उनके अन्तस् में बना रहेगा। रूप की कल्पना आदिऋषियों ने इसी हेतु की थी। क्योंकि ईश्वर एक स्थान पर जड़ की तरह नहीं रहता। वह चैतन्य है। क्योंकि मैं शक्ति के बिना ईश्वर को

सर्वशक्तिमान नहीं मानता। शक्ति के बिना शिव भी शव है। शक्ति का जिसमें वास है, वह चिन्मय है। उपनिषद् में एक जगह कहा है—एष देवो विश्वकर्मा महात्मा सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः हृदा मनीषी मनसाभिक्लृप्तो ये एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति। अर्थात् वह देवता जो विश्व के विविध कर्मों से स्वयं को प्रगट करता है, मनुष्य के अन्तस् में निवास करता है; जो अनुभूति और मन की साधना द्वारा अन्तर्वासी को जान लेते हैं वे अमर पद को पा जाते हैं। इसलिए विषय यह था—ईश्वर के अनेक रूप और नाम केवल दूसरों के विश्वास व परिचय के लिए हैं। श्रद्धेय परमहंसजी ने भी स्वामी विवेकानंद को देवी के प्रत्यक्ष दर्शन कराए थे तथा उसपर शक्तिपात किया था। बिना प्रमाण और रूप के आप अन्यों को विश्वास कैसे दिलाएंगे?"

फतह उस महात्मा के यहां सुबह-शाम जाने लगा। उस बालक को नित्य प्रति आते देखकर महात्मा को जिज्ञासा हुई और उन्होंने एक दिन उससे पूछ लिया, "क्या चाहते हो बच्चे?"

"मैं बहुत गरीब हूं।"

बाबा ने एक मंत्र लिखकर दिया। मंत्र के साथ त्रिशूल भी बना हुआ था। मंत्र था—ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे। बाबा ने कहा, "सुबह इसका जाप करोगे तो विद्या आएगी और शाम को करोगे तो धन आएगा। पर धन केवल मंत्र-शक्ति से नहीं आता, उसके लिए साधन भी आवश्यक हैं। मंत्र-जप साधनों द्वारा द्रव्य आने के रास्तों को सुलभ-सहज करता है।"

बाबा के इस कथन को फतह ने दिव्य-वाणी के रूप में आत्मसात् कर लिया। अखंड विश्वास मनुष्य में शक्ति का संचार करता है। फतह का भोला मन दोनों वक्त उस मंत्र का जप करने लगा। वह सवेरे शिवजी के मंदिर में पूजा करने भी जाने लगा। इससे एक लाभ यह हुआ कि आस्तिकों के उस मोहल्ले में फतहचंद अत्यन्त लोकप्रिय हो गया।

परीक्षा हुई। नतीजा अच्छा निकला।

फतह ने अब धन-अर्जन के लिए कमर कसी। शुभ मुहूर्त के साथ उसने अपना वित्त-अर्जन की यात्रा आरंभ की।

वह दिन भी उसकी स्मृति में चिर महत्त्व रखता है।

तब उसकी उम्र १७-१८ वर्ष की थी। कलकत्ते जानेवाला कोई भी यात्री पांच-सात वर्ष के पहले नहीं लौटता था। फतह अपनी मां का इकलौता बेटा था। वह सवेरे से ही भांति-भांति की आशंकाओं में डूबने लगी। वह जानती थी कि बंगाल एक अजीबोगरीब प्रांत है। जहां की युवतियों के केश इतने लम्बे, इतने लम्बे होते है कि वह उनमें अपने-आपको आच्छन्न कर लेती हैं। लोक-कथाओं में वर्णित उन राजकुमारियों की तरह कामरूप की युवतियों के कुन्तलों की महत्ता है कि वे अपनी खिड़की से केशों को लटका देती हैं और उनके प्रेमी उनको पकड़कर ऊपर चढ़ जाते हैं। यह भी अफवाह उसने सुन रखी थी कि कामरूप का जादू प्रसिद्ध है और वहां की स्त्रियां आदमियों को भेड़-बकरी बनाकर दाब लेती हैं। उसकी मां दिन-भर कुछ न कुछ सोचती रही।...कभी-कभी वह यह भी विचारती थी कि वह अपने बेटे को वहां न भेजे और जब उसने यह विचार अपने बेटे के सामने ज़ाहिर किया तब वह यह सुनकर क्रोधित हो गया। उसने तुरन्त कहा, "विना धन जीवन कुछ भी नहीं है। मैं वहां जाऊंगा ही। मुझे लखपति बनना है। मैंने इतना मंत्र-जप किया है।"

आखिर फतह की जीत हुई।

आज की तरह रेलगाड़ी इतनी शीघ्रता से हवड़ा नहीं जाती थी। पांच दिन की यात्रा थी। कई जगह बदली करनी पड़ती थी।

मां ने फतह के लिए सकरपारे, पेठा और टिकले बना दिए। कुछ पुड़ियां बना दीं। साग-सब्ज़ी के साथ मिर्च का अचार भी बांध दिया।

अन्त में वह घड़ी भी आ गई जिस घड़ी में मनुष्य-हृदय स्वजनों से विदा लेता है; सिर पर टोपी, टोपी में मांगलिक सूत मौली, ललाट पर कुंकुम का तिलक, कमर को दुपट्टे से कसे हुए और हाथ में पानी का भरा लोटा (और लोटे पर नारियल रखा हुआ) लिए हुए वह गृह से प्रस्थान करता है; बड़े-बूढ़ों का आशीर्वाद लेता है और छोटों की शुभकामनाएं।

जब फतह ने मां का चरणस्पर्श लिया तब मां फफक-फफककर रो पड़ी। अपने बेटे को प्रगाढ़ आलिंगन में आबद्ध कर उसने अपने रोदन-भरे स्वर में कहा,

"सुन फतह, परदेश का मिलाप चिट्ठियों से ही होता है, इसलिए चिट्ठी बराबर देते रहना।"

फतह की ग्रांखें भर ग्राई थीं। वह भी रुंधे कंठस्वर में कुछ स्पष्ट कह नहीं पाया। वह रवाना हुग्रा। मां ने कहा, "यह नारियल यमुना की धारा में बहा देना। ग्रौर सुन, मां की प्यास ग्रौर उसके ग्रांखों की ग्राशा बेटे के साथ ही रहती है।"

फतह घर से बाहर निकला।

एक सोलह श्रृंगार किए नवयुवती जल का लोटा लिए घर के दरवाज़े के ग्रागे खड़ी थी।

वह फतह को शुभ समेला (जाते हुए ग्रादमी के लिए प्रथम ग्रच्छा मिलन) देने खड़ी थी। फतह ने उसके जल के लोटे में चांदी का एक रुपया डाल दिया। युवती के प्रसन्न नयन मुस्करा उठे।

बाहर इक्का खड़ा था—वह उसमें बैठा ग्रौर इक्का चल पड़ा।

मां ममता-भरी दृष्टि से ग्रोझल होते हुए इक्के को देखती रही। उसकी ग्रांखों से ग्रविरल ग्रांसुग्रों की धारा बह रही थी।

हवड़ा।

वह ग्रपने साथवाले ग्रादमी के साथ उतरा। उन्होंने एक घोड़ा-गाड़ी किराये पर की। घोड़ा-गाड़ी का मालिक मुसलमान था।

ग्रभी घोड़ा-गाड़ी पुल के पास पहुंची ही थी कि घर्-घर्-घर् की ग्रावाज़ हुई ग्रौर पुल बीच में से खुलने लगा। देखते-देखते पुल बीचोंबीच से ग्रलग हो गया। फतह विस्मित-सा उसे देखने लगा। देखते-देखते उसने ग्रपने साथी कानीरामजी से पूछा, "कानीरामजी, यह पुल बीच में से ग्रलग क्यों हो गया?"

"ग्रब इसके नीचे से बड़ा जहाज़ निकलेगा।" ग्रौर कानीरामजी ने उसकी ग्रोर बिना देखे ही बताया कि यहां इतने बड़े-बड़े जहाज़ हैं कि उनमें लोगों ने

बाग-बगीचा तक भी बना रखे हैं।

फतह के लिए यह आकर्षण की वस्तु रही।

गाड़ी ने हवड़ा पार किया। बड़ा बाजार में ही उसका मामा रहता था। वह सेठ सूर्यमलजी के यहां काम करता था। सूर्यमलजी का कपड़े का अच्छा व्यापार था। वे विलायत का प्रसिद्ध माल बेचते थे। काफी आमदनी थी। उन्हीं-के यहां फतह काम करने लगा। चौबीस रुपये साल। खाना वह अपनी मामी के यहां खा लेता था।

उसका काम था—गाहक आने पर उनकी मांग के अनुरूप कपड़ा दिखाना। वह अत्यन्त ईमानदारी व श्रम से काम करता और हर समय उसका ध्यान काम सीखने की ओर प्रवृत्त रहता था। वह चाहता था कि किसी भी शर्त पर वह एक दिन अपने-आपको समृद्ध बनाएगा, बहुत बड़ा आदमी बनेगा। इस वास्ते उसे कई बार अपने ऊपर काम करनेवालों की दुत्कारें, फटकारें, झिड़कियां सुननी पड़ती थीं। पर वह उन्हें हंस के पी जाता था।

सेठ सूर्यमलजी का उसीकी उम्र का एक बेटा था—भगतमल। अपने व्यापार की उन्नति के लिए उसने एक मिल भी खरीद ली थी। उसका नाम उसने 'सूर्य काटन मिल' रखा। भगत अंग्रेज़ों की सोहबत से पूरा साहब बन गया था। कोट-पैंट पहनता था। अपने समाज में उसका काफी दबदबा था। वह शादीशुदा भी था, पर उसकी बीवी एक महिषी की तरह थी। काला रंग और मोटी। पर वह अपने साथ खूब धन लाई थी, उसी धन का ही पुण्य प्रताप था कि उस मिल के अंग्रेज मालिक को सारे के सारे रुपये एकसाथ नकद दे दिए गए थे।

फतह दूकान से लगभग आठ बजे छूटता था। रात को वह खाना खाकर सो जाता था। उसके जीवन में किसी तरह की सरसता नहीं थी। उसका कोई विशेष मित्र और दुश्मन नहीं था। वह अकेला था—सुनसान सागर में नाव की तरह।

तब उसके जीवन में अप्रत्याशित एक घटना घटी।

बात यह थी कि कलकत्ता आए फतह को लगभग दो वर्ष हो गए थे। इन

दो वर्षों में उसके मामा ने उसके पूरे रुपये बचा लिए। सस्ते का युग था। दस आने में बढ़िया धोती और दस पैसों में बन्द गले की बनियान आ जाती थी।

विशाल वाड़ी में लगभग पचास परिवार रहते थे। सारे के सारे राजस्थानी थे और वाड़ी का मालिक भी चुरू का कोई बनिया ही था। यह बाड़ी उसने एक बंगाली ज़मींदार से खरीदी थी जिसका सारा धन सुरा और सुन्दरी की भेंट चढ़ गया था। उस बाड़ी के मालिक के घर एक रात कोई खटीक जाति का चोर घुस गया। रात के लगभग बारह बजे थे। फतह माल के स्टॉक को मिलाने दूकान में बैठ गया था। देर हो गई थी। बिहारी जमादार सोया पड़ा था। सन्नाटा था।

चोर ने घुसकर ताला तोड़ा। अचानक मकान-मालिक की बेटी की आंख खुल गई। खट्-खट् की आवाज़ ने उसे अपनी ओर खींचा। वह लड़की धीरे-धीरे उठी। उसने अन्धेरे में खट्-खट् सुनी। भय से वह चीख पड़ी, "चोर, चोर, चोर!"

दूसरे ही क्षण चोर लपककर भागा। सीढ़ियों पर ही उसे फतह ने धर दबोचा। बाड़ी में चहल-पहल मच गई। लोग दौड़े-दौड़े आए और उन्होंने पकड़े हुए चोर को और पकड़ लिया। चोर को सेठजी के सामने लाया गया। फतह को भी हाजिर किया गया। पहली बार फतह ने सेठ की बेटी शिवली को एक ऐसी दृष्टि से अपनी ओर घूरते देखा कि उसकी रग-रग में एक अज्ञात सिहरन दौड़ गई। सेठ ने उसे बड़ी शाबाशी दी और उसे अपने योग्य किसी सेवा के लिए कहा।

दूसरे ही दिन फतह सेठजी के पास गया। सेठजी भोजन कर रहे थे। फतह को देखते ही उनके अधरों पर मुस्कान नाच उठी। वे मधुर स्वर में बोले, "क्यों फतह, कैसे आना हुआ?"

"आपके पास छत पर बहुत-से रसोईघर हैं। मुझे रहने की दिक्कत होती है। अगर आप एक रसोईघर मुझे दे दें तो आपकी बड़ी मेहरबानी होगी।"

सेठ ने विहंसकर कहा, "मैं तुम्हें किराये पर नहीं दे सकता। अगर तुम यूं

ही रहने के लिए लेना चाहो तो···?"

"ऐसे···?"

"देखो फतह, तुम्हारे अहसान का बदला भी मुझे चुकाना है। तुम विना किसी रोक-टोक के वहां रह सकते हो।"

फतह को रहने के लिए अपनी अलग जगह हो गई।

सर्दी का मौसम था।

कलकत्ता की प्यारी सर्दी।

फतह की आजकल ड्यूटी बदल गई थी। घर के मुनीमजी वाहर चले गए थे अतः सेठजी ने उसे घर पर काम-काज करने के लिए भेज दिया था। फतह के लिए यह अवसर अत्यन्त अच्छा रहा। सेठजी के घर में अधिक परिवार नहीं था। सेठ, उनकी पत्नी कौशल्या और भगत बाबू की बहू गीता। वह सुबह से शाम तक उनकी जी-हुजूरी करता था। 'हां सेठानी जी', 'हां वहूजी' और 'हुक्म बाबूसा' के कहते-कहते उसका गला सूख जाता था।

रात को लगभग वह आठ बजे आता। शौच आदि से निवृत्त होकर वह छत पर बने रसोईघर में अकेला बैठा रहता था। नीचे बड़ा आंगन और कमरों में जलते हुए प्रकाश को वह अनिमेष दृष्टि से देखता था। 'सबका जीवन सुखी है। सब अपने-अपने बाल-बच्चों में मस्त हैं। सब खूब धन कमाते हैं। पर वह अब भी साठ रुपये साल कमाता है।' गत वर्ष उसकी तरक्की हो गई थी। हवा के झोंके उसके मन में कंपकंपी उत्पन्न करके चले जाते थे। पर वह दीवार के सहारे बैठा रहा। कभी-कभी वह तारों को देख लेता था और कभी-कभी वह यूंही खड़ा होकर सड़क पर दृष्टि डाल लेता था।

अप्रत्याशित उसे किसीके हल्के कदमों की आहट सुनाई पड़ी। आहट क्रमशः उसकी ओर आती गई। उसने उस अन्धेरे में बढ़ती छाया को पहचानने का प्रयास किया। सोचा, 'मामी होगी।' और दूसरे क्षण उसने कहा, "मामीजी!"

छाया गहरी घनी होकर उसकी ओर बढ़ती गई। अचानक एक भय की लहर उसके तमाम शरीर में दौड़ गई।

"कौन हो सकता है?" उसने एक बार ज़ोर से अपने मन को पूछा। वह

खड़ा हो गया।

"तुम डर गए क्या ? मुझे नहीं पहचाना ?"

"नहीं।"

"मैं हूं ?"

"कौन मैं ?"

"शिवली।"

"इतनी रात गए क्यों आई हो ?"

"पहले रसोईघर में चलो।"

"लेकिन…?"

"देखो फतह, मेरा इतना-सा कहना मान लो, चलो न। मुझे तुमसे एक जरूरी काम है !" उसका स्वर अत्यन्त भावपूर्ण हो गया। उसमें चुम्बक-सी शक्ति उत्पन्न हो गई। फतह उसके साथ चल पड़ा।

रसोईघर में उसने जाते ही लालटेन जलाई।

शिवली की आंखों में वैसे ही भाव थे, जैसे भाव उस दिन उसने देखे थे। शिवली उसके समीप आई। उसके कन्धे पर अपना हाथ रखकर बोली, "मेरी बहिन को तुम कहां छोड़ आए ?"

"मैं तुम्हारा मतलब नहीं समझा ?"

"बड़े भोले हो ? क्या तुमने अभी तक विवाह नहीं किया ?"

"नहीं ?"

"सच !"

"राम,राम, फिर तुम अकेले कैसे रहते हो ?" वह फतह के और समीप आ गई। नारी के प्रथम उत्तेजित स्पर्श ने उसे जड़ बना दिया। वह भयभीत स्वर में बोला, "तुम्हें यहां नहीं आना चाहिए। तुम्हें कोई देख लेगा तो…?"

"तुम उसकी चिंता क्यों करते हो ? फतह, तुम मुझे खुश कर दोगे तो मैं तुम्हें पिताजी को कहकर अच्छा काम दिला दूंगी।"

"शिवली !"

शिवली उसके और समीप आ गई। वह बोली, "मैं क्या करूं ? मेरा पति

क्षय से पीड़ित है। शादी के बाद चंद रात्रियों के अतिरिक्त केवल शून्यता-जनित एकांत।"

"लेकिन•••?"

"लेकिन क्या ? अगर मेरे पति की जगह कोई स्त्री होती तो यह पुरुष दूसरा विवाह कर लेता। तुम पुरुष भी कितने स्वार्थी हो ! यदि तुम्हारी इच्छा किसी स्त्री को हड़पने की हो गई हो तो तुम उसकी कुछ भी नहीं सुनते हो ! तुम्हारा धर्म,-कर्तव्य और नैतिकता सब रखी रह जाती है और मैं••• अर्थात् एक नारी••••फतह, मैं तुमसे प्रार्थना करती हूं।"

"तुम यहां से जा सकती हो।" धार्मिक नेता की तरह अकड़कर उसने कहा, "तुम किसीकी पत्नी हो ! जानती हो कि मनुष्य का इससे पतन हो जाता है ! मुझे जीवन में बड़ा आदमी बनना है।•••शिवली !"

"फतह ! चार वर्ष बीत गए हैं। मैं बहुत दुःखी हूं। मैं साध्वी-सती का जीवन अब नहीं बिता सकती। जबसे तुम्हें देखा है, तब से हर घड़ी सोचती हूं कि मैं तुमसे दो-चार प्यार की मधुर बातें कर लूं। पर कई दिन से यहां तक आती थी और किसी अज्ञात भय से कांपकर लौट जाती थी।"

"आज तुम फिर लौट जाओ। यह अच्छा ही रहेगा।"

उसके इस कथन के साथ ही शिवली को गुस्सा आ गया। वह हठात् नीचे चली गई। जाते समय उसने इतना ही कहा, "नपुंसक !"

नपुंसक शब्द और वह घटना वह भुलाए न भूला। उसे वह बहुत परेशान करती रही। उसे प्रतीत हुआ कि अगर वह इस घटना को किसीसे नहीं बताएगा तो पागल हो जाएगा। तब उसने अपने एक मित्र हरदास को सारा किस्सा सुनाया। हरदास सुनकर उन्मादित व्यक्ति जैसी अपार प्रसन्नता से उछल पड़ा, "वास्तव में तुम नपुंसक हो।"

भयमिश्रित विस्मय फतह के नेत्रों में चमक उठा।

हरदास खिलखिलाकर हंस पड़ा, "मर्द होते तो उस छोकरी को अपने कब्जे में कर लेते। फिर तुम्हें पता लगता कि तुम बड़े आदमी कितनी जल्दी

बनते हो ! क्या तुम बिना नीचतापूर्ण कार्य के दौलत प्राप्त करना चाहते हो ?" और उसने एक लखपति सेठ की कहानी सुना दी । वह लखपति सेठ किसी ज़माने में सड़कों पर अंगोछे बेचता था और आज कई दूकानों और मकानों का मालिक है । इसमें इतना ही रहस्य है कि उसने एक बंगाली विधवा को अपने यौवन द्वारा मोह लिया था और उस विधवा ने अपना सर्वस्व उसपर विसर्जन कर दिया था।,,

हरदास कुछ क्षण चुप रहकर बोला, "उस सेठ ने भी जीवन-भर उस बंगालिन को दूसरी पत्नी ही माना । अभिजातवर्ग में ऐसा चलता ही है । मैं उस सेठ को इसलिए सम्मान की दृष्टि से देखता हूं क्योंकि उसने बाद में अपना धर्म निभाया । उस बंगालिन बेवा का सारा धन लेकर उसने उसकी उपेक्षा नहीं की । उसे प्रतिष्ठा और पद दिया । उसके सभी लड़के उसे 'बहू मां' कहकर पुकारते थे ।"

फतह को लगा कि हरदास ठीक कहता है । पैसा ऐसे कहां से आ सकता है ? उसके लिए साधन.... साधन... साधन !

और वह काफी देर तक गंभीर बना रहा । हरदास ने उसके अन्तर्द्वन्द्व को भांपते हुए कहा, "मैं कहता हूं कि उस लड़की को अपने कब्ज़े में कर लो और... ?"

पर उसके बाद शिवली ने उसकी ओर देखा भी नहीं । वह रात को घंटों छत पर बैठा रहता था । प्रतीक्षा में आकुल, आतुर फतह चहलकदमी में मादक शीत के झकोरों को भी भूल जाता था, पर शिवली एक बार भी ऊपर आई नहीं । तब वह उसके घर जाने लगा । शिवली ने उसकी ओर ताका भी नहीं । आखिर एक दिन उसने शिवली से पूछा, "मुझसे बहुत नाराज़ हो ?"

"मैं तुमसे क्यों नाराज़ होऊं ? मैं नाराज़ अपने भाग्य से हूं । भाग्यहीन थी ही और अब आशाहीन भी बन गई हूं ।"

"उस दिन मैं तुम्हारी पीर को नहीं समझ पाया था ।"

"और मैं उस दिन अपने धर्म को नहीं समझ पाई थी । मैं परिणीता हूं । दूसरे पुरुष की कामना ही मेरे लिए पाप है । तुम जानते हो कि मुझे पाप के

प्रायश्चित्त के रूप में एक उपवास रखना पड़ा—आत्मपीड़ा में निरन्तर जलना पड़ा।"

पराजित योद्धा की तरह वह बोला, "मुझे क्षमा नहीं करोगी ?"

उसकी आंखों में घृणा चमक उठी। कठोरता की रेखाएं उसके मुख पर नाच उठीं। वह बोली, "क्षमा ? मैं तुम्हें क्षमा कैसे कर सकती हूं ? मैं स्वयं अपराधिन हूं। मैंने एक छिनाल की तरह तुम्हारे सम्मुख अपनी बेहयाई का प्रदर्शन किया। कुछ समझ में नहीं आता। मुझे किस भावना ने ऐसा वासना-मय बना दिया था ! मैं अत्यन्त लज्जित हूं। तुमसे क्षमा मांगती हूं। ऐसी मांग अत्यन्त नीच कुलटा भी नहीं कर सकती।" कहकर शिवली ने अपने नेत्र झुका लिए।

नादान बालक की तरह वह शिवली को देखता रहा : क्या यह वही शिवली है जो एक रात अन्धेरे में जन्म-जन्मान्तरों की प्यासी की भांति उसके पास आई थी ? उसकी आंखों में उद्दाम वासना थी और समर्पण की लालसा थी। ओह ! नारी भी क्या है ! अगम, अगोचर और अकथ।

वह चला आया। दिन-भर वह भगत के घर पर अनिच्छा से कार्य कराता रहा। उस दिन उसे बार-बार ऐसा महसूस हो रहा था कि कोई अज्ञात शक्ति उसे आज कार्य करने को बाध्य कर रही है। वह अज्ञात शक्ति का सही परिचय नहीं पा सका। क्योंकि उसके कर्म में एक यांत्रिकता समाविष्ट हो गई थी।

भगत बाबू के यहां से वह सिरदर्द का बहाना बनाकर चला आया। वह हरदास के पास गया। हरदास की छोटी-सी मनिहारी की दूकान थी। उसने हरदास के पास जाकर सारी कथा सुनाई। हरदास उस दिन की तरह खोखली हंसी हंसकर बोला, "चिड़िया हाथ से निकल गई ! क्या तुम यह समझते हो कि सदा-सदा कोई नारी इस तरह निर्लज्ज और अनावृत होगी ? मेरे भाई, जीवन में ऐसे भी क्षण आते हैं—इतने उत्तेजित-विचलित क्षण कि आदमी अपने अन्तस् के चरम सत्य को विस्मृत करके एकदम अनावृत हो जाता है।"

"पर मैं अब बहुत परेशान हूं। मुझे अब बड़ा दुःख हो रहा है। मेरे हाथ

से वह मौका क्या सदा के लिए चला गया ?"

"एकदम चला गया। और तुम्हारे कारण ही चला गया। तुम एकदम मूर्ख हो ? मूर्ख ही नहीं—गधे हो। आदमी में एक कौए जैसी सजगता और चतुराई होनी चाहिए।"

हताश होकर फतह आ गया। उस दिन वह बड़ी रात गए घर लौटा। अपने-आपको धिक्कारता रहा। उसके भीतर से बार-बार यही ध्वनि उठती थी कि तुम पैसेवाले नहीं बन सकते, नहीं बन सकते।

और इस ध्वनि के कारण वह मरणासन्न-सा हो गया। अतीत की स्मृतियां उसपर खिलखिलाकर हंस पड़ीं। उस दिन के बाद वह निरन्तर इसी प्रयास में लगा रहता था कि वह शिवली को पुनः राज़ी करेगा।

नई-नई सुबह।

निर्मल नीला आकाश धरती के शृंगार को सूर्य-रश्मि द्वारा छू रहा है। कितने ही तरुण जोड़े धर्मतल्ला के आगे विस्तृत हरी-हरी श्यामल दूब को रौंदते हुए घूम रहे हैं।

फतह भी महीनों के बाद आज प्रसन्नमन उस मैदान में घूम रहा था। गत दिनों एकाएक हृदयगति रुक जाने से सूर्यमलजी का देहान्त हो गया था। भगत अब पूरी सम्पत्ति का स्वामी बन गया था। उसे प्रसन्नता इस बात की थी कि गीता उसकी ओर आकर्षित हो रही है। कल उसने विहंसकर उसका हाथ भी पकड़ लिया था। अब की बार उसने पहले की भांति गलती नहीं की। वह गीता को एक अजीब मुस्कराहट से देखता रहा।

दोपहर थी।

गीता अपने कमरे में बैठी हुई कोई धार्मिक ग्रन्थ पढ़ रही थी। सूर्यमलजी की मृत्यु के उपरान्त भगत बाबू यदा-कदा गीता के पास आते थे। मैं आपको पहले ही बता चुका हूं कि वह महिषी थी—दोनों अर्थों में। कैसे ? भगत बाबू की

पटरानी और भैंस की तरह रूपवती।

फतह उनके पास फल लेकर गया था।

"सेठजी को तुमने इधर देखा?" गीता ने उससे पूछा।

"नहीं।"

"आजकल वे कहां रहते हैं?"

"मैं नहीं जानता। आप स्त्री हैं और स्त्रियों के पेट में कोई बात नहीं पचती। मैं आपको उनके बारे में कुछ रहस्यपूर्ण बातें बता दूंगा तो आप नाराज़ हो जाएंगी। अगर आपने कहीं उन्हें कुछ कह दिया तो मेरी नौकरी छूट जाएगी। फिर, एक सच्चे और ईमानदार नौकर को अपनी मालकिन से अधिक अपने मालिक के प्रति ईमानदार और वफादार रहना चाहिए।"

कहकर फतह चला आया। कई दिनों से उसने जो योजना बनाई थी, वह आज कार्यान्वित होने को जा रही थी। वह जान गया था कि इस घर में सबसे अधिक दुःखी और संतप्त प्राणी कोई है तो वह गीता। वह हर घड़ी उसकी दुर्बल भावनाओं को सहलाता रहता था। उसकी खूब प्रशंसा करता था। धीरे-धीरे उसने महसूस किया कि गीता की असीम कृपा की किरणें उसपर पड़ने लगी हैं और आज जब उसने स्वयं उससे प्रश्न कर लिया तब उसने एक ऐसी अधूरी बात कह दी जिससे उसकी उत्सुकता जागरित हो गई।

उसने थोड़ी ही देर में फतह को वापस बुलाया। फतह यह जानता भी था कि उसे तुरन्त बुलावा आनेवाला है। और वह प्रतिक्षण उस आमंत्रण के लिए व्यग्र रहने लगा। जब नौकरानी खेतड़ी ने उसे कहा, "आपको गीता बहूजी बुला रही हैं," तब उसके मन की बाछें खिल उठीं। वह अपने को नाटक के अभिनेता की तरह तैयार करके गीता के सम्मुख गया।

"क्या है बहूजी?"

"फतहजी, ज़रा बैठिए।"

फतह गम्भीर मुद्रा बनाकर बैठ गया।

"आपने अधूरी बात कहकर मुझे और चिंतित कर दिया। मैं आपको धर्म

की सौगन्ध खाकर कहती हूं कि आपकी कही हुई बात को किसीसे भी नहीं बताऊंगी।"

भगत की बुरी आदतों से फतह परिचित था ही। भोग-विलास-सम्बन्धी उसने कई विचित्र कथाएं भी सुन रखी थीं। वह उन्हें कुशल कथाकार की तरह गीता के सम्मुख प्रस्तुत कर सकता था और उसके बदले वह गीता की हमदर्दी एवं विश्वास प्राप्त कर सकता था, पर उसने सब बातें उगलना ठीक नहीं समझा।

वह अत्यन्त संयत होकर बोला, "बहूजी, मैं आपकी दुर्दशा नहीं देख सकता। मुझे आपपर होते अन्याय नहीं देखे जाते।"

"जो भाग्यहीन हैं, वे सुख को कैसे पा सकते हैं?"

"नहीं बहूजी!" वह एक अत्यन्त विद्वान की तरह बोला, "मनुष्य भाग्य को सर्वोपरि मानकर अन्याय व अधर्म सहता रहे, यह न्यायोचित नहीं।" वह क्षण-भर गीता के उन्मन आनन को देखता रहा, "मनुष्य केवल भाग्य के बल पर अकर्मण्य हो जाता है। उसे कुछ करना चाहिए।"

"मैं क्या कर सकती हूं?"

"आप यह कहिए कि आप क्या नहीं कर सकतीं?" फतह हठात् बोला, "पर आप एक अच्छी औरत की तरह सब सहती हैं—विवाहित होकर पति-वियोग बिना वजह सहती हैं।...मैं आपसे एक प्रश्न पूछता हूं।" कहकर वह चुप हो गया।

गीता ने उसे ऐसे भाव से देखा जैसे वह कह रही हो कि पूछिए।

"क्या रूप ही सब कुछ है?"

"......।" वह एकदम निश्चल हो गई।

"रूप और यौवन के अतिरिक्त भी एक चीज़ है, वह है हृदय।" वह तेजी से बोल रहा था। क्योंकि उसके मन में अभी तक उस पंक्ति का प्रसंग नहीं टूटा था कि 'आप क्या नहीं कर सकतीं?...आप भी दो-चार पुरुषों को पाल सकती हैं। आपके पास यथेष्ट धन है।' लेकिन पहले-पहल वह ऐसे शब्द कहकर गीता को नाराज नहीं करना चाहता था। वह जानता था कि हर लड़की शिवली नहीं हो सकती। स्त्री, वह भी भारतीय स्त्री, झट से पति को नहीं छोड़ सकती।

इसलिए पहले वह कुछ ऐसी बातें कहना चाहता था जिससे वह उसके मन की थाह पा सके।

वह अपनी आंखों में चिंता को झलकाते हुए बोला, "आपके हृदय में कितनी श्रद्धा, कितनी करुणा और कितनी भक्ति है! अगर कोई जौहरी होता तो वह आपकी कीमत आंकता।"

थोड़ी देर गम्भीर मौन छाया रहा।

अचानक गीता बोली, "अपनी नौकरानी खेतड़ी कहती है कि मुझे कंकर का जवाब पत्थर से देना चाहिए।"

यह सुनते ही फतह के मन में खुशी का हिलोरा उठा। जो बात वह कहना चाहता था, वह परोक्ष रूप से खेतड़ी ने कह दी, कदाचित् गीता ने अपनी ही बात खेतड़ी के माध्यम से कही हो तो? उसको इस विचार से उत्साह मिला। वह गम्भीर होकर बोला, "वह मूर्ख है। जीवन में मूर्खता अत्यन्त पीड़ादायक होती है। बहूजी! आप पैसेवाली हैं। भगवान का दिया आपके पास सब कुछ है। आप अपनी तमाम उम्र अपने पीहर में व्यतीत कर सकती हैं। आपके संकेत पर कौन युवक आपके चरण चूमना सौभाग्य नहीं समझेगा! आपको बुरा अवश्य लगेगा, कदाचित् आपको थोड़ा दुःख भी हो, पर यह सही है कि भगत बाबू आपको एक खुजलाई हुई कुतिया ही समझते हैं और अपने को परियों के देश का राजकुमार! जब कि वे ऐसे सुन्दर नहीं हैं। हां, रुपयों की आकर्षक नदी में बाज़ारू औरतें स्नान करना अपना कर्तव्य समझती हैं। जो शरीर का सौदा केवल धन के लिए करती हैं, उन लड़कियों के अतिरिक्त उन्हें कौन हार्दिक प्यार करता है? कोई भी प्राणी केवल रुपयों की बदौलत औरतों को सदा अपनी ओर आकर्षित नहीं कर सकता।"

"फिर वे रात-रात-भर कहां रहते हैं?"

"मैं आपको सब कुछ बता सकता हूं। मुझे आपसे सहानुभूति है। क्योंकि आप जैसी धीर-गम्भीर स्त्री सबसे बड़े आनन्द से वंचित रहकर, एक उपेक्षिता का जीवन बिताए, यह मेरे जैसे वफादार नौकर के लिए शर्म की बात है।"

उसका बायां हाथ अनायास ही फतह के हाथ पर चला गया।

"फतहजी, आपको बताना ही होगा।" आवेश और उत्तेजना-भरा मन एका-एक ठिठक गया। उसने अपने बायें हाथ को अलग कर दूसरे हाथ से उसे इस तरह भींचा जैसे उसके बायें हाथ से अभी-अभी बिजली का करेंट दौड़ा हो। लज्जा से उसका मस्तक झुक गया। फतह के अधरों पर कुटिल मुस्कान दौड़ गई। तत्क्षण गीता ने उसे विनती-भरी दृष्टि से देखा। वह अपने कान को सिर नीचा करके खुजलाने लगा। वह अपनी झेंप मिटाता हुआ बोला, "वे अर्थात् आपके पति और मेरे स्वामी उन्हीं स्त्रियों के पास जाते हैं जो केवल पैसों के लिए पुरुष से प्यार करती हैं। जिन्हें जिस्म के सौदे में ज़रा भी हिचकिचाहट नहीं होती। वे अपने शरीर के अंगों को उतनी ही लापरवाही से बेचती हैं जितनी लापरवाही से मालिनें अपनी बेकार सब्ज़ी को रात में बेचती हैं।...और हां, कभी-कभी वे औरतें अपने प्रेमी से अधिक धन मिल जाने के प्रलोभन में उसकी हत्या तक भी कर देती हैं।......मेरी इन सभी बातों के कहने का तात्पर्य यह है कि आपके पति वेश्याओं के यहां जाते हैं और रात-रात-भर गाना सुनते हैं।"

फतह एकदम चुप हो गया। कमरे में घोर सन्नाटा छा गया। गीता हतप्रभ सी उसे देखती रही।

फतह फिर बोला, "मैंने जो कुछ कहा है, वह आपकी आज्ञा से कहा है। आपकी आज्ञा को मानना भी मेरा कर्तव्य ही है। क्योंकि इस घर में आपका भी आधा अधिकार है। पति की पत्नी अर्धांगिनी होती है। किन्तु इतना ख्याल रहे, ऐसी बातें पेट में ही रहनी चाहिएं।" और उसने मन ही मन कहा, 'और आपका पेट, ईश्वर की कसम, बहुत बड़ा है, गणेश के उदर की तरह।' वह खिलखिलाकर हंसना चाहता था, पर वह गीता की नाराज़गी से डर गया। दूसरे वह अभी गम्भीर बना रहना चाहता था।

गीता ने अपना मौन नहीं तोड़ा।

"आपके दुःख को मैं जानता हूं। एक चरित्रहीन पति की सीधी-सादी और भोली पत्नी के अन्तस्तल का मर्म मुझसे छिपा नहीं है। हाय ईश्वर, तुमने औरत बनाई ही क्यों? मैं कहता हूं, औरत का जन्म मृत्यु से भी भयानक है। अंगारों पर चलने से भी अधिक पीड़ादायक है।......बहूजी, विश्वेश्वर टंडन

की बहू अपने चरित्रहीन और वेश्यागामी पति के अत्याचार सहती-सहती पागल हो गई। भगवान ऐसा न करे कि आपको ज़रा भी कष्ट हो। मैं आपके अहित की दुष्कल्पना सपने में भी नहीं करता। सच कहूं, मुझे आपके प्रति आत्मिक श्रद्धा है। इस कलिकाल में कौन पत्नी अपने दुश्चरित्र पति की उपेक्षा, तिरस्कार, दुत्कारें और वियोग सहती है, जबकि आप खुद लाखों की मालकिन हैं। यदि आप भी ऐसी ही होतीं तो भगत बाबू को मालूम होता कि पीड़ा क्या होती है! पराई पीर हंसने की पीर है और खुद की पीर रोने की। अच्छा, मैं अभी चलता हूं।...नमस्ते!" वह दरवाज़े तक गया और वापस आकर बोला, "देखिए, मैंने ये सभी बातें आपको अपनी समझकर कही हैं, बुरा न मानिएगा और इन्हें अपने तक ही सीमित रखिएगा।"

उसने उसी दृष्टि से देखा जिस दृष्टि से शिवली ने उसको प्रथम बार देखा था।

गीता ने कहा, "मैं आपकी बात को अपने मन में छिपाकर रखूंगी।" वह उठकर उसके पास आई। उसकी ओर देखती रही। वह कुछ कह न सकी।

"अच्छा, मैं अभी जाता हूं।" वह जाने लगा, तभी गीता ने उसका हाथ पकड़कर कहा, "फतहजी!" और उसने अपना हाथ इस तरह वापस खींचा जैसे यह भूल से हो गया हो। पर फतह के अधरों पर कुटिल मुस्कान छिटक गई। वह समझ गया कि हर बुद्धिमान स्त्री इसी तरह जान-बूझकर किए गए कार्यों की महत्ता को निर्मूल करने के लिए ऐसा ही अभिनय करती है।

"आप उनको कहिएगा कि मैंने उन्हें याद किया है।"

"बहुत अच्छा।"

स्मृति का एक आवर्त समाप्त हो गया। सामने से आती हुई एक कार की भों-भों ने उसके ध्यान को भंग कर दिया। वह अचकचाकर एक ओर हो गया।

सूर्य कुछ ऊपर चढ़ आया था।

आज वह छुट्टी लेगा। छुट्टी लेने का एक ही बहाना है—पेट में दर्द या सिर में दर्द।

आदमी सुख की अनुभूति के बीच किसी तरह का व्यवधान नहीं चाहता। वह डूबा रहना चाहता है—आकंठ; अपनी स्वर्णिम और मधुर मस्ती में।

वह एक वृक्ष के तने का सहारा लेकर बैठ गया। अपनी स्मृति को पुनः जोड़ने लगा।

गीता से मिलने के बाद वह भगत बाबू के पास गया। वे दफ्तर में ही थे और किसी कार्य में व्यस्त थे। वह बिना कुछ खबर दिए उनके पास चला गया। उसे सभी जानते थे कि वह घर का मुनीम है और भविष्य में भी वह इसी पद पर प्रतिष्ठित रहेगा। उसका काम संतोषप्रद था और उसकी ईमानदारी और सचाई दर्पण की भांति अपना प्रतिबिम्ब फेंक रही थी।

फतह को देखते ही भगत बाबू प्रश्न-भरी दृष्टि डालकर बोले, "क्या है फतह ?"

"अर्ज़ है कि आपको बहूजी ने याद किया है।"

"अच्छा !"

"जी।"

"ठीक है। अब तुम जा सकते हो।"

फतह चला आया। रात-भर वह गीता के बारे में सोचता रहा। खेतड़ी ने बताया था कि जब कभी भी भगत बाबू घर आते हैं तब गीता अंग्रेजी मेम की तरह अपनी सजावट करती है। अपने फूले हुए काले गालों पर पाउडर मलती है। ललाट पर बिंदिया लगाती है। नई साड़ी पहनती है। प्रायः वह नीली साड़ी ही पहनती है क्योंकि सफेद साड़ी में उसका काला रंग हास्यास्पद लगता है। वह फिर कमरे में अपने पति की प्रतीक्षा करती है। भगत बाबू के कदमों की आहट आती है तो उसका हृदय भर आता है और आंखें छलछला आती हैं।

पति आता है। महासमर्पण की उद्दाम भावना लिए वह पति के सम्मुख जाती है। पति इधर-उधर की पांच-दस बातें करके पड़ जाता है। वह कुछ उसके अतिरिक्त भी बात करना चाहती है। लेकिन भगत बाबू निश्चल पत्थर की तरह मखमली शय्या पर पड़ जाते हैं। तब उसके अन्तस् का अतृप्त प्रेम

हाहाकार कर उठता है। उसकी भावनाओं पर भाले जैसे प्रहार लग जाते हैं और उसका विषाद आंखों में खारा पानी बनकर बह जाता है।

फिर भी पति के साथ एक शय्या पर सोकर गीता एक अपूर्व आनन्द का अनुभव करती है। उन क्षणों को वह जीवन का अनुपलब्ध क्षण समझती है और उसे ईश्वर का महाप्रसाद समझकर इस तरह ग्रहण करती है जैसे स्वाति बूंद को पपीहा ग्रहण करता है।

पर सुबह होते ही उसपर एक घृणा का भाव असर करता है। वह अपने शृंगार को नष्ट-भ्रष्ट करती है और साड़ी को कभी-कभी कैंची से फाड़ भी देती है और सारे दिन तक भोजन नहीं करती।

इस विक्षिप्त रूप की कल्पना करके फतह अत्यन्त आनंदित हुआ। उसे लगा कि सवेरे-सवेरे ही गीता ने अपने कपड़ों को कैंची से फाड़ा होगा और अपने विकराल रूप में वह खेतड़ी पर बरस पड़ी होगी। उसके चेहरे पर कुटिल मुस्कान नाच उठी और उसकी इच्छा हुई कि वह एक बार खुशी में नाच उठे। वह नाच नहीं सका, पर उसने अपने-आपकी एक नृत्यकार के रूप में कल्पना ज़रूर कर ली।

सूर्य बढ़ रहा था।

वह उठा और मैदान के बीचोंबीच निरन्तर यात्रियों के चलने से बनी पग-डंडी पर चलता रहा।

'आज मैं काम पर नहीं जाऊंगा। गीता बहू मेरी हर क्षण प्रतीक्षा करेगी! अपनी व्यथा को वह करुणा की ध्वनि करनेवाले शब्दों में रखना चाहेगी! मेरे सम्मुख वह गाय की तरह दीन होकर भगत बाबू की शिकायत करेगी? मेरे हाथ का स्पर्श करेगी! मैं भी आज···!'

और वह एकाएक गम्भीर हो गया, 'हरदास ठीक कहता था कि लखपति बनने के लिए मनुष्य को अपना नैतिक पतन करना ही पड़ता है। बिना छल-छन्द के पैसा नहीं आ सकता!···ओह! गीता बहूजी को मैं अपने कब्जे में कर लूंगा, फिर उससे कुछ धन ठगूंगा, फिर अपना व्यापार करूंगा, खूब रुपया कमाऊंगा, शादी करूंगा, उन दोस्तों से गिन-गिनकर बदला लूंगा···। हा-हा-हा!'

वह उन्मादित हो उठा। पर दूसरे क्षण वह एक आदमी से टकरा गया और चौंककर उसने उससे क्षमा-याचना की।

मां की चिट्ठी आई थी।

फतह पत्र पढ़कर गद्‌गद हो गया। मां का निश्छल प्यार और उसके सुखी होने की हार्दिक कामना ने उसको अत्यन्त प्रभावित किया। उसने हर बात की दो पंक्तियों के पश्चात् उसकी मंगल-कामना की थी। वह सोचता रहा—'दुर्निवार प्रहार भी मां की ममता को नहीं मिटा सकते।' अन्त में मां ने लिखा था, "मैंने तुम्हारे लिए एक अत्यन्त रूपवती कन्या देखी है। उसका नाम है पद्म। पद्म की तरह ही उसका मुख है। मैं कल जाकर उससे तुम्हारी मंगनी निश्चित कर आऊंगी। मुझे उम्मीद है कि तुम दो-तीन हज़ार रुपये अपने सेठजी से मांग लाओगे।"

'पद्म!'

वह इस शब्द की महिमा पर सोचता रहा। उसकी सुरभि और मादकता उसके दिलो-दिमाग को सुवासित करने लगी। उसे लगा कि वह सचमुच उस महान सुख से वंचित है जिसके लिए स्त्री-पुरुष ईश्वरीय विधान के कठोरतम दंडों की अवहेलना करते हैं।

दोपहर तक वह मादक कल्पनाओं में झूलता रहा।

सेठजी के यहां से बुलावा आ गया था। वह गया। वह रास्ते-भर अपने बालों को बिखेरता रहा। हालांकि वह टोपी पहने हुए था, पर वह अपने हृदय की खुशी को कृत्रिम उदासी में छिपाना चाहता था। बार-बार उसके मन पर 'पद्म' की सुगन्ध छा जाती थी और वह अपने-आपको पुनः उदास करने की चेष्टा करता था। इसी उधेड़-बुन में उसने रास्ता सदा की अपेक्षा जल्दी से तय कर लिया।

बाड़ी में पहुंचते ही गीता की सास ने सबसे पहले उससे पूछा, "क्या बात

है फत्तू, आज तू आया नहीं ?"

"क्या करूं सेठानीजी, सवेरे से ही सिर में ज़ोर का दर्द है।" यह सर्वथा बहाना था और इसलिए जब वह यह कह रहा था तब उसकी नज़र नीचे झुक गई थी।

"कौनसी दवा ली है ?"

"दवा कुछ भी नहीं ली। बाम लगाया था।"

"सर्दी लग गई होगी ? ऐसा करना कि रात को सोते समय ऊकाली (धनिया, मिश्री, काली मिर्च का मिक्सचर) ले लेना। सवेरे ही सब ठीक हो जाएगा।" उसने बिना पूछे ही उपचार बता दिया।

"ठीक है !" कहकर वह सीधा गीता के कमरे की ओर चला। रास्ते में उसे खेतड़ी मिल गई। वह उसे देखते ही बोली, "आज बहूजी का मिजाज ठीक नहीं है। कल भगत बाबू आए थे और रात को ही कोई उन्हें बुलाने आ गया, इसलिए वे वापस चले गए।"

फतह ने उसकी ज़रा भी चिन्ता नहीं की। वह निर्भयता से उसके कमरे में घुसा।

गीता को पहले ही फतह के आगमन का आभास मिल गया था। वह अपने दोनों हाथ कमर पर लटकाए, सिर झुकाए चहलकदमी कर रही थी। उसका चेहरा लाल था और उसके चेहरे की कठोरता से स्पष्ट लग रहा था कि वह अवश और उत्तेजित है। फतह को देखते ही उसकी आंखों में आंसू छलछला आए और करुण क्रन्दन करती हुई वह बोली, "मुझे तुम जहर लाकर दे दो। मैं अब जीवित रहना नहीं चाहती।"

फतह ने उसे ढाढस बंधाते हुए कहा, "शान्ति से यह बताइए, आखिर बात क्या है ?"

"मैं अब और अधिक अपमान नहीं सह सकती।"

"आपका अपमान ?"

"मैंने तुम्हें उनके पास भेजा था। वे मेरे कहने पर आए भी थे और फिर न जाने क्यों चले गए ? मैंने उन्हें बहुत रोका, पर वे एक निर्दय की तरह मुझे

ठुकराकर चले गए। न जाने कौन अनजानी दुष्टा रात को चोर की तरह मेरा सुख लूटकर ले गई।"

"यह दुःख की बात है, अपमान और पीड़ा की बात है, पर मैं क्या कर सकता हूं ? मैं उन्हें कुछ भी नहीं कह सकता। एक अदना नौकर हूं जिसका कोई अस्तित्व नहीं है। जो अपने स्वामी के सामने केवल स्वामीभक्त कुत्ते की तरह टुकुर-टुकुर देख सकता है।"

"पर मैं उन गंदी औरतों से निःसन्देह बहुत अच्छी हूं। आखिर मैं उनकी पत्नी हूं, अर्धांगिनी हूं।" वह बहुत उत्तेजित हो गई थी।

"आप शांति रखिए। मैं जानता हूं—आपके दिल को ठेस लगी है। आप की व्यथा का कोई पार नहीं है। कोई भी सम्मानप्रिय स्त्री जो अपने मैके से लाखों रुपयों की सम्पत्ति लाई हो, वह इस तरह का अनुचित दबाव सहन नहीं कर सकती ! मैं आपकी प्रशंसा किए बिना नहीं रह सकता क्योंकि आपने उनके इतने अत्याचार सहकर भी धैर्य और शान्ति का परिचय ही दिया है।" उसने एक खलनायक की तरह अत्यन्त सुन्दर वाक्य कहे।

वह वेदना में डूब गई। आह निकालती हुई बोली, "ईश्वर, मुझे अपने पास बुला ले !" कहकर वह बेहोश-सी हो गई। फतह ने लपककर उसे उठाया। महिषी की मजबूत बांहें उसकी ओर लिपटने लगीं। फतह कांपने लगा। वह हतबुद्धि हो गया। पर कदमों की आहट से वे दोनों चौंक पड़े। गीता तुरन्त उठी और अपनी तिजोरी में से एक सोने का झुमका देते हुए कहा, "एकदम ऐसा ही बनाना है।" उसका इतना कहना था कि खेतड़ी आ गई।

"बहूजी।"

"क्या है ?"

"मांजी ने कहलवाया है कि आप कुछ नाश्ता कर लें।"

"चूल्हे में फेंक दो नाश्ते को !" वह जल उठी। खेतड़ी अपना मुंह उतारकर चली गई।

"कल तुम सवेरे आ जाना।"

फतह ने हौले से कहा, "हां !"

"ठीक नौ बजे।"

फतह खुश था। अब उसके हाथ में एक ऐसी चिड़िया आ रही है जो सचमुच सोने की है। जो सदा उसे सोने का अंडा दे सकती है। उसे एक तरह का जुनून-सा चढ़ गया। वह जुनून में ही सीधा हरदास के पास पहुंचा और उसने हरदास को सारी बातें बताई।

हरदास में उल्लास का संचार हो उठा, "वाह! सचमुच तुमने इस बार बाजी मार ली! अब तुम्हें लखपति बनने से कोई भी नहीं रोक सकता। पूंजी इकट्ठी करने के लिए आदमी को अनैतिक बनना ही पड़ता है। व्यापार में पाप-पुण्य और भले-बुरे की व्याख्या पर ध्यान नहीं दिया जाता। उसमें इतना ही ध्यान रखा जाता है कि वह दूसरे पूंजीपति से अधिक चतुर है या नहीं।"

"उसने मुझे कल नौ बजे बुलाया है।"

"तुम आठ बजे वहां जाना!" वह उसी उल्लास से बोला, "पर स्नान आदि करके। तुम्हारे सेठ के घर में कौन-सा सम्प्रदाय चलता है?"

"वैष्णव।"

"सिर पर तिलक निकाल लेना। गले में कंठी पहन लेना। मुख से 'श्रीकृष्ण-शरणं मम' का जप करते रहना।" वह क्षण-भर रुककर बोला, "वैसे तुम्हारा अपना सम्प्रदाय भी वैष्णव है। है न? हां, फिर सोने में सुहागा समझो। जो मर्ज़ी आए करो। पर इतना ध्यान रखो कि पाप, बुराई, चोरी और सीनाजोरी से प्राप्त की हुई किसी भी वस्तु को पहले कृष्णार्पण कर दो। दुष्कर्म करने के पूर्व तुम्हें अपने प्रभु को इतना निवेदन कर देना चाहिए कि मैं यह सब तुम्हारे लिए कर रहा हूं। जो ईश्वर-अर्पण है, वह क्षम्य ही नहीं, ग्राह्य भी है।"

फतह ने महसूस किया कि हरदास यह सब कहते हुए एक विचित्र आनंद में भूल रहा है।

"अब तुम जाओ और उस लक्ष्मी को अपने अधिकार में करो। लक्ष्मी की कृपा बार-बार नहीं मिलती।"

फतह वहां से सीधा आ गया। आते ही उसने एक पत्र अपनी मां को लिखा जिसमें उसने यह निवेदन किया कि तुम विवाह की तिथि लिखकर मुझे भेज दो,

मैं पन्द्रह दिन पहले आ जाऊंगा ।

उस दिन सुबह ही सुबह वह उठा । स्नान आदि से निवृत्त होकर वह पाठ-पूजा में व्यस्त हो गया । आज रात उसने मन ही मन संकल्प किया था कि द्वारका के नाथ ने उसको इस कार्य में सफलता दे दी तो वह उनके प्रसाद चढ़ाएगा ? वह नित्यप्रति अर्चन-वन्दन करेगा । आज की यह पूजा भी वह उसीके अनुसार कर रहा था ।

उसने अपने खानदानीदेव श्रीनाथजी की तस्वीर के आगे 'श्रीकृष्णशरणं मम' की ग्यारह मालाएं जपीं । मामी से मिला । उसको वह चिट्ठी बतलाई । मामी हर्ष से खिल उठी, "लिख दे, जल्दी से जल्दी बात तय करें ।"

"आप भी लिख दीजिए ।"

"तुम्हारे मामा से लिखवा दूंगी । मैं कुछ भी पढ़ी हुई नहीं हूं ।"

तब वह बाहर निकला । सड़क पर आवागमन हो गया था । वह भी रुकता-रुकता रवाना हुआ । सबसे पहले वह कालीजी के मंदिर गया । उससे भी अभ्यर्थना की । इसके पश्चात् उसने अपनी चिट्ठी छोड़ी ।

अब वह धीरे-धीरे मतवाले हाथी की तरह झूमता हुआ भगत बाबू के घर पहुंचा । उसने देखा—खेतड़ी कहीं बाहर गई हुई है । सेठानीजी मंदिर में अपने इष्टदेव की सेवा में लीन हैं । वह भी गया । सबसे पहले उसने सेठानीजी के आराध्य को नमस्कार करके 'जै श्रीकृष्ण' कहा । सेठानीजी ने उसकी ओर देखा—फतह के सिर पर तिलक देखकर उसका मुख भी उल्लास से भर उठा । सेठानीजी ने अति प्रसन्नता से कहा, "आज जल्दी आ गए हो ।"

"हां सेठानीजी, बहूजी ने बुलाया है ।"

"आज प्रसाद यहीं ले लेना । मुझे दस बजे मंदिर जाना है ।"

"जो हुक्म ।" उसने हुक्म के गुलाम की तरह गर्दन झुकाकर कहा, "मैं यहीं हूं ।"

वह तुलसीचरणामृत लेकर गीता के पास आया। गीता ने उसे देखकर कहा, "ज़रा देखकर आओ कि और नौकर-चाकर क्या कर रहे हैं।"

उसने बाहर आकर देखा—सब अपने-अपने कार्य में व्यस्त हैं। वह वापस लौट गया।

"तुमने अपने विवाह के बारे में क्या सोचा?"

"मां मेरा जल्दी ही विवाह करना चाहती है पर मेरे पास रुपया नहीं है।"

"क्या कहते हो, मेरे होते हुए उन्हें किसी तरह की चिंता नहीं करनी चाहिए। आखिर तुम हमारे अच्छे नौकर हो।"

"मैं आपके ही भरोसे सब काम कर रहा हूं।"

"जो अपना होता है, उसीसे कुछ आशा की जाती है।"

इसके बाद इधर-उधर की बातें होती रहीं। बातों के सिलसिले में ऐसे भद्दे संकेत होते रहे जिसका वर्णन करना खतरे से खाली नहीं है। संकेतों की अंत में कार्य के रूप में परिणति हुई। अनैतिक कृत्यों का पर्दाफाश स्पष्ट भाषा में हो तो उसका नंगा व घृणित रूप हमारे समक्ष प्रस्तुत होता है, किंतु अगर उसको गूढ़तम शब्दावली में रखा जाए तो अपरिपक्व मनवाले पाठकों के लिए शोध का विषय बन सकता है। अतः मैं न चाहकर भी उसे संकेत में रख रहा हूं ताकि उसे अश्लीलता की संज्ञा से विभूषित न किया जाए और वह पाठकों के मन में उत्तेजनापूर्ण कल्पनाएं छोड़ जाए कि उन संकेतों के चित्र क्या हो सकते हैं।

फतह की साध पूरी हो गई। पहले ही दिन गीता ने उसे गले की ज़ंजीर दी। वह प्रसन्न था। उसे लगा कि प्रभु ने उसकी प्रार्थना सुन ली है। वह उसको प्रसाद चढ़ाएगा। वह सारे दिन प्रसन्नमन रहा और जब दूसरे दिन वह अपनी मामी के यहां प्रसाद देने गया तब मामी ने उससे पूछा, "अरे फत्तू, क्या बात है? आज प्रसाद किस बात का है। क्या सगाई की मिठाई खिला रहे हो?" वह हंस पड़ी।

फतह ने कुछ भी नहीं कहा। वह इतना ही कह पाया कि उसने बचपन में किसी बात के लिए प्रसाद बोला था। कल सपने में साक्षात् भगवान ने उसे आज्ञा दी, यह उसीका प्रतिफल है। बनिये की बुद्धि स्वतः ही अपने हित का काम

करती है। इस ज़ंजीर के मिलने की बात को उसने हरदास को भी नहीं बताया। उसे भय था कि कहीं हरदास उसे अनुचित रूप से दबाने न लगे। इसके विपरीत उसने हरदास को क्रोधपूर्वक कहा कि तुम्हारे कारण उसकी नौकरी चली जाती। सेठानी उसे अपने भाई की तरह मानती है।······हरदास लज्जित हुआ। फतह ने इस बार भी ईश्वर को धन्यवाद दिया क्योंकि वह जिस कौशल से कार्य कर रहा था, वह ईश्वर के ही आदेश से कर रहा था, ऐसा उसका विश्वास था। वह कभी-कभी अपने बुद्धि-कौशल की खुद प्रशंसा करता था कि उसमें इतना नीति-चातुर्य कहां से आ गया। तब गर्व की भावना उसमें नाच उठती थी और वह नादान बच्चे की तरह किलक उठता था। फिर एकाएक गंभीर होकर वह ईश्वर को याद करता था।

इसके विपरीत उसमें ऐसा अहम् तनिक भी नहीं आया जिसके कारण लोगों को यह वहम हो कि उसका गीता के साथ अनुचित सम्बन्ध है। वह पहले से अधिक गंभीर हो गया था और उसने पहले की अपेक्षा कपड़े भी और रद्दी किस्म के पहनने शुरू कर दिए थे। यह सब वह जान-बूझकर करता था। कभी उसे अपने-आप-पर हंसी आती थी और वह अपने-आपसे कहता था, 'मैं भी कितना ढोंगी हूं!'

कुछ भी हो, उसमें एक कुशल अभिनेता के सारे गुण मौजूद थे। उसकी जगह कोई और होता तो वह इतनी बड़ी सेठानी से अनैतिक संबंध स्थापित करके आकाश पर उड़ने लगता। वह नख से सिर तक बदल जाता। तन उजला हो जाता, मन उजला हो जाता और उसका संसार उजला हो जाता।

उसकी आन्तरिक प्रसन्नता उसके लाख प्रयास के बाद भी नहीं छिपी। एक दिन शिवली ने उसे पूछ ही लिया, "आजकल तुम बहुत खुश नज़र आते हो?"

शिवली उससे कई माह के बाद बोली थी। पता नहीं, वह क्यों झेंप गया, इसलिए वह कुछ रुक-रुककर बोला, "ऐसी क्या बात तुमने मुझमें देखी है जो मैं तुम्हें बहुत खुश नज़र आ रहा हूं।"

"ठीक से व्याख्या मैं नहीं कर सकती। तुममें परिवर्तन ज़रूर है।"

'मेरे मन का भेद यह जान गई क्या?' उसने मन ही मन कहा और वह उसे देखने लगा। निर्निमेष दृष्टि से देखता रहा। शिवली ने अपना मुंह दूसरी

आर घुमा लिया। 'मैं आज जाकर अवश्य दर्पण में अपना मुख देखूंगा ? वाह, मैं भी खूब हूं। मुझे अवश्य ही अपने चेहरे पर आभासित परिवर्तन को समझना चाहिए।'

वह प्रकट रूप में बोला, "क्या मैं अधिक थक गया हूं ?" वह जानता था कि उसकी तन्दुरुस्ती पहले से बहुत अच्छी है।

"नहीं। तुम पहले से अधिक रौबीले दिखने लगे हो।"

"सच ?"

"ऐसा लगता है कि तुम्हें कोई गड़ा हुआ धन मिल गया है। क्योंकि आज पैसा ही ऐसी वस्तु है जो बूढ़े को जवान बना सकता है।"

फतह सिर से पांव तक कांप गया। वह अत्यन्त कठिनता से अपने मन की व्यग्रता छिपा पाया।

"तुम नहीं जानते कि पैसा अपना रंग लाख छिपाने पर लाता है।" शिवली ने दुबारा उसपर आक्रमण किया, "मुझे खेतड़ी ने सब कुछ बता दिया है। वह उसके पहले मेरे यहां ही काम करती थी।"

सांप का डसा जिस तरह बेचैन होने लगता है, उसी तरह वह विचलित हो गया।

"मुझे दुःख इसी बात का है कि तुम्हें जब यही सौदा करना था तब मुझे क्यों ठुकराया ? मैं भी पतिवंचिता ही हूं। वह त्यक्ता और मैं वंचिता, दोनों में अन्तर क्या है ? फिर मैं उससे अधिक रूपवती हूं।" वह पश्चात्ताप से अपनी गर्दन लटकाकर घृणा-भरे स्वर में रुक-रुककर बोली, "ओह ! पुरुष की भी क्या पसन्द होती है ! हीरा, पन्ना, माणिक, मोती को छोड़कर वह कांच के टुकड़े व कोयले की डलियों को पसन्द करता है। सचमुच वह एक घृणित जीव है जिसके समक्ष कभी किसी नारी को गिड़गिड़ाना नहीं चाहिए।"

"तुम्हें खेतड़ी ने गलत समाचार दिए हैं। वह मुझे भाई की तरह मानती है। किसीकी किसीके साथ गहरी सहानुभूति होने का मतलब यह नहीं है कि उनके सम्बन्धों में अनैतिकता ढूंढ़ी जाए। यह तुम्हारा ओछापन है। यह तुम्हारी घृणा है।" उसने बड़े प्रभावशाली ढंग से कहा।

"वह झूठ क्यों बोलेगी ? खेतड़ी से तुम्हारी कौनसी स्पर्धा है ?"

"वह नीच नौकरानी मेरे दबदबे को सहन नहीं कर सकती। वह एक चोट्टी और कुलटा है। वह स्वयं मुझे अपने जाल में फांसना चाहती है। मैं कल ही उसे यहां से निकलवा दूंगा। ऐसी नमकहराम नौकरानी खानदान के लिए कलंक सिद्ध हो सकती है।"

"बात कुछ न कुछ जरूर हुई है, अन्यथा तुम इतने लाल-पीले न होते। लेकिन तुम्हें उस गरीब नौकरानी से बदला नहीं लेना चाहिए। वह एक सर्वथा छोटी जाति की स्त्री है। ऐसी स्त्रियां प्रत्येक को एक-दूसरे की बात कहकर सहानुभूति प्राप्त करने की चेष्टा करती हैं। हो सकता है कि वह झूठ ही बोली हो ?"

"वह बिलकुल झूठ बोली है। मेरा उससे भाई का···!"

"नीचता की भी एक सीमा होती है। मैं भी मानती हूं कि आजकल प्यार और व्यभिचार का इतना घिनौना रूप ही रह गया है। स्वस्थ परम्पराओं के साथ-साथ शब्दों की पवित्रता और महत्ता भी खत्म हो गई है। मुझे थोड़ा भी आश्चर्य नहीं है कि तुम भी उसी दूषित परम्परा के निम्न आदमियों की श्रेणी में आते हो।" वह निर्भयता से कह रही थी।

"तुम कौनसी अच्छी हो ?" वह जल उठा।

उसने कुछ देर तक उसपर स्थिर दृष्टि डाली जैसे वह जो कुछ कहना चाहती हो, उसको पहले मन ही मन दुहरा रही हो, "मैं नीच नहीं होती तो तुम्हारे पास आती ही क्यों ? मैं कहती हूं कि मैं एक सर्वथा वाहियात और छिनाल स्त्री हूं। मुझे किसीको भी इस तरह का उपदेश देने का कोई अधिकार नहीं है। किंतु तुम्हें देखकर मुझे ऐसा लगा कि मैं तुमसे बहुत अच्छी हूं। मैंने किसीको भाई नहीं बनाया। मैंने अपने पति को धोखा देकर कोई कृत्य नहीं किया। मेरा पति भी मेरे दुःख को जानता है। लेकिन क्या तुम्हारी तरह बहिन-बहिन कहकर···?"

"शिवली !" वह गरजा।

"धीरे बोलो, नीचे भी आदमी रहते हैं। उनके भी कान हैं। तुम लाख

छिपाना चाहो, पर पाप नहीं छिपता। बेचारी खेतड़ी को वहां से निकलवा देने से तुम्हें क्या मिलेगा ? मैं समझती हूं कि इससे तुम्हें हानि ही होगी। उसने अभी मुझे ही कहा है, बाद में वह सबको कहेगी और जो बात लोकप्रिय होने लगती है, उसके लिए कई व्यक्ति चौकन्ने हो जाते हैं। क्योंकि यहां फालतू आदमी अनेक हैं जो अवैतनिक रूप से बातें बनाने का काम बड़े आनंद से करते हैं। और हां, कुछ ऐसे भी आदमी होते हैं जो गंदी बातों का प्रचार अत्यन्त कलात्मक ढंग से अर्थात् अपनी ओर से कुछ मिलाकर मुफ्त में ही करते हैं। अतः इस काम में जल्दबाजी सर्वथा तुम्हारी अयोग्यता ही बताएगी।" उसके चेहरे पर निर्लज्जता नाच रही थी, वह भी बड़ी निःशंक।

"तुम चुप रहो।" वह झल्लाया।

"मैं चुप ही हूं। मुझे तुम्हारे बारे में कुछ कहने से क्या मिलेगा! मैं जलन-वश भी नहीं कह रही हूं। मैं केवल स्नेहवश कह रही हूं। मैं चाहती हूं—तुम्हारा यह धंधा बखूबी और बिना किसी बाधा के चलता रहे। किन्तु इसमें फूंक-फूंककर कदम रखनेवाला ही अधिक सफल होता है। यह चतुराई का काम है। इसमें शत्रुता से अधिक मित्रता ही उपयोगी सिद्ध हुई है।" उसकी अंखियों में गहरा व्यंग्य था।

"ठीक है, ठीक है।" वह पागल की तरह चीखा। उसने अपनी आंखें एक मूरख की तरह झपकाईं जिससे शिवली के होंठों पर दुष्टता-भरी मुस्कान नाच उठी।

"तुम इतनी गन्दी व नीच बातें कैसे सोच लेती हो ?" वह एकदम जलकर बोला, "तुम्हें इस तरह अश्लील बातें करते लज्जा नहीं आती! स्त्री की भी अपनी मर्यादा होती है।"

"मर्यादा केवल स्त्री की नहीं होती, मर्यादा सबकी होती है। मैं भी 'मर्यादा' शब्द का मतलब समझती हूं पर जब विषय ही इतना गंदा छिड़ गया है तब मर्यादा जैसे शब्दों का अस्तित्व ही क्या रह जाता है ?" उसके चेहरे पर दुष्टता खेल उठी, "जब तुमने बार-बार 'भाई' शब्द को प्रयोग करके मुझे मूर्ख बनाने की चेष्टा की तब मैं क्या करती ? फिर एक बात और है। दरअसल हमें और तुम्हें

मर्यादा आदि शब्दों का प्रयोग करने का कोई हक नहीं है। हम पतित हैं—लौकिक दृष्टि से !"

"मैं जाता हूं।"

"पाप के पांव कच्चे होते हैं। खैर, खेतड़ी को तंग न करना, तुम्हें मेरी सौगन्ध है।" वही दुष्टता, वही प्रहार करता हुआ विद्रूप। फतह तिलमिला गया। वह अपनी कोठरी में जाकर अपने-आपसे उलझने लगा, 'सचमुच पाप प्रच्छन्न नहीं रहता। मैंने शिवली को नाराज़ करके ठीक नहीं किया। किन्तु मुझे परेशान नहीं होना चाहिए। मुझे खेतड़ी को डांटना चाहिए। उसे समझाना चाहिए कि ऐसी झूठी…!' 'झूठी' शब्द के साथ ही उसे धक्का-सा लगा। उसकी अन्तरात्मा ने जैसे उसके विचारने पर ब्रेक लगा दिया हो। 'बात झूठी थोड़े ही है। बात सच्ची है। झूठ का आवरण वही चढ़ा रहा है।' लेकिन उसे खेतड़ी को कुछ भी नहीं कहना चाहिए। उसका कहना उसे और दुर्बल करेगा और बात की सचाई को सम्बल मिलेगा। वह किसीसे कुछ नहीं कहेगा। आखिर उसने यह निश्चय किया।

उसके तीसरे दिन उसके समर्थन की एक घटना और घटी। मनुष्य की परिस्थिति जब सुधरती है तब बड़ी तीव्र गति से सुधरती है और उसे हर तरफ से लाभ ही लाभ मिलता है।

गीता की सास कौशल्या तीर्थ करने जा रही थी। वह लगभग छह माह तक विभिन्न तीर्थों में घूमेगी, इसलिए फतह को यह हुक्म दिया गया कि वह इस बाड़ी में आकर रहे। इस प्रस्ताव से वह बहुत प्रसन्न हुआ। क्योंकि इधर शिवली काम-बेकाम छत पर आ जाती थी और उसे एक विचित्र दृष्टि से घूरती थी जिसको सहन करना उसके बश का नहीं था। उसकी गति, उसके संकेत तथा उसके हाव-भाव सबके सब उसे अपने पर व्यंग्य करने लगते थे। वह चाहता था कि वह जल्द से जल्द यह बाड़ी छोड़ दे, पर निष्कारण छोड़ना भी उसे सर्वथा अनुचित लगा, 'ऐसा करना संदेह को जगा सकता है तथा शिवली गुस्से में या डाहवश उसके राज़ को फाश भी कर सकती है।' पर जैसे ही उसे बड़ी मालकिन का यह हुक्म मिला वैसे ही वह अति प्रसन्नता में क्षण-भर के लिए उन्माद-

ग्रस्त-सा हो गया। वह इसे भी ईश्वर का वरदान ही समझ रहा था। और जब वह अपना सामान लेने के लिए बाड़ी में आया तब वह ऐसा महसूस कर रहा था जैसे वह गत तीन दिन तक किसी अदृश्य कैद में बन्द था। इसलिए अपने रास्ते में कालीजी के सम्पूर्ण भक्ति से दर्शन किए और एक पैसा भी उसके चरणों में भेंट किया।

वह सामान लेकर जा रहा था। मामीजी का आग्रह था कि वह दिन में एक बार उसकी बाड़ी में आकर उससे ज़रूर मिल जाए। पर मामा, जो मामी से अधिक व्यापारिक दृष्टिकोण रखता था, उसे एक कोने में ले गया और परामर्श-भरे स्वर में बोला, "फत्तू! तेरी मामी ठहरी बावली, लाभ की बात करती ही नहीं। अगर वहां खाना दोनों समय मिल जाए तो यहां रोज़-रोज़ के आने-जाने का झंझट मत रखना। इस नगर में वही काम करना चाहिए जिसमें दो पैसों का लाभ हो। हम सैकड़ों कोसों से इसलिए ही आए कि कुछ जमा करें। घरवाले कहीं भागकर नहीं जाएंगे। और इस बात की चेष्टा करना कि सेठजी तुम्हें अपना ही समझें। आज के ज़माने में किसीको चाम प्यारी नहीं है, प्यारा है काम।"

मामा के परामर्श को फतह ने ऋषि-वचन की भांति आत्मसात् कर लिया।

शिवली भी आई। वह सब कुछ जानते हुए भी अनजान बनकर बोली, "कहां जा रहे हो फतह भैया।" भैया कहने के पूर्व वह एक सेकिण्ड रुकी थी जिससे इस शब्द के तत्कालीन प्रयोग की दुष्टता और विद्रूप फतह से नहीं छिप सके।

उसने गुस्सीली आह छोड़ी जो उसकी विवशता की प्रतीक थी। वह अपने सामान को देखता हुआ बोला, "सेठजी के घर जा रहा हूं।"

"क्यों?"

"उनका हुक्म है!"

"हुक्म का ताबेदार होना एक अच्छे नौकर का कर्तव्य है। क्या तुम्हारी तबियत वहां हर घड़ी लग जाएगी?"

"नौकरी के साथ तबियत का सम्बन्ध बेतुका-सा ही लगता है।"

"घर छोड़ते हुए चेहरे पर खुशी की चमक भी बेतुकी-सी लगती है। पर

तुम उन्नति के लिए अपना घर छोड़ रहे हो, मैं प्रभु से प्रार्थना करूंगी कि वह तुम्हें दिन दूनी और रात चौगुनी सफलता दे।"

शिवली का उसे इस तरह पीड़ा देना उसकी कुछ समझ में नहीं आया। क्योंकि वह उसे अपने से तनिक भी सम्बन्धित नहीं समझता था: 'ये एक असफल और उपेक्षित प्रेमिका, हां एक निम्न कोटि की प्रेमिका, की प्रतिक्रियाएं हैं। ऐसी स्थिति में उसकी सहजता और शालीनता मिट जाती है और उसकी हर बात वक्रोक्ति का रूप धारण कर लेती है। उसमें निर्भयता का भी समावेश हो जाता है और वह कुछ स्पष्ट संकेत भी करके अपनी जलन का अहसास कराती है। क्या शिवली एक असफल प्रेमिका है उसकी? नहीं, वह उसे सदा कष्ट पहुंचाना चाहती है। कष्ट…?' यह शब्द उसके मस्तिष्क में कई प्रश्न खड़े कर गया।

शिवली जब उसपर व्यंग्य कस रही थी तब उसके मुख पर किंचित् भी झिझक व झेंप नहीं थी। वह अत्यन्त साधारण मूड में यह सब कह रही थी। फतह परेशान हो चुका था। अन्त में उसने तंग आकर कहा, "अब तुम जा सकती हो! मैं तुमसे सख्त विनती करता हूं।" सख्त के साथ विनती शब्द का अर्थ घृणा ही था।

"मेरे खड़े रहने से तुम्हें कोई बाधा हो रही है? तुम निःसंकोच अपनी मामी से बातचीत कर सकते हो। मैं तुम्हें एकांत में जाने की इजाज़त देती हूं।" वह हुक्मरान की तरह कह रही थी।

"मुझे जो भी करना है, करता रहूंगा, पर तुम ईश्वर के लिए यहां से चली जाओ। और मुझे तंग न करो।"

वह हंसती हुई चली गई।

मामी ने उसके जाते ही कहा, "आजकल यह बहुत बोलने लगी है। पहले यह बड़ी शांत रहती थी।"

"आजकल इसका दिमाग खराब है।" उसने चिढ़ते हुए कहा।

इसके बाद वह भगत बाबू की वाड़ी में आ गया। मां कौशल्या तीर्थ-यात्रा पर चली गईं। घर में तीन-चार नौकर और एक जमादार रह गया।

खेतड़ी को उसने कुछ भी नहीं कहा। यह अपरिचित बना रहा। उसने अपनी प्रकृति में कुछ परिवर्तन किए। जैसे वह पहले की अपेक्षा अधिक गंभीर बना रहता था। वह खेतड़ी का आदर करता था। वह भगत बाबू को बार-बार बहूजी के पास आने का अनुरोध करता था। उसके कई अनुरोधों पर कभी-कभी एक रात के लिए भगत बाबू आ जाते थे। शेष रातें वह चोर की तरह गीता के पास जाता था। फतह का यह व्यापार बिना किसी अवरोध के चलता रहा।

उस दिन संक्रान्ति थी।

गंगा-स्नान करके जैसे ही फतह लौटा वैसे ही उसने अपनी मामी को अपने कमरे में पाया। गीता उस समय संक्रान्ति के दान के रूप में चांदी के प्याले बांट रही थी। तेरह चांदी के प्याले उसको बांटने थे। अतः वह अपने नौकरों को समझा रही थी कि किस-किस आदमी को प्याला देना है। एक प्याला फतह को भी दिया गया। गीता इतनी व्यस्त थी कि वह फतह की मामी से बातचीत भी नहीं कर सकी।

"क्या बात है मामीजी ? क्या आप अपने भांजे के लिए संक्रांत (दान) लाए है ?"

"हां, मैंने अमरूद बांटे हैं। पर मैं एक विशेष बात तुमसे कहने आई हूं। वह यह है कि तुम्हारी मां की चिट्ठी आई है, तुम्हारा विवाह उसने आज से एक माह बाद करने का निश्चय किया है। इसलिए तुम्हारी मां ने कहा है कि तुम जल्द से जल्द आ जाओ।"

"लेकिन····?"

"लेकिन-वेकिन कुछ नहीं चलेगा। तुम्हारे कौन-सा बाप बैठा है जो सारी तैयारियां कर देगा ? तुम्हें खुद अपना काम करना है।"

"मैं कल भगत बाबू से बात करूंगा।"

दूसरे ही दिन वह भगत बाबू के पास गया। भगत बाबू दफ्तर से कहीं जा रहे थे। आजकल वे बनारस की एक हीराबाई के यहां सुविधानुसार जाते रहते थे।

फतह को वे देखते ही बोले, "फतह, आज मैं तुम्हें आगाह करना चाहता हूं कि तुम भविष्य में बहूजी की कोई भी सिफारिश लेकर मेरे पास मत आना। मैं अपना भला-बुरा खूब समझता हूं।"

फतह नितांत गंभीर हो गया, "मैं किसी तरह की सिफारिश लेकर अभी आपके पास नहीं आया हूं। मैं केवल एक माह के लिए देश जाना चाहता हूं, उसके लिए निवेदन करने आया हूं।" (प्रवासी राजस्थानी अपने प्रांत को देश के नाम से ही सम्बोधित करते हैं।)

"क्यों?" चौंककर पूछा भगत बाबू ने।

"इसलिए बाबूजी कि मेरा विवाह है।"

"विवाह, क्या तुम्हारा विवाह अभी तक नहीं हुआ है?"

"नहीं।"

"आश्चर्य है!"

"आश्चर्य की क्या बात है? गरीब के घर जोरू भी सहजता से नहीं आती। आप स्वयं जानते हैं—गुड्डे-गुड़िया के विवाह में भी कुछ खर्च होता है और मैं सिर्फ साठ की साल पाता हूं, पिताजी हैं ही नहीं, फिर कौन सहारा देता, कौन चिंता करता?"

"अच्छा, यह बताओ, लड़की कैसी है?" उनकी आंखों में सांप जैसी दीप्ति आ गई।

"सुन्दर है।"

"तुम्हारे भाग्य अच्छे हैं। पुरुष को सदा सुन्दर स्त्री से ही शादी करनी चाहिए। तुम कब जाना चाहते हो? नहीं, तुम जब कभी भी जा सकते हो।"

"मुझे कुछ रुपयों की ज़रूरत है।"

"कितने की?"

"हज़ार दो हज़ार की।"

"रोकड़िएजी से ले लेना।"

"बहुत अच्छा।"

उसके तीसरे ही दिन फतह देश चला गया। उसके पास तमाम ज़ेवर थे। गीता ने वे ज़ेवर उसे छुपे रूप में बनाकर दिए थे। कुछ नकदी भी उसे दी थी ताकि वह धूमधाम से विवाह कर सके।

गीता से विदा होते हुए उसे बड़ा कष्ट हुआ। गीता ने अन्त में चंद शब्द कहे जिसका अर्थ यह था कि तुम जल्द ही लौट आना। मुझे तुम्हारे बिना एक पल भी कल नहीं पड़ेगा।

एक वर्ष बीत गया।

इस एक वर्ष में अनेक महत्त्वपूर्ण बातें हुईं। उन महत्त्वपूर्ण बातों में मुख्यतः ये थीं जिन्हें मैं आपके समक्ष प्रस्तुत कर रहा हूं। हालांकि कुछ घटनाएं इतनी तेज़ी से घटती हैं कि हर व्यक्ति उनपर आश्चर्य करता है पर इसमें आश्चर्य की तनिक भी गुंजाइश नहीं है। हम जीवन में हर घटना को एक ही दृष्टि से नहीं देख सकते। हर व्यक्ति का एक ही मानदंड से मूल्यांकन नहीं कर सकते। आज किसीकी आत्मा का हम गहराई से विश्लेषण करें, उसे समझें तो एक विचित्र दृश्य हमारे सम्मुख उपस्थित हो जाएगा और हम सहजता से उस मनुष्य पर विश्वास नहीं कर पाएंगे कि यह मनुष्य इतना विषम व रहस्यपूर्ण हो सकता है।

मैं आपके सम्मुख जो कहानी प्रस्तुत कर रहा हूं वह एक ऐसे आदमी की कहानी है जो किसी भी तरह से धनवान बनना चाहता है। उसकी दुरात्मा को मैंने खूब जांचा-परखा है। इसलिए मेरी कथा का नायक आपको वर्तमान जीवन-जगत् से दूर-सा लगेगा तथा आप उसे अस्वाभाविक भी कह देंगे। कहीं-कहीं आप मुझपर झल्ला भी सकते हैं पर जो विकृतियां व कुंठाएं हममें एकत्रित हो रही हैं, क्या उनसे यह संभव नहीं कि आनेवाले कल में पूंजी-चालित यंत्र-

नुमा इन्सान पृथक्-पृथक् रूप से देखने को नहीं मिल सकते ? अभी तो बिसमिल्लाह है। पहले क्या थे, अब क्या है, और कल क्या होंगे, यह हम सभी जानते हैं। और इस कहानी में आए हुए चरित्र तथा घटनाएं भी सच्ची हैं। अन्तर इतना ही है कि मैंने उन्हें एक पुस्तक का रूप दे दिया है। साहित्यिक रूप देने से कुछ कलात्मक विशेषताएं सहजता से आ जाती हैं।

इस एक वर्ष में फतह तीव्र गति से उन्नति करता गया और आज वह भगत बाबू का हेड मुनीम बन गया है। उन्नति में सहायक हुई उसकी अपनी बीवी। इस व्यापारिक युग में हर वस्तु का उपयोग आदान-प्रदान के रूप में ही हो रहा है। मुझे यह लिखते हुए दर्द हो रहा है। सोच रहा हूं, हमारा आदर्श और हमारी नैतिकता कहां है ?

बेचारी पद्म को व्यर्थ में ही अपने सतीत्व को नष्ट करना पड़ा।

जब वह पहली बार आई थी भगत बाबू ने उसे भोजन पर बुलाया था। उस अकेली को ही बुलाया था। भोजन करने के बाद भगत बाबू ने उससे गंदा मज़ाक किया। पद्म को वह बहुत बुरी लगी। उसने फतह से शिकायत की। फतह ने उस बेचारी को बुरी तरह डांटा। वह बेचारी सकपका के रह गई। उसकी समझ में नहीं आया कि उसकी शिकायत का उत्तर उसे ही डांटकर क्यों दिया जा रहा है ? उसे भ्रम हुआ, शायद भगत बाबू ने उससे मजाक गलती से कर लिया था या यहां इस तरह का गंदा मज़ाक करने की रीति है।

उसके चंद दिन बाद भगत बाबू ने उसे अपने दफ्तर बुलाया और कहा, "अब तुम मेरे साथ ही रहा करो।"

"जैसी आपकी मर्ज़ी।"

"मैंने तुम्हारे सालाना वेतन की रकम के आगे एक बिन्दी और बढ़ा दी है।" अर्थात् फतह का सालाना साठ रुपये से सीधे छः सौ रुपये हो गया। वह बहुत प्रसन्न हुआ। उसने उसी रात अपनी बीवी को समझाया, "तुम अक्ल से काम नहीं लेती हो।" इस वाक्य ने पद्म को झकझोर दिया। उस दिन वह इस वाक्य का गूढ़तम संकेत नहीं समझी थी पर बाद में उसे मालूम हुआ कि उसका संकेत कितना घिनौना और गंदा था।

और तब एक दिन उसने तड़पकर कहा, "आपका दिमाग ठीक है? आप जानते हैं कि आपकी पत्नी के साथ आपका मालिक कैसा व्यवहार करता है!"

वह पुंसत्वहीन प्राणी की तरह ढिठाई-भरी हंसी हंसकर बोला, "तुम बनिये की बहू हो, मैं तुम्हें अधिक कहना नहीं चाहता।"

"अब मैं समझी। तुम मेरा सौदा करना चाहते हो। तुम मुझे बेचना चाहते हो।"

फतह उसका विकराल चेहरा देखकर स्तब्ध हो गया।

"आप अनजानपन का ढोंग रचकर अपने को निर्दोष समझना चाहते हैं? मैं समझती हूं यह बहुत ही नीचे दर्जे का कमीनापन है और आप इसके साथ एक भयंकर भूल भी कर रहे हैं।"

"तुम मेरी पत्नी हो या पति? पेट भरकर खाने को क्या मिल गया, माथा ही खराब हो गया है। मैं जानता हूं कि भगत बाबू कैसे आदमी हैं। तुम ज़रा विवेक और बुद्धि से काम लिया करो। हर बात का इतना ओछा अर्थ मत लगाया करो।"

उसके नेत्र भर आए, "आपको क्या हो गया है! सारे सुखों की मृत्यु के बाद आप अपार धन का क्या करेंगे?"

"तुम गधी हो। मूर्ख हो। भविष्य में इस तरह चीखना-चिल्लाना मैं पसंद नहीं करूंगा। मैं चाहूंगा कि तुम कुछ समझ से काम लो। मेरी आकांक्षा को देखो, समझो।" वह दृढ़ता से बोला, "मैं तुम्हारी सारी हेकड़ी भुला दूंगा।" कहकर उसने अपना हाथ उसे पीटने के लिए उठाया।

पद्म को लगा कि वह पागल हो जाएगी। वह दो दिन तक खाना नहीं खा सकी। आवेश और क्रोध में वह पत्थर की प्रतिमा की तरह हो गई। उसका मन किसी भी काम में नहीं लग रहा था।

दो दिन से फतह भी नहीं आया।

वह दो दिन तक विशेष बहियों के काम में भगत बाबू की बाड़ी में ही रहा। गीता अब पहले से और भद्दी हो गई थी। पर उसने खूब धन संग्रह कर लिया था। वह हर माह कुछ न कुछ ज़ेवर बना लिया करती थी। उसको यह विश्वास

हो गया था कि भगत बाबू एक न एक दिन उसे छोड़ ही देंगे। दो दिन के बाद फतह अपनी बाड़ी आया। पद्म ने आते ही उसके पांव पकड़ लिए। वह रोती हुई बोली, "आप इतने नाराज हो गए ? आपने घर आना क्यों बन्द किया ?"

"तुमने, मुझे परेशान कर दिया है। मैं तुम्हें लक्ष्मी समझकर घर लाया था और तुम मुझे कंगाल करके रखोगी।"

"अब मैं आपको कभी तंग नहीं करूंगी। आप रात को यहां आ जाया करें। मुझे यहां अकेले में बड़ा डर लगता है। मैं आपको प्रसन्न रखूंगी, प्रसन्न।"

आज जब वह भगत बाबू के पास गया तब भगत ने उसे एक अंगूठी दी। अंगूठी देते समय उसने कहा, "यह मेरी ओर से तुम्हारी बहू को।" वह खिल उठा। उसके आंखों की चमक देखकर वह बोला, "तुम्हारी बहू बहुत अच्छी है, बहुत अच्छी।" उस समय उनकी आंखों में वासना दीप्त हो उठी।

फतह आजकल भगत बाबू के बंगले में ही रहता था। बंगले के एक कोने में उसको दो कोठरियां दी हुई थीं। गीता वहां नहीं आती थी क्योंकि भगत बाबू कभी-कभी वहां अन्य लड़कियों को भी लाया करते थे। अपनी चरित्रहीनता की परवाह किए बिना ही वह भगत बाबू का विरोध करती थी। नतीजा यह निकलता कि सास-बहू में ज़ोर की ठन जाती। गीता आवेश में ऐसे अपमान-सूचक शब्दों का प्रयोग करती थी जो उसे नहीं करने चाहिए थे। इन सबके बीच फतह एक कड़ी था। वह प्रत्येक के समक्ष चतुर खलनायक की तरह कार्य करता था।

वह गीता को कहता, "तुम्हें केवल धन इकट्ठा करना चाहिए। भगत बाबू का कभी न कभी दिवाला निकलेगा ही। खर्च ज्यादा और आय कम।"

वह कौशल्या को कहता, "इसमें भगत बाबू का क्या दोष है ? आपकी बहू का मिज़ाज ही इसका ज़िम्मेवार है। सेठानीजी, मधुर वचन का प्रभाव कौन नहीं जानता ? मैं समझता हूं कि मधुर वचनों से वह भगत बाबू की आत्मा तक को जीत सकती थी पर वह उपेक्षा से विकृत हो गई है।"

और वह भगत बाबू को कहता, "आदमी भैंस के संग अपना जीवन नहीं गुज़ार

सकता। उसकी भी अपनी आकांक्षाएं, पिपासाएं और सपने होते हैं। मैं आपको महान समझता हूं अन्यथा इस तरह की भद्दी औरत पर दूसरी औरत कभी की बिठा दी जाती जबकि वह सन्तान भी पैदा करने में असमर्थ है। आपने उसको अपने अन्तस् की स्वामिनी भले ही न बनाया हो पर लौकिक रूप से उसके उस पैद को आप रखे हुए हैं। यह क्या कम है ? आपको मैं इसके लिए धन्यवाद देता हूं।"

यह उसकी नीति थी। वह दिन-प्रतिदिन नई-नई बातें सोचा करता था। भगत बाबू की सारी दुर्बलताओं को वह उनकी रईसी बताता था। अपनी पत्नी के रूप के प्रभाव का भी उसने दुरुपयोग किया। वह नारी अनिच्छा से भगत बाबू की ज्यादतियां सहती थी। भगत बाबू ने उसे भी दस हज़ार के ज़ेवर बनाकर दिए। वह इन जेवरों को देखकर पीड़ा से तिलमिला जाती थी पर फतह खुश होता था। वह अपनी पत्नी के पास बिना किसी हिचक के आता-जाता था और उसकी पत्नी पद्म सोचा करती थी कि यह कैसा पति है ? यह कैसा पति है ?

कुछ भी हो, फतह ने बड़ी तेज़ी से बीस हज़ार रुपये इकट्ठे कर लिए थे। उन रुपयों को देख-देखकर वह एक अपूर्व गौरव अनुभव किया करता था। इन रुपयों के अतिरिक्त जीवन में क्या है, वह कुछ भी नहीं सोचता था। धीरे-धीरे पत्नी उसके प्रति घृणा से भर उठी।

एक दिन फतह को यह मालूम हुआ कि पद्म मां बननेवाली है। वह बहुत खुश हुआ। उसने भगत बाबू को यह खबर सुनाई। भगत बाबू यह समाचार सुनकर उदास हुए और बोले, "बच्चा औरत के रूप का दुश्मन होता है।"

भगत बाबू को किसी वस्तु की कमी नहीं थी और वे अनाप-सनाप खर्च भी कर रहे थे। उनकी रईसी के पीछे हो रहे घाटे का उन्हें ज्ञान ही नहीं था और न ही ज्ञान कराया गया। ज्ञान था केवल फतह को। वह हर रात भगत बाबू के लग रहे घाटे को गिना करता था। एक लाख, दो लाख, और चार लाख ! और वह एकांत में मौन अट्टहास करने लगता था।

पद्म के पेट का बच्चा बढ़ रहा था। साथ-साथ भगत बाबू का घाटा भी बढ़ रहा था। कभी-कभी रोकड़िया कुछ कहता तब फतह उसे रोक देता था। वह

चाहता था—भगत का दिवाला पिट जाए।

रात्रि के निस्तब्ध प्रहर में वह अपने कमरे में बैठा-बैठा उन्मादग्रस्त प्राणी की तरह खिलखिलाकर हंस पड़ता था। पद्म भयभीत-सी देखती। पूछती, "क्या बात है!"

"कुछ नहीं।"

"आप हंसे क्यों?"

"मैं इसलिए हंसा कि शीघ्र ही भगतबाबू का नाम चमकनेवाला है।"

वह समझ गई कि ज़रूर कोई अनर्थ होनेवाला है। वह फलह के संकेतों व शब्दों का मर्म समझने लगी थी। भयभीत स्वर में वह बोली, "आप ईश्वर से नहीं डरते?"

"मैं सब काम उसकी आज्ञा से ही करता हूं।" उसने दृढ़ता से कहा।

"नहीं। आप उनका इतना अहित मत चाहें। आखिर आपने उनका नमक खाया है। मुझे ऐसा लगता है कि आप स्वस्थ नहीं हैं। आप रुपयों के लिए कभी न कभी पागल हो जाएंगे।"

"तुम इसकी चिन्ता न करो। मैं बिलकुल स्वस्थ हूं। मैं एक दिन सबसे बड़ा आदमी बनूंगा।"

"अपने सुख-संतोष को बेचकर?"

"क्यों?"

"क्यों क्या, आपने कभी मेरे दर्द को समझा है?"

"तुम्हें कोई दर्द है ही नहीं। बोलो तुम्हें किस चीज की जरूरत है। मैं अभी हाज़िर करता हूं।"

पद्म चुप हो गई। वह घृणा से अवाक् होकर रो पड़ी। वह नहीं चाहती थी कि वह यह कहे कि उसके पेट में जो बच्चा है, उसके बारे में वह यह भी निश्चयात्मक रूप से नहीं कह सकती कि वह बच्चा किसका है? उसके अपने पति का या भगतबाबू का?

"तुम बहुत अच्छा खाती हो और बहुत अच्छा पहनती हो।"

पद्म निरुत्तर रही। वह विस्मित-सी जड़वत् बैठे अपने पति को देखती

रही। अन्त में वह बोली, "मुझे अपने देश भेज दीजिए। अब मैं यहां रहना नहीं चाहती।"

"अब मैं तुम्हें देश ज़रूर भेजूंगा। पहली संतान पीहर में ही होनी चाहिए। इससे मुझे आर्थिक लाभ ही होगा। मैं तुम्हें अवश्य भेज दूंगा। और जल्द ही।"

और दूसरे ही दिन उसने भगतबाबू के कान में यह बात डाल ही दी। भगतबाबू ने कोई दिलचस्पी नहीं दिखाई कि पद्म यहां रहे या न रहे। उनके मौन के भेद को वह समझ गया और उसने पद्म को वापस अपने देश भेज दिया।

पद्म के जाने के बाद वह गीता को फिर से बरगलाने लगा। भगत बाबू फलां लड़की के यहां जाते हैं। भगत बाबू फलां होटल में एक गोरी मेम को लेकर आज रात-भर रहे। देखो वे रुपयों को पानी की तरह बहा रहे हैं, अपना पेट भर लो वर्ना दर-दर की ठोकरें खाओगी।

"मैंने उन्हें आगाह भी किया था।" गीता ने कहा।

"उन्होंने क्या कहा?"

"वे कड़ककर बोले, तुम चुप रहो। तुम्हें जो ज़रूरत हो उसकी मुनीमजी को खबर दे दिया करो।"

"मैं क्या कहती फतह? मुझे ऐसा लगता है कि कोई बड़ी दुर्घटना घटित होगी। क्या तुम इतनी वफादारी भी अपने स्वामी के लिए नहीं कर सकते कि वे यह जान जाएं कि उनकी असली स्थिति क्या है? तुम्हें मेरी कसम है। मैं तुम्हें विश्वास दिलाती हूं कि तुम्हें इससे लाभ ही होगा।"

फतह पहली बार भगत बाबू के पास उनकी सही स्थिति समझाने के लिए गया। भगत बाबू उस समय विश्राम कर रहे थे। ढलती संझा का समय था—सुहावना और मनभावना। रंगीला और नशीला।

"मैं अन्दर आ सकता हूं?" उसने अपनी गर्दन नीची करके पूछा।

"हां, हां, क्या बात है?" सहज भाव से भगत बाबू ने कहा।

"मुझे तीन लाख रुपये चाहिएं।"

"क्यों ?" चौंक पड़े भगत बाबू।

"क्योंकि सेठ मोहनचन्द का देना है। उन्होंने तकाज़ा किया है।"

"तो दे दीजिए।"

"पर मैं कहां से दूं ?"

"मिल की बिक्री ?"

"मिल की बिक्री और आय, बहूजी तथा सेठानीजी लगातार खर्च कर रही हैं। मैं नहीं जानता कि वे दोनों क्या करती हैं।"

"मैं एक-दो दिन में प्रबन्ध कर दूंगा।"

यह पहला दिन था कि जब भगत बाबू को भयानक झटका लगा। उनकी उदासी बढ़ गई और वे कार में बैठकर चलते बने।

फतह समझ गया कि ज़मीन के अन्दर के कुएं का आज पता चल जाएगा। इधर अनाप-सनाप खर्चे के कारण सात लाख की टूट थी। यह सात लाख कहां से आएगा ? वह इतना प्रसन्न था जितना जादुई चिराग प्राप्त होने पर अलादीन। किन्तु उसने ऐसा कोई भी भाव अपने चेहरे पर नहीं आने दिया। वह उदास-उदास-सा बैठा रहा। वह जानता था कि भगत बाबू चन्द घड़ी में वापस आएंगे और उसके समक्ष अपनी समस्या रखेंगे। उसने अपने-आपको एक कुशल अभिनेता की तरह तैयार किया कि उसे सजल आंखों से क्या-क्या कहना है ! वह बड़ी देर तक मन ही मन मंसूबे बांधता रहा। उसका यह अनुमान भी सही निकला कि भगत बाबू शीघ्र ही लौट आएंगे।

वे लौटे तब बड़े परेशान थे। सच कहा जाए तो उनके चेहरे पर हवाइयां उड़ रही थीं। वे टूटे हुए इन्सान की तरह अपने कमरे में बैठ गए। उन्होंने पुकारा, "फतह !"

"क्या है बाबूजी ?"

"तुमने मुझे अन्धेरे में रखा !"

"नहीं, नहीं। मैं समझता था कि आप सदा इन बहियों को देखते हैं। मुझे यह मालूम नहीं था कि आप···"

"अब मैं क्या करूं ?"

"मैं आपको बताता हूं। आप ठहरिए!" कहकर वह अपनी कोठरी में गया। उसने अपने पास की कुछ नकदी और कुछ जेवर, जो लगभग पांच हज़ार के थे, भगत बाबू के चरणों में रख दिए।

"यह क्या?"

"यह सब आपका ही है।"

यह अत्यन्त नाटकीय दृश्य था जिसने भगत बाबू के मन में उसके प्रति गहरी आस्था को उत्पन्न कर दिया। फतह मन ही मन उस शिकारी की तरह हंस पड़ा जो अपने शिकार को पकड़ने के लिए दाना डालता है और उसी क्षण उसने ईश्वर से प्रार्थना भी की कि उसे इतना धैर्यशील व निपुण बनाए रखे कि वह भगत बाबू के मन में यह विश्वास जमा सके कि वह उनका अपना है क्योंकि उसकी प्रखर और दुष्ट बुद्धि यह अच्छी तरह जानती थी कि आगे कितना दुर्दान्त दृश्य उपस्थित होनेवाला है। फिर भी उसने सजल आंखें करके कहा, "मैं जानता हूं कि इस दोष के मूल में क्या है। आपकी पत्नी। अगर आपकी पत्नी एक सुशिक्षित, मधुरभाषिणी और चतुर होती तो आप पथभ्रष्ट नहीं होते? पर आप चिन्ता न करें। यह सही है कि आपको भयंकर परिणाम से टकराना ही पड़ेगा। मैं समझता हूं कि आप किसी एक निजी वकील या बैरिस्टर को बुला लीजिए।"

"क्यों?"

"आप यह नहीं जानते कि दो-चार दिन में यह खबर सब जगह फैलनेवाली है और तब लेनदार आपकी ईंट-ईंट को नीलाम करवा देंगे। मैं चाहता हूं कि आप अपनी मिल और जायदाद दूसरों के नाम कर दें। आपको मेरी बातें विचित्र अवश्य लगेंगी पर मुझे विश्वास है कि इसीमें आपका भला है। वैसे मैं अभी सेठानीजी के पास भी जाता हूं। बहूजी को भी समझाता हूं और उनके पास जितना भी है उसे ले आता हूं।"

भगत बाबू किंकर्तव्यविमूढ़-से हो गए। चेहरा पीला-पीला और शुष्क-सा नज़र आने लगा। उनकी भंगिमा देखकर कौन यह अनुमान लगा सकता था कि यह वही व्यक्ति है जो थोड़ी देर पहले अपने को सबसे अधिक सुखी इन्सान

समझता था।

फतह जाता-जाता वापस मुड़ा और बोला, "हमें संकटकालीन स्थिति में किंचित् भी नहीं घबराना चाहिए। क्योंकि घबराहट में हम कुछ ऐसे कदम भी उठा सकते हैं जिसका परिणाम आपका सचमुच दिवाला पिटवा देगा। लोग हमें चतुर व्यापारी नहीं, मूर्ख कहेंगे। प्रायः ऐसी स्थिति में बड़े आदमी अपना सारा धन दबाकर खाली हाथ बता देते हैं। इससे उनकी प्रतिष्ठा अवश्य चली जाती है पर फर्म का दूसरा नाम बदल करके पूंजी के बल पर पुनः उसी प्रतिष्ठा को अर्जित किया जा सकता है। क्योंकि आज के युग में पूंजी प्रतिष्ठा और सुख की मूलभूत कारण बन गई है।" वह भगत बाबू की निश्चलता को गौर से देखकर बोला, "मैं आपकी मानसिक यंत्रणा को समझता हूं।" वह एक नट की भांति एकदम घूमते हुए बोला, "ऐसी स्थिति में आदमी संतप्त ही नहीं उद्विग्न भी रहता है। लेकिन ऐसी अवस्था से समस्या और भी जटिल हो सकती है। समाधान उनके ज़रा भी नज़दीक नहीं आते।"

"फतह! मेरी समझ में नहीं आया कि आखिर रुपया गया कहां?"

"मिल भी पूरे वर्ष चली नहीं। कुछ दिन हड़ताल रही। कुछ दिन मशीनों की गड़बड़ी। माल भी ऐसा निकला जिसकी बाजार में बराबर मांग नहीं बनी रही। लगभग दो लाख रुपये आपने खर्च कर दिए। लाख के लगभग मांजी ने ले लिए। वह बद्रीनाथजी के रास्ते में धर्मशाला बनाने की योजना बना रही है। लगभग इतनी ही रकम बहूजी ने ले ली है। इसके अतिरिक्त सारे आदमियों के खर्चे। पर आप अभी अधिक न सोचकर किसी बैरिस्टर को बुला लीजिए। मैं अभी वहां जाकर जो कुछ है ले आता हूं। हमें दिवाला ज़रूर निकालना है पर नाममात्र का दिवाला अर्थात् सारी पूंजी अपनी और खाली हाथ लेनदारों को।"

वह सीधा बाड़ी आया।

संध्या का धुंधलका छा गया था।

गीता अपने ठाकुरजी को अगरबत्ती कर रही थी। खेतड़ी नीचे कार्य में व्यस्त थी। सबसे पहले वह मांजी के पास गया। मांजी अपनी तिजोरी को खोलकर रुपये गिन रही थी। फतह को देखकर उसने रुपये इस हड़बड़ी से

भीतर रखे गोया वह उससे छीन लेगा। उसने तिजोरी को तुरन्त बन्द किया और एक खोखली हंसी हंसकर वह बोली, "क्या बात है फतह, आज बेसमय आना कैसे हुआ ?"

"मैं आपके पास एक अत्यन्त ज़रूरी काम से आया हूं।"

"कौन-सा जरूरी काम है ?" वह संभलकर बोली।

"भगत बाबू एक नई मिल खरीद रहे हैं। उन्हें कुछ रुपयों की सख्त ज़रूरत है। अतः आपके पास जितना भी रुपया है, वह दे दीजिए, वे आपको पांच-सात दिन में लौटा देंगे।"

कौशल्या की आंखें विस्फारित हो गईं। वह अत्यन्त भोलेपन से बोलीं, "तुम कभी-कभी मुझ जैसी बुढ़िया की थाह लेने आ जाते हो। क्या तुम मुझसे मज़ाक तो नहीं कर रहे हो ? प्रायः बच्चे जब कभी अपने नीरस काम से उकता जाते हैं तो बुढ़ियाओं तक से नई-नई बातें करके कुछ आनन्द लेते हैं।"

"नहीं।" उसने दृढ़ता से कहा, "मैं आपसे मज़ाक नहीं कर रहा हूं। क्या एक नौकर इस तरह की बेअदबी कर सकता है ? मैं समझता हूं वह ऐसा करके अपनी नौकरी से हाथ ज़रूर धोएगा।"

"इसका मतलब यह है कि तुम सच बोल रहे हो ?"

"हां।"

"लेकिन तुम्हें यह भी पता होना चाहिए कि मेरे पास रुपये बिलकुल नहीं हैं। मुझे पांच हज़ार रुपये कल ज़रूर चाहिएं। मैं तुम्हें कहलवाने वाली भी थी; क्योंकि धर्मशाला का काम अभी तक समाप्त नहीं हुआ है। मैं इस धर्मशाला की वजह से बड़ी तंग हूं।"

"पर अभी आपने हज़ार-हज़ार के······"

वह बीच में ही अन्तर्भेदी दृष्टि से फतह को देखते हुए बोली, "तुम्हें भ्रम हो गया है। वे रुपये मुझे मेरी सहेली ने दिए हैं। वह आज रात को आकर उन्हें वापस ले जाएगी। तुम्हें मुझपर विश्वास करना चाहिए, मैं समझती हूं, एक साठ वर्ष की बुढ़िया व्यर्थ का झूठ नहीं बोल सकती। वह जानती है कि वह दो-चार वर्ष में अवश्य मरेगी।"

"मुझे विश्वास नहीं होता। क्या आप उस सहेली का नाम बता सकती हैं ?" उसने पैनी नज़र से घूरकर पूछा।

"नहीं बता सकती।"

"क्यों ?"

"क्योंकि उसका पति एकदम जुआरी है। साम, दाम, दंड, भेद से वह मेरी सहेली को गरीब बनाना चाहता है। वह इतना दुष्ट है जितना एक दैत्य हो सकता है। वह सुहाग की चूड़ियां तक भी एक बार बेच आया है। तुम जानते हो, मेरी सहेली ने चूड़ियां तो चूड़ियां, नाक में कांटा तक पहनना बंद कर रखा है। वह करे भी क्या ? छोटे-छोटे बच्चे हैं, उनके भविष्य को देखना ज़रूरी है।" वह क्षण-भर रुककर व्यथापूरित स्वर में बोली, "मैं तुम्हें भी उसका नाम व पता नहीं बता सकती। तुम उसके पति को अच्छी तरह जानते हो। कहीं तुम स्नेहवश या द्वेषवश उसको कुछ कह दो, वह उसे मारे-पीटे, भूखी-प्यासी रखे, खुद मरने की धमकी दे, फिर वह बेचारी क्या करेगी ? सचमुच वह एक हिन्दू नारी है जो आदर्श और कर्तव्य के साथ जीवन निर्वाह करती है। वह एक पतिव्रता की तरह सारा धन अपने पति को देना चाहती है पर वह अपने बच्चों की दुर्दशा नहीं देख सकती। अतः बेचारी ने ये रुपये मुझे संभलवा दिए ताकि वह यहां से थोड़ा-थोड़ा ले जाए।"

"फिर मैं चलता हूं।"

"देखो, तुम मेरे बेटे के बराबर हो।" कौशल्या कृत्रिम स्नेह अपने स्वर में लाती हुई बोली, "तुम्हें मुझपर विश्वास करना चाहिए। तुम्हारे कहने पर मैं सौगन्ध भी खा सकती हूं।"

"मैं आपपर बहुत यकीन करता हूं।"

"करना भी चाहिए। आखिर मैं इस उम्र में इतने रुपये रखकर क्या करूंगी ? सच पूछो, यह धर्मशाला बन जाए तो मैं बिलकुल मोह-माया से परे हटकर ईश्वर-भजन में तल्लीन हो जाऊंगी।"

कौशल्या ने मीठा उत्तर दे दिया।

वह उसी क्षण गीता के पास गया। गीता अपने कमरे की वस्तु को ठीक

कर रही थी। फतह को देखते ही वह विस्मय से बोली, "आज तुम रास्ता भूल गए क्या !"

"नहीं तो !"

"इतने दिन कहां रहे ? तुम नहीं जानते, मैं जिसे प्यार करती हूं, उसके लिए कितनी बेचैन रहती हूं !"

"क्या करूं, आपके पतिदेव घड़ी-भर के लिए भी नहीं छोड़ते। कभी यहां और कभी वहां !"

"पर..."

"पर क्या ?"

"पर किसी चाहनेवाले को इस तरह सताना कहां तक उचित है ?" उसने चुलबुली प्रेमिका की तरह कहा।

"मुझे क्षमा कर दो।" वह चौंककर बोला, "सुनो गीता, तुम्हारे पति एक अच्छी मिल खरीदने जा रहे हैं, क्या तुम उनकी इस काम में मदद नहीं करोगी ?"

"मैं मिल खरीदने में कैसी मदद कर सकती हूं ?"

"वे चाहते हैं, तुम्हारे पास जितनी नकदी और जितना जेवर है, वह तुम उन्हें दे दो। मैं सच कहता हूं कि उन्हें आजकल रुपयों की बड़ी तंगी है।"

वह एक बार बाहर गई। उसने इधर-उधर ताका और वापस आकर बोली, "तुम्हारी क्या राय है, उन्हें पैसा दिया जाए या नहीं ?"

उसने स्थिर दृष्टि से उसको देखा। फतह चुप रहा।

"तुमने मुझे प्यार किया है, स्वार्थवश ही किया है पर यह निश्चित है कि तुमने मुझे प्यार जरूर किया है।"

फतह मन ही मन हंसा, मैंने तुम्हें जरा भी प्यार नहीं किया। क्या एक भैंस से बनावटी प्यार भी किया जा सकता है ? मैंने सिर्फ अपना स्वार्थ पूरा किया।

"तुम यह भी जानते हो कि मैंने अपनी मर्यादा त्यागकर तुम्हें सर्वस्व विसर्जन किया है। परलोक के दंड को जानकर भी मैं पाप करती रही हूं।

मुझे विश्वास है कि इसका मुझे ईश्वर बड़ा कड़ा दंड देगा। पर एक उपेक्षिता स्त्री ऐसे तीव्रतम क्षणों को छोड़ भी कैसे सकती है ? उन क्षणों का मोह, आनंद और उल्लास ! ऐसे क्षणों की स्मृति को तुम अपने हृदय में रखते हुए मुझसे तत्काल छल-फरेब नहीं कर सकते। मुझे सच-सच बताना होगा कि उन्हें रुपयों की क्यों ज़रूरत है।"

वह अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से बोल रही थी।

फतह उससे चार नज़र नहीं कर सका।

"मैं समझती हूं कि मैं एक हेय स्त्री हूं। तुम्हारे समक्ष मेरी कोई इज्ज़त नहीं है। कदाचित् तुम मुझसे घृणा भी करते होओगे पर मैंने तुम्हें प्यार किया है। चाहे उस प्यार में मेरी गुस्से और चिढ़ की भावना भले ही रही हो।"

"मैं तुम्हें सम्मान की दृष्टि से देखता हूं। मैं तुम्हें प्यार करता हूं।" फतह ने अपनी अन्तस् की भावना को छुपाते हुए झूठ कहा।

"फिर बताओ, उन्हें रुपयों की ज़रूरत क्यों पड़ी ?"

"तुम्हें मुझसे एक वायदा और करना पड़ेगा, कि यह बात तुम किसीको भी नहीं कहोगी।"

"मैं तुम्हें वचन देती हूं।"

"तुम्हारे पतिदेव ने ऐय्याशी में बहुत रुपया बरबाद कर दिया है। उनका लगभग सात लाख का लोगों को देना बाकी है। ऐसी स्थिति में उनकी इज़्ज़त बचाना हमारा परम धर्म हो जाता है।"

"तुम पक्के बनिये और मुनीम नहीं हो। अगर कोई बनिया ऐसी स्थिति में, जो संभलने में सर्वथा असमर्थ है, लोगों को देना चुकाता है, वह मूर्ख है।" गीता झट से उसे झिड़कते हुए बोली।

"मै तुम्हारा मतलब नहीं समझा।"

"मेरा मतलब स्पष्ट है।" वह गम्भीर होकर बोली, "यह तुम जानते ही हो कि आज पैसा ही सब कुछ है विशेषतया हमारी जाति के लिए। एक आदमी दिवाला निकालता है। अगर उसने धन को दबा रखा है तो फर्म का नाम बदल-कर अपनी उतनी ही प्रतिष्ठा वापस प्राप्त कर सकता है जितनी उसने खोई है।

क्योंकि आज सबके मूल में पैसा ही सर्वोपरि है। तुम उन्हें समझा देना।"

उसकी बात सुनकर फतह हैरान हो गया। उसने सोचा, 'क्या मैं ही उसके अन्दर नहीं बोल रहा हूं?' वह प्रकट में बोला, "मैं उन्हें कह दूंगा।"

"इसपर उन्होंने मुझे पांव की जूती से अधिक महत्त्व नहीं दिया है। उन्होंने मेरी उपेक्षा और तिरस्कार भी बेहद किया है। मैं उनका किसी भी मूल्य पर विश्वास नहीं कर सकती। कल वे मेरा सब कुछ लेकर मुझसे किनारा कर लें तो?"

"अब स्थिति बदल गई है।"

"स्थिति फिर बदलने में कितनी देर लगती है।"

"मतलब?"

"मतलब यह है कि आज वे मेरे पास जो भी है उसे प्राप्त करना चाहते हैं। क्या यह संभव है कि भविष्य में वे मुझे उतना ही वापस देंगे? मैं समझती हूं कि वे इससे आधा भी मुझे नहीं देंगे?"

फतह मन ही मन यही उत्तर चाहता था। वह इतनी कोमल भाषा का प्रयोग भगतबाबू के लिए इसलिए कर रहा था कि लोग उसके अन्तस् की दुर्भावना को न समझे।

वह उदास-उदास-सा वापस लौटा। बैरिस्टर श्री ए. के. सेनगुप्ता आए हुए थे। उनसे कई घंटे गहरी मंत्रणा होती रही।

उसमें यह निश्चय किया गया—सूर्य काटन मिल्स कुछ दिन के लिए फतह के नाम से कर दी जाएं और शेष जायदाद बीवी व मांजी के नाम। इसके बाद सेठ भगतराम अपना दिवाला पिटवा लेंगे। लेनेदार उनसे क्या लेंगे?

फतह की बांछें खिल गईं। उस रात वह सो नहीं सका। उसने तुरन्त अपने-आपको लखपति घोषित कर दिया। "मैं लखपति बन जाऊंगा।" उसने अपने-कमरे में कहा। वह उन्मादित-सा हो गया और अकेला कुछ देर तक कमरे में नाचता रहा पर उसने सुबह निकलते ही अपने हृदय की असीम प्रफुल्लता को गम्भीरता में आवृत कर लिया। सचमुच वह बहुत चतुर हो गया था।

भगत बाबू कलकत्ता छोड़कर बाहर चले गए। धीरे-धीरे फतह ने यह शगूफा छोड़ा। बात फैलती गई और थोड़े ही दिनों में लेनदार उनके दरवाजे खटखटाने लगे। लेकिन होता क्या ? भगत बाबू की भी कोई कीमती चीज़ उनकी अपनी नहीं थी। बाद में उन्होंने सार्वजनिक रूप से अपने-आपको दिवालिया घोषित कर लिया।

इस दुर्घटना से व्यापारियों को बड़ी ठेस लगी। चंद ब्राह्मण विधवाओं के रुपये भी भगत बाबू के पास जमा थे, वे उनके पास आई थीं। आंसू भरकर एक बोली थी, "हमारे आगे-पीछे कोई नहीं है, हम निस्सहाय हैं। कम से कम आप हमारे रुपये अवश्य दे दीजिए।"

भगत बाबू ने अस्वीकार कर दिया था।

"ऐसी बात आप क्यों कहते हैं ? आपने भूखे रहकर तो दिवाला नहीं निकाला है। सभी कहते हैं कि ऐसा आपने जान-बूझकर किया है। आपके पास बहुत धन है।"

भगत बाबू चीख पड़े थे, "मैं कुछ नहीं जानता। मेरे पास एक फूटी कौड़ी भी नहीं है। मैं आपके लिए कुछ भी नहीं कर सकता।"

तब एक विधवा आंखों में आंसू भरकर चीख उठी थी, "सेठजी, क्या आपको मरना नहीं है। क्या आपको ईश्वर से डर नहीं लगता ?"

भगत बाबू निरुत्तर रहे थे।

"आप समझते है, हम गरीब विधवाओं का धन दाबकर सुख से रह पाएंगे ? हमारी आहें आपको कभी भी चैन नहीं लेने देंगी। आपके शरीर से हमारा रुपया कोढ़ बनकर फूटेगा।"

एक दूसरी विधवा चिल्लाई थी, "आपको कभी शांति नहीं मिलेगी।"

भगत बाबू झल्ला पड़े थे, "नहीं मिलती है तो न मिले, मुझे आप तंग न करें। मैं कहता हूं—आप सब इसी समय चली जाएं।"

"हम नहीं जाएंगी। हम यहां भूखी मर जाएंगी।"

"मरती रहो।" कहकर भगत बाबू बाहर चले गए थे।

वे तीनों विधवाएं जिनकी आंखें आंसुओं से भरी हुई थीं, जिनकी आत्माएं जल रही थीं, वे गीता के पास गईं और उन्होंने विनीत स्वर में प्रार्थना की। गीता ने दुःख से इतना ही कहा, "मैं आपके लिए कुछ भी नहीं कर सकती हूं। आप मेरी सास के पास जाइए। उसके दस-बीस हजार रुपये हैं। वह आपको आपका रुपया अवश्य दे देगी। क्योंकि वह एक धार्मिक वृत्ति की बूढ़ी स्त्री है। भगवान के कोप-प्रकोप से डरती है। मंदिरों में दान करती है। धर्मशालाएं बनवाती है।"

विधवाएं बोलीं, "हमारा इस संसार में इन रुपयों के सिवाय कोई नहीं है। आप ज़रा चलकर उन्हें कह दीजिए।"

"मैं ?" वह चौंक पड़ी और एक भेद-भरी मुस्कान अधर पर बिखेरती हुई बोली, "आप यह चाहती हैं कि आपको अपनी रकम नहीं मिले ?"

विधवाओं का चेहरा पीला पड़ गया। उनमें जड़ता आ गई।

"मैं समझती हूं कि आपका बिलबिलाना केवल रुपयों के लिए है इसलिए आप उसके पास जाइए। उसकी प्रशंसा कीजिए और फिर उससे अपनी रकम मांगिए। आप वहां मेरा नाम मत लीजिए अन्यथा उसे यह शक पड़ जाएगा कि मैंने ही आपको सिखा-पढ़ाकर भेजा है।"

वे विधवाएं उसके पास गईं। उन्होंने अनुनय-विनय किया। सास बोली, "आपका दुःख मेरा दुःख है। मैं विधवाओं का धन दबाकर नरक में जाना नहीं चाहती। मैं आपको विश्वास दिलाती हूं कि मेरे पास जैसे ही रुपये आएंगे, वैसे ही मैं आपको दे दूंगी।"

विधवाओं को इस दिलासा से शांति हुई। वे आश्वस्त होकर बोलीं, "आपने हमारे भीतर से जाते हुए प्राणों को रोक लिया। ईश्वर आपका यह संकट टाले।"

उनके जाते ही कौशल्या गीता के पास आई।

गीता सुखसागर पढ़ रही थी। सास को आते हुए देखकर भी उसने ऐसा

अभिनय किया जैसे उसको उसके आने का कोई भान ही न हो। सास उसके पास आकर खड़ी हो गई।

"वहू।"

"क्या है ?"

"मुझे तुम्हारा यह व्यवहार अच्छा नहीं लगता।"

"कैसा व्यवहार ?"

बुढ़िया आश्चर्य से उसकी ओर देखकर बोली, "तुम हर मांगनेवाले को मेरे पास भेज देती हो जबकि मैंने एक पैसा भी बचाकर नहीं रखा है। अगर मेरे पास थोड़ा भी रुपया होता तो मैं अपने बेटे की इज़्ज़त थोड़े ही जाने देती ?"

वह तनिक कठोर स्वर में बोली, "आप समझती हैं कि मैंने धन दबा रखा है ? दस-बीस हज़ार का ज़ेवर मेरे पास क्या रह गया मानो आपकी छाती पर सांप लोटने लगे हैं।"

"मेरी छाती पर सांप क्यों लोटेंगे ?"

"फिर आप अपने गिरेबान में देखकर ज़रा कहिए कि आपके पास कितना रुपया है ? मुझे अच्छी तरह से मालूम है कि आपके पास नहीं-नहीं तो भी, तीन लाख रुपये हैं। छोटी-सी धर्मशाला—वैसे सही मायने में वह धर्मशाला भी नहीं है, चार कोठरियों का छोटा-सा मकान है—उसे बनाने में लाख-डेढ़ लाख की रकम नहीं लग सकती, जबकि वह पूरी भी न बनी हो।"

सास नाराज़ हो उठी। वह आंखें तरेरकर बोली, "तुम्हें झूठ बोलते शर्म नहीं आती ? मैं अपने परमात्मा की सौगन्ध खाकर कहती हूं कि मेरे पास दो-चार हज़ार से ज्यादा हो तो ?"

"परमात्मा की सौगन्ध मैं भी खाऊंगी। मेरे पास एक फूटी कौड़ी भी नहीं है। बेचारा परमात्मा इस देश की झूठी सौगन्धों से न मालूम कितनी बार दुखी होता होगा।"

"बहू, झूठी कसम खानेवाले को ईश्वर कड़ा दंड देता है !"

"मुरली मनोहर सब जानता है कि झूठी कसम कौन खा रहा है।" वह एकदम लाल हो उठी।

तभी आ गया फतह।

सास-बहू को झगड़ते देख वह बीच में गंभीर स्वर में बोला, "आप लोग इतनी गर्म क्यों हो जाती हैं ? सब कुछ चला गया इसका मतलब यह नहीं है कि आप लोग घर में शांति न रहने दें। मैं आप दोनों को कहता हूं कि आपकी स्थिति शीघ्र ही संभल जाएगी।"

कौशल्या आंखों में आंसू भरकर बोली, "यह मुझपर लांछन लगाती है! क्या एक मां अपने बेटे को इस तरह अपमानित और लांछित होते देख सकती है ?"

गीता उसकी नकल करती हुई बोली, "और एक पत्नी क्या अपने पति को भयभीत चूहों की तरह बिलों में घुसते हुए पसन्द कर सकती है ? आप क्या जानें कि मेरे दिल पर कितने हथौड़े चल रहे हैं।"

फतह ने दोनों को समझा दिया, "सारी जायदाद वैसी की वैसी है और आप निश्चित होकर रहिए। मैं शीघ्र ही स्थिति को संभाल लूंगा। हां, बड़े बाबू के वैयक्तिक जीवन पर इससे बड़ा प्रभाव पड़ा है। वे मर्मान्तिक पीड़ा से आहत-से रहते हैं। अकेले बैठे रहते हैं। मुझे उनपर तरस आता है। पर मैं विवश हूं।"

अन्त में वह दोनों स्त्रियों को समझा-बुझाकर वहां से आ गया।

अब सूर्य काटन मिल्स का वह मालिक बन गया था।

कल सबसे छुपते हुए भगत बाबू उसके पास आए थे। उन्होंने फतह से आकर कहा था, "फतह, मुझे पांच हज़ार रुपये चाहिएं।"

"पांच हजार ? देखिए भगत बाबू अब आपको रुपये सोच-समझकर खर्च करने चाहिएं। आपने लक्ष्मी को सदा उपेक्षा की दृष्टि से देखा है, इसका परिणाम आप देख ही चुके हैं कि आपके पास कुछ भी नहीं रहा है। आप पैसे-पैसे के मुंहताज हो गए हैं।" उसने भगत बाबू के मन की प्रतिक्रिया को जानने

के लिए ऐसे वाक्यों का प्रयोग किया। उसने अपने को बहुत कोमल बनाने की चेष्टा की पर उसके अन्तस् की दुष्टता छिपी नहीं रह सकी।

"मेरे पास कुछ नहीं है ?" उन्होंने अपनी गर्दन को धीरे-धीरे उठाकर कहा, "यह तुम कैसे कह सकते हो कि मेरे पास कुछ नहीं है ? मैंने किसीको कुछ भी नहीं दिया है। मेरी बुरी नीयत के कारण लोग मुझसे घृणा करने लगे हैं। मैं किसीको अपना दुःख नहीं सुना सकता हूं। ओह ! मुझे यह मालूम होता कि मुझे इस नाममात्र दिवाला निकालने से इतनी तीव्र घृणा और उपेक्षा सहनी पड़ेगी तो मैं सबका देना दे देता !"

"आप फिर भावुकता की बातें करने लगे। क्या आप समझते हैं कि ईमानदारी से सम्मान मिलता है ? यह सब दकियानूसी बातें हैं। कुछ भारी-भरकम वाक्य वर्षों से प्रचलित हैं। वे वाक्य वज़नदार भी खूब हैं। बोलनेवालों में गर्व को जगाते हैं और सुननेवालों में आदर्श की भावना की सर्जना करते हैं लेकिन उनका व्यावहारिक रूप अब नितान्त बदल गया है। अब उस आदमी की ही प्रतिष्ठा होती है जिसके पास पैसा है। सेठ दीनकृष्ण को नहीं जानते हैं ? अपने पहले ज़माने में उसने कभी भी सौदे करके रुपये नहीं दिए। कई बार दिवाला निकाला पर आज उसका समाज व देश में वही सम्मान है जैसा किसी पुराने सेठ का।...सेठ बनवारीलाल का उदाहरण भी आपके समक्ष है। क्या उसने अपनी तेरह वर्षीय बेटी का विवाह बूढ़े लखपति कुन्दनमल से नहीं किया था ? समाज ने उस समय विरोध भी किया था। उसे सौदाई भी कहा था। बेटी की बिक्री करनेवाला चांडाल कहा था। पर आज क्या उसी समाज के आदमी उसके यहां नाक रगड़ने नहीं आते हैं ?" उसने अत्यन्त तरस के साथ कहा, "मुझे आपपर दया आती है। मैं आपको कहूंगा कि आप सर ऊंचा करके घूमिए। ऐसी स्वाभाविक ढिठाई-भरी हंसी हंसिए जिसको देखकर लोग सहम उठें। उसी शान-शौकत से रहिए कि लोगों को यह वहम हो जाए कि आपके पास उतनी ही दौलत है।"

"पर मैं ऐसा नहीं कर सकता।"

"इसका मतलब यह है कि आप लोगों में इस बात का विश्वास बिठाना

चाहते हैं कि आपके पास कुछ भी नहीं है।"

"हां।" उन्होंने दृढ़ता से कहा।

"मुझे आश्चर्य है।"

"क्यों नहीं होगा ? क्या तुम यह चाहते हो कि मेरे मित्र मुझे कमीना समझें ? उनकी शेष सहानुभूति को मैं खोना नहीं चाहता।"

वह दीवार पर नज़र दौड़ाता हुआ बोला, "आप बच्चों की तरह बातें करते हैं। क्या वे नहीं जानते हैं कि आपने सारा रुपया दबाकर दिवाला निकलवाया है ? आपकी नीयत साफ नहीं है ?"

"नहीं।" उन्होंने दृढ़ता से कहा, "मैंने उन्हें यह आश्वासन दिया है कि कुछ बात पुरानी पड़ जाने के बाद मैं आपको अपने रुपये धीरे-धीरे लौटा दूंगा। क्योंकि अभी परिस्थिति ठीक नहीं है।"

"लेकिन आपको रुपये देगा कौन ?"

"मैं यह बंगला बेच दूंगा।" उन्होंने आवेश में कहा, "क्या तुम यह चाहते हो कि मैं समाज से सदा अलग होकर रहूं ? मेरा यहां कोई दोस्त न रहे और मेरा व्यक्तित्व सदा-सदा के लिए मर जाए ? नहीं-नहीं। मैं यह सब नहीं सह सकता। तुम मेरी पीड़ा की रत्ती भर भी कल्पना नहीं कर सकते। मैं भीतर ही भीतर सुलगता रहता हूं। मैं चाहता हूं कि मुंह छुपाकर कहीं दूर चला जाऊं। आह ! एक हत्यारे की तरह मैं अपने-आपको समझता हूं। 'अब मुझे काली-अन्धेरी एकान्त से पूर्ण गुफा में ही शांति मिल सकती है,' ऐसी मेरी आत्मा मुझे कहती है। मैं चाहता हूं, जिल्लत की इस जिन्दगी से अच्छा है कि मर जाऊं। ईश्वर मुझे उठा ले।" कहते हुए भगत बाबू बालकों की तरह बिलख उठे।

"आप अधीर न होइए। ऐसे मौकों में आपको किसी तरह की कच्ची बात मुंह से नहीं निकालनी चाहिए। आप समझते हैं कि इन बातों का आपके परिवार पर क्या प्रभाव हो सकता है ? वे आपको फूटी कौड़ी भी नहीं देंगे।"

"क्यों नहीं देंगे ?" उन्होंने तनिक रोष में कहा, "जो चीज़ मेरी है, वह मेरी ही है।"

फतह खलनायक की तरह अपने चेहरे पर कठोरता लाकर बोला, "आप बच्चे

हैं। विषम परिस्थिति ने ग्रापको एक भावना-प्रवण युवक बना दिया है ; जिसे परिस्थिति के ग्रनुरूप कदम उठाने की ग्रादत ही नहीं होती है। यौवन में प्रायः व्यक्ति ऐसे ही हर बात पर जल्दी निर्णय ले लेता है और बहक-बहक जाता है। ग्रापको इस स्थिति में इस तरह नहीं बहकना चाहिए। मैं समझता हूं कि ग्रापको कुछ दिन तक एक ऐसे कुशल ग्रभिनेता का पार्ट ग्रदा करना चाहिए जो दूसरों में विश्वास बैठा सके कि ग्राप बदल गए हैं। ग्राप मेरा संकेत समझ गए होंगे। लीजिए, मैं स्पष्ट कर देता हूं। ग्रापने कभी भी ग्रपनी पत्नी से प्यार नहीं किया। ग्राप सदा दूसरी ग्रौरतों में भटकते रहे। ग्रापकी बुराइयों से सभी परिचित हैं, इसलिए ग्रापको ग्रापनी पत्नी ने भी एक पैसा नहीं दिया। मैं ग्रापको कहता हूं—लोगों को रुपये देने की बात को लेकर वह ग्रापको एकदम ग्रंगूठा दिखा देगी। वह बंगला क्या ग्रापको ग्रपना छोटा-सा जेवर भी बेचने को नहीं देगी। जब ग्रादमी के बुरे दिन ग्राते हैं तब उसका साया भी साथ छोड़ देता है। तब मैं ग्रापको एक परामर्श दूंगा कि ग्राप ग्रभी यह मानकर चलिए कि मेरे पास कुछ नहीं है। घरवालों को इसलिए सावधान मत कीजिए कि वे ग्रापको रुपया न दें।"

कहकर फतह ने ग्रपनी ग्रलमारी में से दो हजार रुपये दे दिए।

"दो हजार ?"

"मैं समझता हूं, यह भी बहुत है।"

"ग्रच्छा।" उन्होंने जलती दृष्टि से देखा। उनकी इच्छा हुई कि वे इन रुपयों को इसके मुंह पर मार दें पर परिस्थिति ने उन्हें ऐसा नहीं करने दिया। वे भीख में ग्राए रोटी के टुकड़ों की तरह उन रुपयों को लेकर चलते बने।

वे वहां से सीधे ग्रपने चंद परिचित दुकानदारों के पास गए। उन्हें कुछ-कुछ रुपये देकर यह ग्राश्वासन दिया कि भविष्य में फतह ग्रापके सारे के सारे रुपये दे देगा।

रात को वे देर से घर पहुंचे। उन्होंने देखा, गीता सो गई है। मां ग्रपनी एक भायली (सखी) को बुरे दिनों के ग्राने की बातें बता रही है। वह सारे का सारा दोष तकदीर को लगा रही है। नौकर-चाकरों में ग्रब एक खेतड़ी

और रसोइया रह गए थे। भगत बाबू ने बड़ी मुश्किल से खाना खाया। वे जाकर अपने कमरे में सो गए। ऐसी स्थिति के बाद भी वे गीता से 'पत्नी-पति के बीच मधुर संबंध बन जाए' का समझौता नहीं करना चाहते थे। उन्हें अब भी उस महिषी से घृणा थी। उसका काला रंग और उसका बेढंगा शरीर उनमें घृणा भर देता था। उन्हें लगता था कि कभी वह उसे अपनी बांहों में भरकर मार देगी। तब वे अपनी सुन्दर-सलोनी प्रेमिकाओं की मधुर कल्पना में खो गए।

अचानक उन्हें कदमों की आहट सुनाई पड़ी।

"कौन है ?"

"मैं ! क्या आपने पिताजी को कोई चिट्ठी लिखी थी ?" गीता ने अनिच्छा से पूछा, "उनका उत्तर आया है।"

भगत बाबू ने गीता की ओर नहीं देखा। उन्होंने उस चिट्ठी को ले लिया। पढ़ी। फाड़कर फेंक दी। वे अपने आपसे कह उठे, "बुरे दिन में कोई भी अपना नहीं होता। आपके पिताश्री लिखते हैं कि मेरे पास फूटी कौड़ी भी नहीं है। छिः, क्या करेंगे लाखों रुपयों का ! दरअसल अब आदमियों को अपनों से नहीं, रुपयों से प्यार रह गया है।"

गीता ने कहा, "उन्होंने आपको बहुत दिया। क्या आप चाहते हैं कि वे उम्र-भर आपको देते रहें ? कुबेर का खज़ाना किसीके पास नहीं है। सभी भविष्य की चिंता रखते हुए खर्च करते हैं। आपकी तरह पैसों को पानी नहीं समझते !"

"सुनो गीता, मुझे इस समय उपदेश सुनना ज़रा भी पसंद नहीं है। मैं इस तरह की बातें सुनकर ऊब गया हूं। सभी मुझे ऐसी स्थिति में एक-सा ही भारी-भरकम नीरस उपदेश देते हैं। मैं तुम्हें हाथ जोड़ता हूं—मुझे ज़रा भी उपदेश न दो।······फतह भी मुझे समझाता है। कैसा बुरा समय है मेरा ? कल जो मेरी जूती चाटता था, आज वह मुझे एक नादान-सा बालक समझता है। मेरी ऐसी इच्छा हुई कि मैं उस नालायक को मारूं पर मैं बहुत विवश हूं अतः जहर का घूंट पीकर रह गया। मिल उसके नाम है। मुझे डर है

कि वह कहीं मिल को हड़प न जाए।"

"वह ऐसा नहीं कर सकता।"

"आज उसका टोन बदला हुआ था। आज उसके स्वर में उतना ही दंभ मुझे लगा जितना एक लखपति के स्वर में होता है।"

"पर मनुष्य इतना कमीना नहीं हो सकता!" गीता को झटका-सा लगा।

"वह इतना ही कमीना है। तुम उसे नहीं जानतीं कि वह शख्स पैसों के लिए क्या-क्या कर सकता है। मैं समझता हूं, वह रुपयों के लिए नंगा होकर चौराहे पर नाच सकता है। अपनी बीवी को बेच सकता है। अपने-आपको दांव पर लगा सकता है। मुझे आज उससे एकाएक घृणा हो गई।" वह चीखकर बोला, "अप्रत्याशित घृणा का होना भी कुछ आधार रखता है। मैं उसकी आंखों का अहंकार सह नहीं पाया। मैंने उसे मन ही मन धिक्कारा और पीटा भी है।"

"क्या वह ऐसा सोचता है कि वह मिल हड़प जाएगा?"

"मुझे डर है कि वह ऐसा ही सोचता है।" उन्होंने अपने शब्दों पर ज़ोर दिया।

"नहीं, मैं उसे ऐसा नहीं करने दूंगी।" उसने विश्वास के साथ कहा, "मैं कल ही उससे मिलूंगी।" कहकर गीता बाहर जाने लगी। भगत बाबू ने अत्यन्त स्नेह से पुकारा, "गीता, सुनो तो!" कदाचित् जीवन में इस तरह उन्होंने उसे कभी-कभी ही पुकारा था। गीता के मन का तार-तार झनझना उठा। सहसा उसकी पलकों के कोये भीग गए। लेकिन उसने अपनी हृदय की वास्तविकता को अत्यन्त कठिनता से ज़ब्त कर लिया, "क्या है?"

"फतह कह रहा था कि तुम भी मुझे कुछ नहीं दोगी।"

"इन बातों से आप अभी परेशान मत होइए।" कहकर वह बाहर चली गई। उसके जाते ही उन्हें लगा कि उनका संसार में कोई नहीं है। वे असहाय और अकेले हैं।

फतह के लड़का हुआ।

अब उसके जीवन में काफी परिवर्तन आ गए थे। उसने भगत बाबू की कोठी को छोड़ दिया था। उसने पृथक् एक बाड़ी ले ली थी। संयोग समझिए कि फतह के भाग्य से सूर्य काटन मिल्स का माल भी चल निकला। अच्छी आमदनी होने लगी। भगत बाबू के दिवाले की बात भी पुरानी पड़ गई पर वे इस आघात को सह नहीं सके। उनका चेहरा वर्षों से रोगी प्राणी की तरह पीला और दुबला हो गया। गालों की उभरी हुई हड्डियों ने उनके चेहरे की आब को मार दिया। अब वे पूर्णतया शांत और खामोश रहते थे।

कल उन्हें यह मालूम हुआ कि सूर्य काटन मिल्स का नाम बदला जा रहा है। अब उसका नाम लक्ष्मी मिल्स होगा। वे चिंतित हो उठे। वे सीधे फतह के पास गए। फतह घर में था पर उसकी नौकरानी ने बताया कि वे अभी घर में नहीं हैं। जब भगत बाबू ने सप्रमाण यह साबित किया कि फतह घर में ही है तब नौकरानी ने झल्लाकर कहा, "वे आपसे अभी नहीं मिल सकते। वे अपना एक अत्यन्त जरूरी काम कर रहे हैं।"

घृणा की लहर उसके तमाम शरीर में दौड़ी और वह (क्योंकि भगत बाबू अब बाबू रहे ही नहीं अतः 'तुम' का प्रयोग ही स्वाभाविक लगता है) सीधा अपने घर आया।

गीता अपनी एक आसामी को डांट रही थी। आर्थिक तंगी के कारण गीता की बाड़ी में लगभग दस अन्य किरायेदार आकर रहने लग गए थे। बंगला भी किराये पर उठा दिया गया था। इसके अतिरिक्त गीता अब ब्याज भी कमाने लगी थी। लेन-देन के मामले में उसका अपना एक उसूल है—बिना कुछ गिरवी रखे वह एक पाई भी नहीं देती थी।

भगत ने बीच में थोड़ा-सा अवरोध उत्पन्न किया, "सुनो गीता, जल्दी से भीतर आना।"

"आती हूं।"

"मेरा ब्याज क्यों नहीं पहुंचाया ?" गीता ने भड़ककर, नेत्र मिचमिचाकर कहा, "मैं लेन-देन में अत्यन्त ईमानदारी चाहती हूं। मुझे यही सह्य नहीं होता कि कोई मेरा एक पैसा भी देर से दे। मैं तुम्हें आखिरी बार कह रही हूं—मेरे ब्याज के रुपये शीघ्र पहुंचा देना वर्ना मैं तुम्हें कचहरी में ले जाऊंगी। यह चमचमाती इज़्ज़त और दमदमाता दंभ धुएं-सा काला होकर उड़ जाएगा। हूं।"

"आप यकीन रखें। मैं आपको कल तक पहुंचा दूंगा।"

आसामी के चले जाने के बाद गीता भगत के पास आई। भगत वर्षों से थके प्राणी की तरह पलंग पर बैठा था।

"क्या बात है, आज आप उदास-उदास-से लगते हैं ?" गीता ने कोमलता से कहा, "क्या तबियत खराब है ?"

"नहीं तो।" उसने भी कोमल स्वर में कहा, "मेरी तबियत खराब नहीं है गीता। दरअसल बात यह है कि फतह सूर्य काटन मिल्स का नाम बदलकर लक्ष्मी मिल्स कर रहा है।"

वह विस्मय से आंखें फाड़ती हुई बोली, "क्या कहते हैं आप !"

"सच कहता हूं। कागज़ात भी तैयार हो गए हैं।"

"मुझे विश्वास नहीं होता। मैं इसी समय उसके पास जाती हूं।"

"सुनो, बात गंभीर है। लाखों रुपयों का सवाल है। मैं पहले ही समझता था कि यह बदमाश मुझे मिल वापस नहीं देनेवाला है। कई दिन से उसकी बात का स्वर और व्यवहार सब-कुछ बदल गया है। मनुष्य इतना नीच भी हो सकता है !...अरे तुम हड़बड़ी में काम खराब कर दोगी। अब हमें असहाय-अपंग की तरह उसके ही पक्ष में रहना पड़ेगा और जितना मिल जाए उसे ग्रहण करना पड़ेगा।"

"आप निश्चिंत रहिए। मैं कुछ भी गड़बड़ नहीं करूंगी।" वह सीधी वहां से फतह के पास गई। फतह को गीता के आगमन की सूचना मिली। वह खुद उसकी अगवानी करने के लिए आया। उसके अधरों पर अर्थ-भरी मुस्कान थी।

"आओ गीता, आओ। बड़े दिनों में आई हो।"

गीता क्षुब्ध-सी थी। वह तनिक विचलित स्वर में बोली, "आज भी नहीं आती पर एक ऐसी बात सुनी कि मुझे आना ही पड़ा।"

वे दोनों अब तक बैठक में आ गए थे।

"तुमने ऐसी बात क्या सुनी?" वह बिलकुल अनजान बनते हुए बोला। उसके चेहरे पर हल्की-सी हैरानी थी।

"फतह!" उसने नाक में बल डालते हुए कहा, "यह कहां तक ठीक है कि तुम हमारी मिल का नाम बदल रहे हो?"

"नाम बदलने में ही लाभ रहेगा। मैंने एक पंडित से सलाह ली थी। उन्होंने कहा कि जब तक मिल का नाम नहीं बदलोगे तब तक आय में वृद्धि नहीं होगी। सूर्य नाम बड़ा ही दकियानूसी है।"

"तुमने आय में वृद्धि होने के पश्चात् हमें एक पैसा भी दिया है? फतह! तुम यह न भूलो कि तुम इस मिल के केवल नाम-मात्र के स्वामी हो। उसके असली हकदार आज भी हम हैं।"

वह हंस पड़ा।

"तुम दुष्टता की हंसी हंसकर मुझपर आतंक नहीं जमा सकते। मैं तुम्हें हाथ जोड़कर प्रार्थना करती हूं कि हमें अपनी मिल वापस कर दो। तुम यह अच्छी तरह जानते हो, ईश्वर इस तरह के पापों को कभी भी क्षमा नहीं करता।"

"मैं हर काम ईश्वर की आज्ञा से ही करता हूं। मैं बड़ा आस्तिक हूं। सुबह जप किए बिना चाय तक भी नहीं पीता। समझीं।"

"यह सब ढोंग है।"

"तुम कह सकती हो।" वह बात को बदलते हुए बोला, "अरे हां, मैंने कल सुना था कि आजकल तुम दोनों मियां-बीबी में सुन्दर समझौता हो गया है। क्या ही अच्छा होता कि यह सब पहले हो जाता!"

धूप की लकीर खिड़की से उतरती हुई गीता को छूने लग गई थी। फतह ने नौकर को पुकारा और कहा, "खिड़की के आगे पर्दा कर दो। और हां, तुम

पानी जरूर पीओगी ही ? गर्मी का मौसम है । एक गिलास ठंडा पानी ।"

बीच में ही गीता ने रोक दिया, "मैं पानी नहीं पीऊंगी ।" उसने नौकर के जाने का इन्तज़ार किया । वह चला गया तब वह बोली, "मैं यहां पानी पीने नहीं आई हूं । मैं तुम्हें यह पूछना चाहती हूं कि तुम हमें हमारी मिल वापस कर रहे हो या नहीं ? अब तुम्हारे पास काफी रुपया हो गया है । तीन-तीन दुकानें भी हैं । सट्टे में भी तुमने खूब कमाया है ।"

"कमाना-खोना भाग्य की बात है ।" फतह बोला, "रही मिल की बात, उसके लिए मैं इतना ही निवेदन कर सकता हूं कि जितने रुपये लेकर आपने मेरे हाथ यह मिल बेची है, उतने रुपये आप वापस देकर उसे ले भी सकती हैं ! मैं इस मिल से ऊब गया हूं । कल-पुर्जे पुराने होने की वजह से मैं अपनी मनपसंद का माल बना भी नहीं सकता ।"

गीता रोने-रोने को हो गई । उसने मन ही मन कहा, "यह आदमी है या लुटेरा ? इसका कोई भी धर्म-ईमान है !"

"मैं चाहता हूं कि तुम मुझे रुपये दे दो । मैं इस मिल को रखना ही नहीं चाहता । मुझे पुरानी मिल में जरा भी दिलचस्पी नहीं है । मैं एक शानदार और बढ़िया मिल खरीदना चाहता हूं ।"

"बड़े बाबू !" नौकर ने आकर कहा ।

"क्या है ?"

"सेठ मनहरलाल आए हैं ।"

"मैं अभी आता हूं ।" उसने गीता पर दृष्टि जमाते हुए दृढ़ता से कहा, "फिर तुम कब रुपये ला रही हो ? मैं समझता हूं कि पति के दिवालियेपन के पहले जो तुमने रुपये बचाए हैं, उन रुपयों से तुम सहजता से यह पुरानी छकड़ा मिल वापस खरीद सकती हो । मैं तुम्हें दस-बीस हज़ार रुपये छोड़ सकता हूं ।"

"तुम सचमुच बेईमान हो ।" वह रुआंसा स्वर में बोली, "मनुष्य का इतना नग्न और चांडाल रूप मैंने नहीं देखा । फतह, किसी दूसरे का माल हड़प लेना इन्सानियत नहीं ।"

"मैं किसीका माल नहीं हड़पता। मैं इसे पिछले जन्म का पावना मानता हूं। मुझे अखंड विश्वास है कि आदमी बिना कुछ दिए कुछ भी नहीं पा सकता। यह मिल तुम्हारे पति ने पिछले जन्म में मुझसे अवश्य हड़पी होगी जो मुझे इस जन्म में वापस मिल गई है। इसमें नाराज होने की क्या बात है ? मनुष्य को अपने लेने-पावने जन्म-जन्मान्तर में चुकाने ही पड़ते हैं।"

"ओह !" वह वेदना से तड़प उठी।

"पश्चात्ताप कर रही हो ?" एक विचित्र प्रश्न-सा किया।

"नहीं, खुशियां मनाऊंगी !" वह चीखकर बोली।

"अवश्य मनानी चाहिए। आज तुम्हारे पति का उस लोक का कर्ज़ा चुकता हो गया है।" उसने अपने मन की दुष्टता बाहर नहीं आने दी, "मैं सच कहता हूं गीता, कि मुझे उस दिन असीम शांति मिलती है जिस दिन मैं किसीका कर्ज़ चुकाता हूं।"

"मुझे तुमपर दया आ रही है। आदमी इतना दुष्ट और नीच नहीं हो सकता जितने तुम हो ! तुम्हें ज़रा भी अपने-आपपर ग्लानि नहीं होती कि तुम उस मालिक का अहित कर रहे हो, जिसने तुम्हें 'ज़िन्दगी क्या है' यह बताया है। ध्यान से सुनो फतह, कि विश्वासघाती और नमकहराम का अन्त अत्यन्त भयानक होता है।"

उसने खिड़की के बाहर खखार कर थूका। फिर उसने एक अंगड़ाई ली जैसे गीता की बातों का उसपर कोई असर नहीं हुआ है। वह अत्यन्त हल्के स्वर में चुटकी बजाता हुआ बोला, "तुम्हें जो कहना था कह चुकीं। अब तुम जा सकती हो ?"

"फतह, ईश्वर से डरो। उसका अपना एक दरबार है।"

"ओह !" वह किंचित् आवेश-मिश्रित स्वर में बोला, "मुझसे अधिक ईश्वर से तुम्हें डरना चाहिए। क्या तुम समझती हो कि ईश्वर के दरबार में तुम्हें क्षमा किया जाएगा ? अपनी नीचता और कमीनापन नहीं देखती हो जो तुम मुझे उपदेश दे रही हो। कभी अपने-आपको देखा है ? मैं कहता हूं, ईश्वर तुम्हें मुझसे अधिक कठोर व भयानक दंड देगा। अब तुम जा सकती हो।"

गीता की आंखों में आंसू छलछला आए। वह भर्राए स्वर में बोली, "जब आदमी की मति मारी जाती है तब फतह, ऐसा ही होता है। मेरी मति ही मर गई थी। तुम मेरी दुर्बलताओं का स्पर्श करके मेरी भावनाओं को विद्रोह की ओर मोड़कर नहीं बिगाड़ते तो मैं पथभ्रष्ट नहीं होती। लेकिन कसूर मेरा ही है। पर एक शाप तुम्हें भी देती हूं कि तुम्हें भी सुख नहीं मिलेगा।"

वह यह कहकर बाहर निकल गई। रास्ते में उसे पद्म मिल गई। पद्म ने उसे आंसू-भरी आंखों से जाते देखकर रोका। गीता दारुण दुःख से चीख उठी, "मुझे जाने दो। मुझे जाने दो। मुझे मत रोको बहिन, मत रोको।"

"आखिर बात क्या है ?"

"तुम्हें यह मालूम है न, यह मिल हमारी है, बिगड़ी स्थिति में हमने यह मिल तुम्हारे पति के नाम कर दी थी और अब वह उस मिल को सदा के लिए हड़प जाना चाहता है। यह कितनी बड़ी बेईमानी है।"

पद्म सीधी-सरल नारी थी। कोमल स्वर में बोली, "उन्हें ऐसा नहीं करना चाहिए। किसीकी चीज़ को अनुचित तरह से दबाना महापाप है।"

"वह उसे परम धर्म समझ रहा है।"

"उनकी बात जाने दीजिए। वे रुपयों के लिए पागल हैं। उन्हें किसी भी वस्तु के बदले रुपया चाहिए। कल रात कहने लगे कि मैं एक बार देश का सबसे बड़ा धनी बनना चाहता हूं। और इस शब्द के कहने के साथ ही उनके मुख पर विचित्र छायाएं तैरने लगी थीं तथा आंखों में जलते इरादे चमक उठे थे। मैं उनकी उस मुद्रा से डर जाती हूं।"

"संतोष की मां !" फतह ने गरजकर कहा।

"क्या है ?"

"भीतर क्यों नहीं जाती ? पति की निंदा करना महापाप कहलाता है। एक पत्नी के लिए पति की इच्छा पर चलना ही महाधर्म है।"

गीता चोट खाई नागिन-सी फुफकारती चली गई।

कुछ देर बाद पद्म फतह के कमरे में गई। फतह कुछ कागज़ात देख रहा था। पद्म ने कहा, "आपको ऐसा नहीं कहना चाहिए।"

पद्म की ओर उसने जलती दृष्टि से देखा और कहा, "मुझे ऐसा लगता है कि तुम कभी न कभी इस घर से निकलोगी। मैंने तुम्हें हजार बार कह दिया है कि मेरे काम में दखल न दिया करो। मैं हर कदम सोच-समझकर ही उठाता हूं। धर्म-अधर्म और आचार-विचार मैं तुमसे अधिक जानता हूं।"

"मैं मानती हूं कि आप बहुत चतुर हैं।" उसने तेज़ स्वर में कहा।

"जानकर ऐसे प्रश्न करना तुम्हें शोभा नहीं देता।"

"मैं क्षमा चाहती हूं।" वह एकदम पीली पड़ गई।

"भविष्य में…" वह राक्षस की तरह पद्म को देखने लगा। पद्म कांप उठी। उसके समक्ष अतीत की एक घटना साकार हो उठी। जब भगत बाबू ने उससे बार-बार बदतमीज़ियां की थीं तब उसने शिकायत की थी। वह मौन रहा था कुछ देर। बाद में बोला था, "वे देवता हैं, उनके बारे में तुम्हें ऐसी राय नहीं बनानी चाहिए।"

जब उसने दूसरी बार कहा था, "आज उन्होंने मुझ अकेली को देखकर चूम लिया।" तब फतह ने उसे बुरी तरह पीटा था। उसपर इलजाम लगाया था कि वह ऐसे महान पुरुष को बदनाम करना चाहती है। भविष्य में वह उनकी शिकायत न करे।

पद्म ने इसका तात्पर्य यही लगाया था कि उसका पति भगत बाबू के लिए उसको बेच रहा है। क्योंकि भगत बाबू की सबसे बड़ी कमजोरी सुन्दर युवती है। तब वह क्या करती? वह गुलाम की तरह पति की आज्ञा पर लुट गई। आज उसे अपने पति से कोई लगाव नहीं, आदर नहीं। वह उससे घृणा करती है पर उसने अपनी घृणा को कभी भी प्रकट न किया। वह एक परवश नारी है, जिसका जीवन उस समाज में पति-सेवा के सिवाय कुछ भी नहीं है। पति के अलग होते ही लोग उसको पापिन, दुराचारिणी, व्यभिचारिणी और न जाने क्या-क्या कहेंगे? भले ही ऐसा न हो और अगर वह सचमुच में कुलटा है फिर भी उसके अपना पति है तो वह इन सम्बोधनों से बच जाती है। इस संसार में स्त्री बड़ी दयनीय है।

उसे जीवन गुज़ारना है। बस यह वाक्य वह प्रायः मन ही मन दोहराया

करती थी और जब कभी वाद-विवादग्रस्त और भावनाशील होती तब वह इस वाक्य को थोड़ी देर के लिए विस्मृत कर देती थी, फलस्वरूप वह फतह और अन्य नौकर-चाकरों को उपदेश दे देती थी। तब उसकी भाषा में व्यावहारिक व शाश्वत सत्य के प्रचलित वाक्य व बातें सम्मिलित हो जाती थीं। पद्म बोलती जाती थी। तब अप्रत्याशित ही उसे यह वाक्य याद आ जाता था, "उसे जीवन गुजारना है।" और वह बात के चरमोत्कर्ष के मध्य ही क्षमा मांग लेती थी जैसी अभी उसने फतह से मांगी थी।

वह अपने कमरे में जाकर रो पड़ी। क्योंकि वह पूंजीवादी समाज की अन्य सेठानियों की तरह अपनी मन:स्थिति को इस तरह नहीं बना पाई थी जिससे वह सतीत्व-हरण की बात को साधारण बात की तरह अपने मानस-पटल से मिटा दे। उसे वह महापाप-सा लगता था और इस पाप से आक्रांत उसके संस्कार उसे नारीत्व से भी वंचित कर रहे थे। वह रात-दिन उस पीड़ा में और उससे उत्पन्न कुंठाओं में जलती रहती थी और इसी कारण उसने अपने बेटे को एक धाय को संभलवा दिया था। क्योंकि वह अन्तिम रूप से यह निर्णय नहीं कर पा रही थी कि यह बच्चा किसके बीज से उत्पन्न हुआ है! वह बस रोगिणी की तरह पड़ी रहती थी। वह जीवन में वीतराग-सी हो रही थी। कभी-कभी उसके पास-पड़ोस की स्त्रियां आ जाती थीं और उसकी झूठी प्रशंसा करती रहती थीं।

आज के युग का यह दस्तूर है कि जैसे ही व्यक्ति के पास रुपया आता है, वैसे ही उसके चारों ओर सच्चे-झूठे संबंधी मधुमक्खियों की तरह आ जुटते हैं।

वे आगुन्तक स्त्रियां उसके स्वभाव, मीठी वाणी और दयालु वृत्ति की प्रशंसा करती थीं जबकि सत्य यह था कि वह नितांत एकांतप्रिय और अंतर्मुख थी। उसकी वाणी सदा आक्रोशजनित कर्कशता लिए होती थी, और वह कभी किसीकी बात को प्रोत्साहन नहीं देती थी। उन स्त्रियों की लगातार झूठी बातें, वह भी प्रमाणित रूप में सुनकर उसे पुराने जमाने की रानियों की दासियों का ख्याल आ जाता था। जब कभी ऐसी स्त्रियां आतीं तो वह इस प्रयास में रहती कि वह उनसे

जल्दी-जल्दी कैसे छुटकारा पाए ? वह उन स्त्रियों की किसी भी दृष्टांतमयी बातों की प्रशंसा नहीं करती थी। कभी-कभी वह अतीव बातूनी ब्राह्मण बुढ़िया को, जिसका पेशा यजमानी का होता था, तुरंत कुछ दान-दक्षिणा देकर रवाना कर देती थी। इसमें उसकी दान की भावना किंचित् भी नहीं होती थी बल्कि वह यह सब पिंड छुड़ाने के लिए ही देती थी। पर वह बुढ़िया उसकी इतनी प्रशंसा करती थी कि चंद गरीब स्त्रियां उसके द्वारे और आ जाती थीं और इस तरह उसे व्यर्थ की कीर्ति दिन-प्रतिदिन मिल रही थी कि वह दयालु है।

फतह यदाकदा उसके पास सोने आता था। तब वह उन रानियों की तरह हर्षोन्माद में नहीं भरती थी जिनका राजा साल में एक-दो बार आता था। वह मरणासन्न-सी पड़ी रहती थी। उसमें किसी तरह की चंचलता और उत्सुकता दृष्टिगोचर नहीं होती थी। एक विरक्ति-सी उसमें रहती थी जो गृहस्थ साधू की आंखों में चमका करती थी। फतह उससे बड़ी-बड़ी बातें करता। पूछता, "तुम्हें किसी वस्तु की चाह नहीं होती ?"

"नहीं।"

"तुम कभी और सेठानियों की तरह ज़ेवर भी नहीं बनातीं ?"

"मैं पति द्वारा कई बार ज़ेवर पहन चुकी हूं।" इस वाक्य के अर्थ को फतह समझ जाता था। ज़ेवर का मतलब पिटाई से था। इस विचार से वह मर्माहित-सा हो उठता था।

"तुम मुझे परेशान करती हो !" हालांकि उन्हें पद्म का यह स्वभाव अच्छा लगता था। क्योंकि पत्नी के पास धन आते ही वह पति से प्रतिस्पर्धा करने लगती है, ऐसा उसका विचार था।

"मैं ?" वह चकित-सी फतह को देखती पर फतह उससे नज़र नहीं मिला सकता। उसकी आंखों में वेदना का ऐसा प्रभाव रहता था जो फतह को अपने जुल्मों की संक्षिप्त कहानी एक क्षण में याद दिला देती थी। वह कांप जाता था और वह अपनी नज़र को इधर-उधर दौड़ाता हुआ कहता, "तुम कभी हंसकर नहीं बोलती हो। तुम कभी अच्छा खाती-पहनती नहीं हो। तुम कभी घूमने-फिरने नहीं जाती हो।"

"इन सब बातों का संबंध आदमी के स्वभाव से होता है। कुछ आदमी घूमने-फिरने में खूब आनंद लेते हैं और कुछ आदमी घर से बाहर निकलना भी नहीं चाहते।"

"लेकिन···!"

"आप मेरे पति हैं ! मैं आपका हुक्म मान सकती हूं। आप कहिए—तू सोलह श्रृंगार कर, मैं कर लूंगी। आप कहिए, उस आदमी के संग सो, मैं सो जाऊंगी। मुझे केवल आपका हुक्म मानना है।" वह घृणा से उत्तेजित हो गई।

"तुम मुझपर फब्तियां कस रही हो ?"

"नहीं। मैं केवल अपना धर्म बता रही हूं।"

"जो हो गया है, उसे भूलने की कोशिश क्यों नहीं करतीं !"

"जो अविस्मृत है, उसे भुलाया नहीं जाता।"

"अब कहो, तुम मुझे परेशान करती हो या नहीं ?"

"नहीं।"

फतह क्रोधित होकर चला गया।

पद्म अकेली रह गई। कमरा और सन्नाटा। उसने कमरे में अंधेरा कर लिया। अन्धकार में उसे अपने पति की लालसा चमकते घड़ी के पेंडुलम की टिकटिक में जान पड़ी। घड़ी का पेंडुलम एक वृत्त में निरन्तर टिकटिक कर रहा था और उसे महसूस हुआ कि उसके पति की लालसा भी एक ही वृत में भाग रही है। वह वृत है धन का।

जीवन के प्रति पद्म में कोई उल्लास नहीं है। कोई लगाव और आकर्षण नहीं है। केवल जीवन गुज़ारना है, इसके लिए सांसों के कारवां को चलाना उसे नहीं भाता। वह कभी-कभी मर जाना चाहती है। पर वह कभी इस विचार को कार्यान्वित करने में सफल नहीं हुई।

उसका पति उसे कहता है कि वह अतीत को भूल जाए। वह अन्य सेठानियों की तरह अनेकानेक कुकर्म करके भी दर्प से सिर ऊंचा रखे। प्रभु के मंदिरों में जाकर भजन-पूजा करे और दान देकर दानी कहलाए। लेकिन उसे उन सेठानियों से, अपने वर्ग की उन स्त्रियों से चिढ़ है। उसे मालूम है कि

कई नौकरानियां उसे ही सेठानियों के छोटे-छोटे आदमियों के साथ हुए नाजायज सम्बन्धों की कहानियां सुनाती हैं और वे सेठानियां समाज की अति प्रतिष्ठित महिलाएं कहलाती हैं किन्तु वह उनका जरा भी सम्मान नहीं करती है। वह उन्हें ढोंगी, पापिनें और बदजात जैसे सुन्दर विशेषणों से अलंकृत कर सकती है। उसे ऐसी स्त्रियों से घृणा है और उसका अनुमान है कि उन्हें भयंकर नरक मिलेगा क्योंकि वे पाप करके भी साध्वी का ढोंग करती है। छिनालों के आचरण करके भी सतियों-सी महान पवित्रता का प्रदर्शन करती हैं जो सरासर संसार-वालों व अपने-आपसे धोखा है।...उसे भी नरक मिलेगा, इस बारे में उसकी अपनी दृढ़ धारणा है। पति की आज्ञा को सर्वोपरि मानकर सतीत्व बेचना भी उसे पाप-सा ही लगा। वैसे कभी-कभी वह सोचती थी कि लोग प्राचीनकाल में अतिथियों को अपनी पत्नियां तक कैसे अर्पण कर देते थे। तत्क्षण उसे लगता था कि यह सब बकवास है। कोई भी ऐसा नहीं कर सकता। यह असंभव है। केवल उसके पति जैसा पामर व्यक्ति ही ऐसा कर सकता है! 'पति पामर' इस शब्द के साथ ही उसके अन्तस् की कोई शक्ति उसे धिक्कारती थी। जैसे उसे अपने पति को ऐसा नहीं कहना चाहिए।

इसी तरह वह उद्विग्न और तारतम्यहीन विचारों में पड़ी रहती थी।

रात के चार बजे थे।

फतह के कमरे में प्रकाश था।

वह अपने कमरे में बहुत पहले उठ गया था।

पद्म ने उसके कमरे की ओर देखा। वह उस ओर गई। शीशे से अपना मुंह सटाकर देखा—वे कागजात में तन्मय हैं। हाय रे पैसा!

वह वापस लौटकर आ गई और श्रीनाथजी के चित्र के सम्मुख बैठ गई। वह प्रभु से अपने अपराधों के लिए क्षमा मांग रही थी। उसके अधर उसके नामोच्चारण के लिए तड़प उठे।

कदाचित् फतह ने रात की नीरवता में पद्म के पांवों की आहट सुन ली हो। वह पीछे-पीछे आकर बोला, "संतोष की मां!"

वह चौंक पड़ी। घूमकर देखा—फतह खड़ा है। उसने कमरे में प्रकाश किया।

"तुम रात-रात-भर सोती नहीं हो। क्या बात है? क्यों अपने-आपको मार रही हो?"

"मुझे नींद नहीं आती।"

"अर्थहीन चिंताओं में तड़पने से क्या होगा?" फतह थोड़ा गंभीर हो गया, "मैं जानता हूं, तुम्हें दुःख है। तुम्हारे सीने पर आग भी हो सकती है। किन्तु किसी घटना को सदा स्मरण रखकर सम्पूर्ण जीवन का विनाश करना कोई बुद्धिमानी नहीं है। यह मूर्खता है। मैं तुम्हें कहता हूं—अतीत को विस्मृत कर दो। नवीन को आधार बनाओ। परिवर्तन शब्द की रचना ही इसीलिए की गई है।"

"क्या एक स्त्री यह भूल सकती है कि वह पतित है?" वह एकदम तेज स्वर में बोली, "जब उसका सारा जीवन धार्मिक रीति-रिवाजों में व्यतीत हुआ है। जब उसे रात-दिन पाप की आकृतियां काटती रहती है।"

"उसे भूलना ही चाहिए। मुख्यतः तुम्हें, क्योंकि तुम्हारे सुख के दिन अभी ही आए हैं।"

"आप जिसे सुख कहते हैं, वह मेरे लिए चरम दुःख है।"

"ओह! मैं तुम्हें समझाकर क्या पाता हूं? केवल अपने समय को ही बर्बाद करता हूं। तुम अपनी मनोवृत्ति का किंचित् भी परित्याग नहीं कर सकतीं। तुम इस कलिकाल में सतियों के आदर्शों का मूल्य लेकर जीवित रहना चाहती हो, यह सर्वथा मूर्खता है, मूर्खता।"

कमरे में सन्नाटा छा गया।

फतह वहीं पलंग पर लेट गया। वह अपने-आप बड़बड़ाने लगा, "एक लाख का सौदा कर लिया है। ईश्वर मुझे इस सौदे में सफल कर दे। मैं उसे पोशाक पहनाऊंगा। सचमुच, इस सौदे ने मुझे रात-भर सोने नहीं दिया है। एक लाख का मुनाफा हो सकता है। यह चांदी का सट्टा भी क्या बला है, आदमी का भाग्य उसका साथ दे तो वह एक दिन में लाखों रुपया कमा सकता है।"

"वह आदमी का चैन और आराम भी छीन लेता है।" पद्म बोली।

"यह सही है।" वह कुछ रुककर बोला, "मेरे सिर में दर्द है।"

पद्म उसके समीप आ गई। उसने फतह का सिर दबाना शुरू कर दिया। फतह ने एक बार प्यास-भरी आंखों से पद्म के मुख की ओर देखा। उसका मन करुणा से भर आया किन्तु उसने मन ही मन कहा, "बेवकूफ !"

और उसने पद्म को अपनी ओर खींच लिया।

"ठहरो, मुझे बत्ती बुझाने दो।"

बाहर गिर्जे की घड़ी टन्-टन् करके पांच बजा रही थी।

फतह ने चांदी की जो तेजी लगाई थी, उस तेजी का शुभ संवाद सवेरे-सवेरे जैसे ही बाजार खुला, वैसे ही सम्पत ले आया। यह सम्पत वही सम्पत है जो आज सेठ की कोठी में पागलों की तरह प्रलाप करता है और अफीमची होने के कारण अधिक बोलने की उसकी आदत बन गई है। वह चांदी-बाजार का दलाल है। अपने फन में लोगों में वह उस्ताद के नाम से ही पहचाना जाता है।

सट्टे को लेकर उसकी भेंट फतह से कई बार हो गई थी और कल फतह ने उसे अपना सौदा दे दिया था, जिसके फलस्वरूप फतह को लगभग एक लाख रुपये का लाभ हुआ था।

फतह (जिसे अब बड़े बाबू कहना ही उत्तम रहेगा क्योंकि आजकल उसकी प्रसिद्धि इसी नाम से अधिक हो रही है) ने मधुर मुस्कान से उसका स्वागत किया।

"बड़े बाबू, आपका ही अनुमान ठीक निकला। चांदी तेज़ हो गई।"

बड़े बाबू की आंखें चमक उठीं। उनकी इच्छा हुई कि वे पद्म को जाकर कहें कि आज मैंने लाख रुपये कमाए हैं पर उनका मन का उत्साह मन में ही रह गया। 'पद्म निर्जीव मछली है, उसे किसी घटना से कोई दिलचस्पी नहीं। सूखे सरोवर की तरह उसकी काया नीरस है।' उन्होंने मन में सोचा और कृत्रिम मुस्कान के साथ बोले, "अगर तुम मेरा काम सम्भाल लो तो मैं तुम्हें अपने

यहां रख सकता हूं।"

"पर ?"

"पर क्या ?"

"केवल नौकरी से पार नहीं पड़ता।"

"दलाली तुम्हारी अलग से रहेगी पर तुम्हें केवल मेरा ही सौदा करना पड़ेगा। तुम यह अच्छी तरह जानते हो कि मैं एक बार इस बाज़ार को हिलाकर रख सकता हूं।" उन्होंने एक पल के लिए नेत्र बंद किए जैसे वे ईश्वर की प्रार्थना कर रहे हों, फिर नेत्रोन्मीलन करके बोले, "मैं इसे ईश्वर की कृपा समझता हूं। बन्दा उसके बिना क्या कर सकता है। यह सही है कि आजकल मेरा अनुमान खूब ठीक रहता है। मैं चाहता हूं, तुम मेरा काम संभाल लो। मैं तुम्हें घाटे में नहीं रहने दूंगा।"

"जैसी आपकी मर्ज़ी ?"

"तनखा के बारे में चिंता न करना।"

"नहीं, जब आपने कह दिया है तब चिंता की बात रह ही नहीं जाती।"

"अच्छा, तुम जाओ, मुझे पूजा आदि करनी है।"

सम्पत चला गया।

सम्पत भी जाति का वैश्य था। वर्षों से वह सट्टा बाजार में काम करता था। परिवार में उसकी एक बेटी थी जिसका वह विवाह कर चुका था। पत्नी का चार वर्ष पहले देहान्त हो गया था। पर उसने दूसरा विवाह नहीं किया। हालांकि उसके सामने कई दलाल आए थे जिन्होंने चार-पांच हज़ार में बेटियां बेचनेवालों से सौदा तय कराने का आश्वासन दिया था। किंतु उसने स्वीकार नहीं किया। क्योंकि वह जानता था कि इस उम्र में विवाह करना उचित नहीं है। पर निःसन्तान होने की वजह से कभी-कभी उसका मन एकांत से घबरा जाता था और तब उसके मन के एक वीराने कोने-से विवाह करने की इच्छा जागरित हो जाती थी।

उसकी पोशाक साधारण होती थी। सिर पर पगड़ी, कुर्ता, धोती। सर्दी के मौसम में बन्द गले का कोट। वह अत्यन्त मितव्ययी था। पर उसे पान खाने

की आदत थी जिसके कारण उसके दांतों पर पीला-पीला मैल जम गया था। उसका रंग मुश्की था और उसकी आंखों में एक नशा रहता था जिसके बारे में लोगों की धारणा थी कि वह अफीम का नशा करता है। लोगों का यह अनुमान भी है कि उसके पास काफी पैसा है पर वह कंजूसीवृति के कारण भी मटमैले कपड़ों में रहता है और शादी नहीं करता है। क्योंकि शादी करके वह अपनी जमापूंजी को बरबाद करना नहीं चाहता। उसे डर है कि कहीं वह बुरी बीवी के कारण कंगाल न हो जाए।

दोपहर को जब वह 'लक्ष्मी मिल्स' में बड़े बाबू से मिला तब वह कुछ अच्छी पोशाक में था। उसने दो घोड़ा बोसकी का चमकदार कुर्ता पहन रखा था और उसकी जूती भी नई थी।

बड़े बाबू ने उसे कुछ देर तक बाहर बिठाकर रखा क्योंकि वे अपने वकील से बातचीत कर रहे थे। वैसे बड़े बाबू ने अपनी ओर से मिल का नाम बदल दिया था और उन्होंने सबको हिदायत भी दे दी थी कि वे इस मिल को लक्ष्मी मिल्स के नाम से ही पुकारें। हालांकि कानूनन स्वीकृति आने में दो-चार दिन की अभी और देर थी।

वकील के जाते ही सम्पत ने कमरे में प्रवेश किया।

ऊंची गद्दी पर स्फटिक-सी चादर चमक रही थी। बड़े बाबू कुछ कागजातों को एक लाल कपड़े के बस्ते में बांध रहे थे।

सम्पत हाथ जोड़कर बैठ गया।

"क्यों, तुमने क्या निर्णय किया ?"

"मैं आपके हुक्म को कैसे टाल सकता हूं ?" उसने विनीत स्वर में कहा, उसके चेहरे पर कोमलता नाचने लगी।

"ठीक है। तुम चांदी बाज़ार जाओ। मैं घंटे-दो घंटे में आऊंगा। वैसे तुम अपनी मर्जी से सौ-पचास पेटी का सौदा कर सकते हो।"

सम्पत उठकर जाने लगा।

"सुनो।" बड़े बाबू ने उसे बैठने का संकेत किया, "मैंने सुना है कि तुम्हारे कोई लड़का नहीं है।"

"आपने ठीक सुना है।"

"बीवी भी तुम्हारी मर चुकी है।"

"जी।"

"फिर दूसरा विवाह क्यों नहीं करते ?"

"अब इस उम्र में······?"

बड़े बाबू खिलखिलाकर हंस पड़े, "अरे मर्द कैसा बूढ़ा ? साठा सो पाठा। वह साठ वर्ष तक बूढ़ा नहीं होता। सम्पत ! मुझे तुम्हारी यह आदत पसंद नहीं है। घर में लक्ष्मी न हो, वहां लक्ष्मी कैसे आएगी ? घर में एक भी लड़का न हो, उस आदमी का परलोक कैसे सुधरेगा ? मेरी सलाह मानो तो विवाह कर लो।"

"लेकिन लड़की ?"

"लड़कियों की हमारे समाज में कौन-सी कमी है ? कोई न कोई दे ही देगा। अगर यह संभव न हो तो रुपये देकर विवाह कर लो। इस देश में बेटियां बेचने-वालों की कमी नहीं है ? रुपया ठनकाओ और सुन्दर लड़की पाओ।"

"इसपर मैं सोचूंगा।"

कहकर वह चला गया।

बड़े बाबू अपने काम में व्यस्त हो गए। अभी एक घंटा नहीं बीता था कि जमादार ने आकर बताया, "भगत बाबू आपसे मिलना चाहते हैं।"

"उन्हें भेज दो।"

भगत ने कमरे में प्रवेश किया। बड़े बाबू ने ऊपरी शिष्टाचार से पूछा, "आज तुमने मुझपर कैसे कृपा की ?"

भगत बाबू ने विगलित स्वर में कहा, "मैं तुमसे अंतिम बार यह पूछने आया हूं कि मुझे मेरी मिल वापस करोगे या नहीं ?"

"ठंडा पानी मंगवाऊं ?"

"मुझे प्यास नहीं है।"

"प्यास के लिए नहीं। मिजाज को ठंडा करने के लिए।"

"इतनी बड़ी ठोकर खाने के बाद मिज़ाज में गर्मी नहीं रहती।"

"तुम्हारे स्वभाव से ऐसा ही लगता है।"

"तुमने मेरा स्वभाव देखा था। फतह ! अगर मुझे पूरी मिल नहीं देना चाहते तो मत दो पर उसमें मेरा आधा हिस्सा ही रख लो।"

"तुम जा सकते हो। अभी मैं आवश्यक काम में व्यस्त हूं। इन फालतू बातों के लिए मेरे पास वक्त नहीं है।"

भगत ने होंठों को काटते हुए कहा, "तुम आदमी हो या शैतान ? किसीकी चीज़ को हड़पकर तुम उसके साथ इस तरह का व्यवहार करते हो ? मैं कहता हूं कि मैं तुम्हारे सारे भेद सबको बता दूंगा।"

"मेरे भेद ?" उसने चौंककर पूछा।

"हां, हां ! मैं लोगों को कहूंगा कि यह बड़ा कमीना है। इसने छल से यह मिल मुझसे हड़प ली। इसने अपनी पत्नी को मुझे मोहने के लिए भेजा।"

"भगत !" वह चीखकर बोला, "मैं तुम्हें यहां से धक्के मारकर निकाल दूंगा। यह मत भूलो कि इस मिल का मालिक अब मैं हूं, मैं !"

बड़े बाबू की आंखों में आग-सी दहक उठी।

"मालिक !" भगत ने इस शब्द को घृणा से दोहराया और उसके भावों से लग रहा था कि वह बड़े बाबू के चेहरे पर थूकनेवाला है। बड़े बाबू उसकी आंखों की तपन नहीं सह सके। वस्तुतः ईमानदारी का अपना एक पृथक् तेज होता है। उस तेज को चोर नहीं सह सकता।

"मालिक ! मालिक !" उसने मुट्ठियां बांधते हुए कहा, "तुम कुत्ते हो, कुत्ते !"

"भगत !"

"तुम मुझे धक्के मारकर निकाल सकते हो। धक्के नहीं, जूते मारकर जलील भी कर सकते हो, पर मैं अब चुप नहीं रहूंगा। मैं सब कुछ हारकर अपनी ज़बान बन्द नहीं करूंगा। मैं हरएक से कहूंगा कि इसने मेरे साथ कितना कमीना और कपटी व्यवहार किया है।" भगत ने दीवार का सहारा ले लिया। उसकी आंखें भर आईं। वह इतना उत्तेजित हो गया था कि उसे सारा कमरा घूमता हुआ लगा।

"तुमने अगर यहां से जलील होकर जाने की ठान ली है तो मैं कुछ भी नहीं

कर सकता । मैं अभी नौकरों को बुलाऊंगा और तुम्हें यहां से धक्के मारकर बाहर निकलवा दूंगा ।" बड़े बाबू ने द्वेषपूर्ण भारी स्वर में कहा ।

"आज मैं धक्के खाकर ही जाऊंगा ।" वह बच्चे की तरह अकड़कर धम् से बैठ गया । उसकी भंगिमा उस आदमी से मिलती थी जो अत्यन्त दुर्बल होने की वजह से मार खाता है और आसपास की भीड़ से सहानुभूति की अपेक्षा करता है । वह जानता था कि दफ्तर के कुछ लोग इकट्ठे होंगे और यह तमाशा देखेंगे और मैं जोर-जोर से चिल्लाऊंगा कि यह धोखेबाज है, धोखेबाज ! नीच और कमीना है ।

कुछ देर तक शांति रही ।

भगत दीवार के सहारे सिर लगाकर बैठ गया । तेल का हल्का-सा दाग तुरन्त दीवार पर चमक उठा ।

बड़े बाबू पुनः अपने कागजों पर नजर जमाकर इस तरह अपने कार्य में व्यस्त हो गए जैसे कुछ हुआ ही न हो । हालांकि उसका मन किंचित् भी अपने काम में नहीं लग रहा था पर उनका अभिनय अत्यन्त कौशलपूर्ण था । कुछ क्षण तक उन्होंने भगत के बैठे रहने की कुछ परवाह नहीं की । भगत बैठा रहा । उसकी आंखों के आंसू सूखकर गालों पर हल्की लकीरें बना गए थे ।

अप्रत्याशित बड़े बाबू ने नौकर को पुकारा और उसपर वक्र दृष्टिपात करके कहा, "जब यह यहां से चला जाए तब तुम कमरे को बन्द कर देना । हां, इतना याद रखना कि यह इस मिल का अब कुछ भी नहीं है । यहां एक पैसे की चीज पर भी इसका कोई अधिकार नहीं है । बस, बेचारा घड़ी-दो घड़ी यहां की दीवारों को देखकर सुख पाना चाहता है ।"

बड़े बाबू बाहर चले गए ।

उनके जाते ही भगत की भंगिमा एकदम कठोर हो गई और उसके दोनों नेत्रों में रक्त की लालिमा चमक उठीं ।

"ओह ! यह कितना दुष्ट है !" भगत ने मन ही मन कहा ।

बड़े बाबू वापस भीतर आए और बोले, "सम्पत आए तो कहना कि मैं उसे बाजार में ही मिलूंगा ।" और तभी उन्होंने एक उड़ती नजर भगत पर

डाली और दुष्टता से मुस्करा पड़े।

भगत की काया में आग-सी लग गई।

वह उठा और बड़े बाबू के पास आया। बड़े बाबू ने मधुर स्वर में कहा, "अगर तुम चाहो तो मैं तुम्हें रास्ता दिखा सकता हूं।"

"मैं इस मिल का रास्ता तुमसे अधिक जानता हूं।" कहकर वह वहां से चला गया। मिल के मुख्य दरवाज़े के आगे वह क्षण-भर के लिए खड़ा रहा। उसने एक बार तमाम मिल को प्यासी-प्यासी नज़र से देखा जैसे वह अभी-अभी गांव से लौटा हो और इतनी विशाल इमारत व मशीनों को जीवन में पहली बार देख रखा हो। एक पल उसकी आंखों में विस्मय-मिश्रित औत्सुक्य जागा जो शीघ्र ही उन्हीं आंखों में घोर घृणा में बदल गया। उसने कई बार ज़ोर से थूक दिया—थू—थू—थू!

"भगवान! इस मिल को जलाकर राख कर दे।" उसने जलते हृदय से ईश्वर से प्रार्थना की जिसमें उसके हृदय की गहरी घृणा ही थी।

तभी उसे सुनाई पड़ा, "बेचारा सब कुछ हारकर हृदय की शांति खो बैठा है।" यह बड़े बाबू का कथन था जिसपर भगत ने एक बार और थूका।

बड़े बाबू ने अपने कमरे से ही परेशानी के स्वर में कहा, "अरे सब मर गए क्या? बच्चा क्यों रो रहा है?"

नौकर आकर खड़ा हो गया।

"जाकर देख तो गोपू, यह धाय गोमा मर गई क्या? बच्चा इस तरह रो रहा है मानो उसे किसीने तपती रेत पर सुला दिया हो।" बड़े बाबू का स्वर अन्त में थोड़ा व्यग्र हो गया।

"धाय स्नान करने गई है बड़े बाबू।"

"बहूजी को जाकर कहो कि वह अपने बेटे को संभाले। मुझे बच्चे का रोना पसन्द नहीं है।"

गोपू थोड़ी देर में वापस आ गया और बोला, "बड़े बाबू, बहूजी के सिर में दर्द है। वे अपने कमरे में पड़ी हुई हैं।"

"इसके सिर का दर्द सबके सिर का दर्द बन रहा है।" कहकर बड़े बाबू उठे और बाहर की ओर चले।

दोपहर का प्रकाश खूब फैल गया था। गर्मी का सूर्य अपनी प्रखरता से चमक रहा था जिससे उमस-भरा वातावरण लगता था। थोड़ी दूर पर बादल के दो-चार टुकड़े तैर रहे थे। बड़े बाबू ने उन्हें देखा और मन ही मन कहा, 'वर्षा की संभावना है।'

वे पद्म के कमरे तक पहुंचे। दरवाजा उढ़काया हुआ था। उन्होंने हाथ से दरवाजा खोला। सारी खिड़कियां बन्द थीं और कमरे में धुंधलका छाया हुआ था। आलोक की क्षीण झलक खिड़कियों के पास की दरारों में अपना प्रभाव बता रही थी। पलंग पर पद्म मुर्दे की तरह सोई हुई थी।

"संतोष की मां !" कहते हुए बड़े बाबू उसके पास आए।

पद्म ने आंखें खोलने की चेष्टा की पर वह सफल नहीं हुई। उसने पुनः आंखें बन्द कर लीं।

बड़े बाबू को यह उसकी धृष्टता लगी। उन्होंने दीवार पर लगी भगवान श्रीकृष्ण की तस्वीर पर नजर जमाते हुए कहा, "क्यों ? मैं जो कुछ कह रहा हूं, वह तुम्हें सुनाई पड़ रहा है !"

बड़े बाबू उसके और निकट आए और उन्होंने पद्म को छूआ। चौंककर उन्होंने कहा, "अरे तुम्हें तो बुखार है।"

पद्म ने एक बार फिर देखा और वह टूटते हुए स्वर में बोली, "मुझे बुखार नहीं है, सिर में हल्का-हल्का दर्द है।"

कमरे में लटकते हुए झाड़-फानूसों पर प्रयोजनहीन दृष्टि डालते हुए बड़े बाबू ने कहा, "तुम पागल हो गई हो, इतने जोर से बुखार है और तुम उसे छुपा रही हो ? यह सर्वथा अनुचित है। मैं अभी डाक्टर को बुलाता हूं। गोपू ओ गोपू, अपने छोटे बाबू हैं न, अरे अपने वे डाक्टर साहब, उन्हें भागकर बुला ला।"

वह बाहर गया और वापस लौटकर बोला, "सम्पत बाबू आपका इन्तजार

कर रहे हैं ?"

"उन्हें बैठक में बिठाओ। मैं अभी आया।"

गोपू चला गया।

कमरे में सन्नाटा छा गया।

पद्म ने सन्नाटे को चीरते हुए कहा, "मुझे कोई बुखार-वुखार नहीं है। सिर में ज़रा-सा दर्द है। देखो, दरवाज़े का पर्दा लगा दो। मुझे प्रकाश अच्छा नहीं लगता। इस अंधेरे में मुझे हार्दिक शांति मिलती है। ऐसी शांति जिसमें संतोष होता है।"

"इसी अन्धेरे में पड़े-पड़े तुमने अपनी सेहत को खराब कर लिया है। आखिर तुम चाहती क्या हो ?"

"मैं कुछ भी नहीं चाहती। मुझे सब कुछ प्राप्त है। मोटरों से लेकर बाड़ियां तक। मेरी सब इच्छाएं पूरी हो गईं। शेष के रूप में एक ही इच्छा है !"

"क्या है ?"

"मरने की। ईश्वर मुझे अब उठा ले बस।"

बड़े बाबू के स्वर में करुणा से ओतप्रोत झुंझलाहट आ गई, "इस मरने की कामना ने तुम्हें सचमुच अधमरा कर दिया है। मै कहता हूं कि तुम्हें ठाट-बाट से जीना चाहिए। मुझे तुमने दुखी कर दिया है।"

"आपको दुःख न हो, इसलिए मैं मरना चाहती हूं। आप मेरे बाद दूसरा विवाह कर लीजिएगा ; मुझे इससे असीम शांति मिलेगी।"

"बड़े बाबू।" नौकर ने बीच में आकर कहा।

"आया सम्पत !" कहकर बड़े बाबू पद्म की बात को सुने बिना ही बाहर चले गए।

पद्म का मन तड़प उठा। वह बैठी-बैठी सोचने लगी, 'उसके पति बहुत अविश्वासी हैं। वे किसीका भी विश्वास नहीं करते। कभी इन्होंने अपनी मां को नहीं बुलाया। ये समझते हैं कि भगत की मां की तरह उनकी मां भी लाखों रुपये दबाने की चेष्टा करेंगी। मुझे भी यही कहते हैं कि जो ज़रूरत हो उसे पूरा कर लिया करो। मुझे यह कभी न पूछो कि यह रुपया कहां से,

किधर से और कैसे आता है ?······ये व्यापारिक बातें हैं जो स्त्रियों की समझ में जल्दी नहीं आतीं। स्त्रियों को केवल सुख व समृद्धि का जीवन बिताना चाहिए। उसकी कामना करनी चाहिए। फिर उनके स्नेह, प्यार और ममता में केवल कृत्रिमता है। उनमें स्वाभाविक प्रेम और अपनत्व नहीं। ओह! वे कितने स्वार्थी और चालाक हैं !'

पद्म ने एक करवट बदली।

धाय संतोष को लेकर कमरे में आ गई।

संतोष सिसकियां भर रहा था। उसके निरन्तर अश्रुस्राव से गाल भीग गए थे। वह बहुत उदास-उदास-सा नजर आ रहा था।

"पता नहीं, यह बहुत रो रहा है !" धाय ने संतोष को उसके पास बिठाते हुए कहा, "घड़ी-भर के लिए यह चुप नहीं रहता।"

पद्म ने करवट बदलते हुए कहा, "इसे थोड़ी देर के लिए बाहर घूमा ला, मुझे अभी बुखार है।"

"मां !" उस बच्चे ने कहा जो अब दो-ढाई वर्ष का होने जा रहा था। जब उस बच्चे ने मां कहा तब कमरे के अंधेरे में ममता का अलौकिक वातावरण आच्छन्न हो गया जिसे जादुई कह सकते हैं।

"मां ! मैं तुम्हारे पास सोऊंगा।"

पद्म के अन्तस् के तार-तार झनझना दिए हों ऐसा उसे लगा। आखिर यह निर्दोष बच्चा मां की ममता से क्यों वंचित हो रहा है ? इसका क्या कसूर है ? इसने कौन-सा अपराध किया है ? वह अवश हो उठी और उसने चाहा कि वह इस बच्चे को अपने सीने से लगा ले। पर वह ऐसा सोचती ही रही। वह उसे कार्यान्वित नहीं कर पाई हालांकि अभी वह क्षणिक भावावेश में सम्पूर्ण रूप से यह भूल बैठी थी कि यह बच्चा भगत का है। पर तत्क्षण पीड़ा का एक गहरा धक्का उसे लगा और उसके आगे अन्धेरे के बादल छा गए।

धाय बच्चे को लेकर चलती बनी।

कमरे में गहरा मौन छा गया।

दूसरी नौकरानी रखड़ी जल्दी-जल्दी कमरे में आई और कुर्सी रखने लगी

क्योंकि डाक्टर साहब आ रहे थे।

डाक्टर साहब ने जैसे ही कमरे में प्रवेश किया वैसे ही पद्म जोर से खांसने लगी। खांसी की खूं खूं से कमरे का वातावरण अप्रिय और असह्य हो उठा क्योंकि खांसी के साथ पद्म के चेहरे पर दारुण दुःख छा गया। उसकी आंखें लाल हो उठीं और उनमें जबर्दस्ती के आंसू भर आए। लगता था—उसके प्राण इस खांसी के साथ निकल रहे हैं जिससे उसकी आकृति और ढलता हुआ यौवन विकृत हो गया। उसका व्यथा-विकृत मुख सबके लिए असह्य हो गया।

छोटे बाबू यानी डाक्टर एक कुर्सी पर बैठ गए। कुर्सी पर महीन कारीगरी की हुई थी जो नवाबों की याद दिला रही थी।

छोटे बाबू ने मुआयना किया और कफ को देखा जो एक पीकदान में इकट्ठा था। खून सफेद-पीले कफ में अपना अस्तित्व पृथक् रूप से बता रहा था।

डाक्टर भयभीत हो गया।

उसने पद्म से पूछा, "शरीर इस तरह हर समय जलता रहता है ?"

"हां !"

"खांसी कितने रोज से आ रही है ?"

वह कुछ कहने के लिए आतुर दीखी पर उसकी भंगिमा से लगा कि उसने उसे जब्त कर लिया है। वह मन ही मन आखिर कह ही उठी, 'जब मेरे पति ने मुझे चरित्रहीन होने के लिए विवश किया। मुझे पर-पुरुष के साथ सोने के लिए बहुत ही कलात्मक ढंग से बाध्य किया।' पर प्रकट रूप में वह बोली, "बहुत अर्से से आती है। लगभग दो वर्ष से।"

"और मुझे आपने आज बताया है।"

"मैंने कहां बताया है, इन लोगों ने आपको बता दिया। मैं किसीको बताना नहीं चाहती थी।" उसने निर्भीकता से कहा।

"इसका मतलब यह है कि आप मुझे अभी भी बताना नहीं चाहती थीं ? आप क्या अपने-आपको जानबूझकर मारना चाहती हैं ?"

उसकी आंखों में उन्मादित प्राणियों का उल्लास चमक उठा, "काश यह सब आदमी के अपने वश में होता ! क्या डाक्टर साहब ! आदमी इतना समर्थ

है कि वह अपने-आपको इस तरह मार सकता है कि लोगों को यह पता ही नहीं चले कि उसने आत्महत्या की है ?"

डाक्टर हतप्रभ-सा उसे देखने लगा।

रखड़ी ने दो खिड़कियां खोल दी थीं। डाक्टर ने क्षण-भर के लिए पद्म के अद्भुत रूप को देखा। तीखे नयन और शुक-नासिका। क्षण-भर के लिए डाक्टर का मन स्नेहप्लावित करुणा से भर आया और वह उस रूप का इस तरह पान करता रहा जैसे हम मूर्तिकार खास्तगीर की अनिंद्य सुन्दर नारी-कलाकृति की अलौकिकता का रसपान करते हैं।

"मुझे प्रकाश भी अच्छा नहीं लगता।" निर्निमेष देखते हुए डाक्टर का ध्यान पद्म ने भंग कर दिया, अन्धेरा मुझे असीम शांति देता है। मेरा मन करता है कि मैं इस अन्धेरे में पड़ी रहूं—सोई रहूं। मेरे पास कोई न आए और कोई मुझे तंग न करे। पर यहां हर कोई यह कोशिश करता है कि मुझसे अधिक पूछताछ करके यह साबित करे कि वह मेरी कितनी चिंता-फिक्र रखता है। उन लोगों में थोड़ी भी सहानुभूति नहीं होती है केवल दिखावा होता है। मैं चाहती हूं कि ये सब बिना आवश्यक बात के मेरे पास कभी न आएं !"

डाक्टर एक बार विस्मित हो गया।

"मुझे चैन नहीं है।" वह पुनः बोली, "पलभर के लिए भी मुझे गहरी नींद नहीं आती।"

"आप ज़रूरत से ज़्यादा सोचने लगी हैं। मैं आपको सलाह दूंगा कि आप अपने मन और तन दोनों को विश्राम दें।"

"लेकिन..."

"मैं आपको ठीक कर दूंगा।" डाक्टर के स्वर में सारी सहानुभूति उमड़ पड़ी "यह ज़रा-सी खांसी है।"

डाक्टर चला गया था। जाते-जाते डाक्टर ने कहा था, "बड़े बाबू को कहिएगा कि वे मुझसे एक बार ज़रूर कल मिल लें।"

पद्म कुछ देर तक रखड़ी को देखती रही और फिर वह तेज़ स्वर में बोली, "खिड़कियां बन्द कर दो।"

कमरे में अन्धेरा छा गया।

बड़े बाबू रात को बड़ी देर से लौटे। उन्हें एक नई मिल और खरीदनी थी, उसके लिए उन्हें लाखों रुपयों की आवश्यकता थी। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए वे अपनी कई पार्टियों से प्रारंभिक बातचीत कर चुके थे।

सम्पत के लगातार साथ रहने के कारण वे समझ गए थे कि सम्पत के पास हो न हो, दो लाख रुपये नकद अवश्य हैं। उसकी कंजूसी से यह स्पष्ट पता चलता था कि वह एक चतुर व्यापारी है जो पैसों को इस तरह हजम करता है जिस तरह यज्ञ की भभकती लपटें आहुतियों को। इसलिए बड़े बाबू ने उसे गत पूरे दिन अपने साथ रखा और उसकी भेंट एक ऐसे आदमी से कराई जो अत्यन्त गरीब था और विवशता के वशीभूत होकर वह अपनी बेटियों को बेचना चाहता था। वह आदमी उसीकी जाति का था और समाज से एकदम वहिष्कृत था। उसके साथ न कोई खाना खाता था और न कोई उसके हाथ का पानी पीता था। उस आदमी ने सम्पत की बड़ी तारीफ की थी। तारीफ में उसने यहां तक कहा कि आप राजकुमार-से लगते हैं।

सम्पत बड़े बाबू से आयु में पांच वर्ष छोटा था। उसका मुख भी आकर्षक नहीं था। इसपर तेल से भीगे हुए पगड़ी के निचले पेंच बड़े ही हास्यास्पद लगते थे।

बड़े बाबू ने उसका पीछा नहीं छोड़ा और अन्त में उससे शादी के लिए हां भरवा ली।

इसके बाद दिन-भर उसे इधर-उधर के बड़े-बड़े सेठों से वे मिलाते रहे। और रात को उसे इस तरह का अहसास कराया जैसे वह बहुत बड़ा आदमी है और बड़े बाबू उसे अपना सगा भाई ही समझते हैं। उसे अपना ही खून मानकर चलते हैं। उसे उन्होंने अपने साथ खाना भी खिलाया। वह गर्व से फूल उठा। इस बड़प्पन में उसने इस राज़ को फाश कर दिया कि उसके पास एक

लाख साठ हज़ार रुपये हैं। बड़े बाबू ने तब उसकी सामंतीकाल के चारणों की तरह बड़ाई की और उसे अपना हेड मुनीम बनाया क्योंकि उन्होंने अपने मामा को कोई भी ऐसी लिफ्ट नहीं दी जिससे उसका सिर सातवें आसमान पर चढ़ जाए। वे जानते थे कि घर के किसी भी आदमी को थोड़ा भी सिर चढ़ाने से वह रुपया निश्शंक होकर हज़म करने लगता है।

बड़े बाबू के द्वारा इतनी प्रतिष्ठा पाकर वह फूला नहीं समाया और उसने तुरन्त डेढ़ लाख रुपये बड़े बाबू को दे दिए।

उस रात बड़े बाबू बड़े ही आराम से सोए।

सुबह हो गई।

गिर्जे ने सात का घंटा बजाया। सूर्य की नाचती हुई किरणें ऊंची-ऊंची बाड़ियों के ऊपरी मंज़िलों को चूम रही थीं। बड़े बाबू के निकटवर्ती बंगाली राजा की बाड़ी से सितार की मादक ध्वनि आने लगी थी।

यह सितार की अमृतमयी ध्वनि-लहरें पद्म के आत्मलोक में असीम शांति प्रदान करती थीं। वह दत्तचित्त होकर उसे सुना करती थी। वह कुछ क्षण के लिए यह भूल जाती थी कि वह पूजा कर रही है। वही सदैव शाश्वत संगीत-लहरी और उसकी तन्मयता।

तभी बड़े बाबू ने कमरे में प्रवेश किया। उनके साथ रखड़ी थी। रखड़ी सिर झुकाए खड़ी थी।

"तुमने फिर स्नान कर लिया?" बड़े बाबू ने पूछा।

"स्नान किए बिना मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता।"

"लेकिन तुम्हें बुखार आ रहा है।"

"बुखार आया है सो चला भी जाएगा।"

"लेकिन तुम्हें...?" बड़े बाबू चुप हो गए, "तुम आखिर चाहती क्या हो? इस तरह अपने को सताने से तुम्हें क्या मिलेगा?"

वह अपने पूजा के श्रीनाथजी के चित्र पर दृष्टि जमाकर बोली, "मैं किसीको भी नहीं सताती। हर कोई मुझे सताता है। मैं इस एक कोने में शांति और संतोष से पड़ी रहती हूं और तुम सभी लोग मुझे परेशान करते रहते हो। ज़रा-

सी खांसी आ गई तो तूफान, ज़रा-सा शरीर जला तो तूफान। मैं आप लोगों को पूछती हूं कि छोटी-छोटी बातों को आप इतना महत्त्व क्यों देते हैं ?" वह उत्तेजित हो गई और उसका अंग-अंग कांपने लगा।

बड़े बाबू किसी सत्य को छुपाकर क्रोध-भरे स्वर में बोले, "तुम अपनी आत्मपीड़ा में औरों को क्यों भागी बनाती हो। प्राणी को इस तरह रिस-रिसकर मरने से अच्छा है कि वह एकदम मर जाए।"

"आप जहर लाकर दे दीजिए। मैं उसे खुशी-खुशी खा लूंगी।"

"संतोष की मां !" बड़े बाबू चीख पड़े। रखड़ी के मन में उस डांट से सन्नाटा छा गया।

"मुझे अपनी हालत पर छोड़ दीजिए। मैं बहुत सुखी हूं। मुझे किसी तरह की तकलीफ नहीं है। मैं आनन्दित हूं, आनन्दित।" कहते-कहते उसकी आंखें भर आईं।

"फिर मरती रह।" कहकर बड़े बाबू बाहर चले गए।

वे अभी गुसलखाने में पहुंचे भी नहीं थे कि नौकर ने आकर कहा, "तार आया है।"

"किसका है ?"

"मैं····।"

"ओह ! मैं भी कैसा अहमक हूं।" कहकर उन्होंने तार खोलकर पढ़ा। "मां आ रही है—कल सुबह।" बड़े बाबू का मुंह उतर गया। उन्होंने तार नौकर को संभलवा दिया। वे अत्यन्त निरुत्साहित हो उठे थे।

मां आएगी। उससे दस-बीस हज़ार रुपये मांगेगी। उनकी बातें जानना चाहेगी। तब उन्हें भगत की मां की याद आ गई। सचमुच जब पैसों का सवाल आता है तब अपने से अपने आदमी पराए हो जाते हैं। पर वे अपनी मां को दो-चार हज़ार से अधिक रुपये नहीं देंगे।

स्नान वे कर चुके थे। बाहर आए। वे किसी मंत्र का जप कर रहे थे।

सम्पत बाहर बैठा ही था। उसे देखते ही बड़े बाबू विहंसकर बोले, "क्या आप नथमल से मिले थे ?" बड़े बाबू अब उसे आदर से सम्बोधित करते थे।

एक सम्पूर्ण रात्रि में बड़े बाबू के व्यवहार में बहुत अन्तर आ गया।

"मुझे पचीस हजार रुपये वापस चाहिएं।" उसने इस तरह कहा जैसे वह देर से ऐसा सोच रहा हो। जैसे वह प्राथमिक कक्षा में पढ़नेवाले छात्र की तरह इस वाक्य को बहुत देर से मन ही मन दुहरा रहा हो ताकि वह परीक्षक के समक्ष एकाएक भूल न जाए।

"क्यों?" बड़े बाबू की भृकुटी तन गई।

"मुझे अपनी बेटी को देने हैं। मैंने उसे वचन दे रखे हैं।"

उसका इतना कहना था कि बड़े बाबू एकदम घूमकर बोले, "तो क्या तुम मेरी प्रतिष्ठा भरे बाजार खराब करना चाहते हो? मैं वे सारे रुपये अभी-अभी सेठ शिखरचंद को देकर आया हूं। अभी वे रुपये किसी शर्त में भी वापस नहीं आ सकते।"

"आप अपने पास···"

बीच में ही बड़े बाबू आह छोड़कर बोले, "तुम्हें कदाचित् पता नहीं है कि मैं अभी कितनी तंगी में गुज़र रहा हूं। मैं तुम्हें···" एकदम रुककर, "मैं आपसे क्या कहूं मेरे भाई, मैंने अभी दो-तीन दलालों को दो रुपये सैकड़े ब्याज पर रुपये लाने के लिए भेजा है। आप निश्चिन्त रहिए। रुपये आते ही मैं आपको दे दूंगा।"

सम्पत ने मन ही मन कहा, 'अकड़ने से कुछ भी लाभ नहीं होगा। यह रुपयों को छोटी-छोटी मछलियों की तरह खानेवाला विशाल मगरमच्छ है।' अतः वह मुस्कराकर बोला, "कोई बात नहीं है, जब आपके पास आ जाएं तो मुझे दे दीजिए। मैंने अपनी बेटी को पचीस हज़ार देने का वचन दे रखा है। कल रात मैं यह बताना आपको भूल गया था।"

"कह दिया न, आप निश्चित रहिए।" बड़े बाबू ने गम्भीर होकर कहा, "अगर मेरी इज़्ज़त का प्रश्न नहीं होता तो मैं आपके रुपये अभी लौटा देता पर मुझे विश्वास है कि आप ऐसा कदापि नहीं चाहेंगे। हर अपना अपने से ही पनाह पाता है।"

"अरे नहीं, नहीं, आप इतनी चिंता न करिए।" आखिर सम्पत भी दलाल

था। उसकी दलाल की बुद्धि तुरन्त स्थिति को समझ गई।

पर उसकी अन्तरात्मा में कांटे-से चुभे जैसे वह हौले-हौले कह रही हो कि तुम्हारे रुपयों को खतरा हो गया है।...इस विचार-मात्र से उसकी रग-रग कांप उठी। मन में शून्यता-सी छा गई। वह कुछ क्षण निश्चल-सा बैठा रहा।

"मैं अभी पूजन करने जाता हूं।" कहकर बड़े बाबू मन्दिर की ओर चले गए।

सम्पत टूटे हुए प्राणी की तरह बाहर चला गया। उसके भीतर का दलाल दंभ में अपने विवेक को खोकर चोट खा चुका था।

वे अभी पूजन कर ही रहे थे कि रखड़ी भागती-भागती आई, "बड़े बाबू, बड़े बाबू!"

"क्या है!"

"बहूजी को उल्टी (कै) हो गई है।"

"अमृतधारा की खुराक दे दो। नीचे से पान लाकर खिला दो।"

"खून की...।"

"खून की उल्टी? क्या कहती हो? जल्दी से डाक्टर को बुलाओ।" बड़े बाबू ने माला को फेंका और घबराए हुए से वे पद्म के कमरे में आए। लाल खून बिस्तरे के पास बिखरा पड़ा था। पद्म निढ़ाल-सी पड़ी थी। वह एकदम मुरझा गई थी।

रखड़ी ने उस बिखरे खून पर मिट्टी डाल दी।

बड़े बाबू ने आत्मीयता से पद्म के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा, "कैसी तबियत है?"

उसने कोई उत्तर नहीं दिया। थोड़ी देर में उसने बुझी-बुझी नज़र से बड़े बाबू को देखा।

"कैसी हो संतोष की मां?"

उसकी आंखों में घृणा की हल्की छाया तैर उठी। वह मन ही मन बोली, "मैं कुलटा हूं। मुझे अपने-आपसे घृणा है। मैं पतिता हूं।"

"मैंने तुम्हें पहले ही कहा था न, अपने-आपपर जुल्म न करो। अपने-

आपको मत सताओ। देखो, तुम्हारा चेहरा कितना पीला पड़ गया है? इस तरह के चेहरे को देखकर मुझे भय लगता है।"

डाक्टर आ गया था।

उसने आते ही एक इन्जेक्शन पद्म को लगाया। फिर उसने बड़े बाबू से गुफ्तगू की।

"ये एक बार एक्सरे करा लेतीं तो अच्छा रहता।" डाक्टर ने कहा।

"यह नहीं कराएगी। बड़ी जिद्दी है।"

"जैसी इनकी मर्ज़ी।"

और डाक्टर चल पड़ा।

दिन-भर पद्म पड़ी रही। शाम तक उसमें शक्ति आ गई थी। हालांकि डाक्टर ने उसे सम्पूर्ण रूप से विश्राम करने के लिए कहा था पर बड़े बाबू की अनुपस्थिति ने उसे एकदम स्वतन्त्र कर दिया और वह पुनः इधर-उधर के कामों में व्यस्त हो गई।

डाक्टर फिर आया। उसने पद्म को काम में व्यस्त देखा तो स्नेहिल क्रोध से बोला, "यह आप क्या कर रही हैं? आपको कुछ भी काम नहीं करना चाहिए।"

वह सूखी मुस्कान के साथ बोली, "काम करने से आदमी थोड़े ही मरता है। प्रायः निकम्मे आदमी जल्दी मरते हैं।"

सौंदर्य के प्रति मनुष्य में स्वाभाविक आसक्ति होती है।

डाक्टर ने उसे सहारा देकर सुलाया और उसके इन्जेक्शन लगाते हुए बोला, "मैं नहीं चाहता कि आप-अपनेको इस तरह सताएं। आत्महत्या भी महापाप होता है।"

"पर उस महापाप का फल इहलोक में नहीं भोगना पड़ेगा। मैं क्या करूं डाक्टर साहब, मैं सुख-दुःख की घटनाओं को भूल नहीं सकती। मैं एक दुर्बल और धार्मिक विचारों की स्त्री हूं। मुझे किसीपर भी आफत सहन नहीं होती। मैं किसी भी तरह के पाप को नहीं सह सकती।"

"लेकिन पाप के प्रायश्चित्त और पर-दुःख-हरण के लिए शारीरिक शक्ति

की अत्यन्त आवश्यकता है।"

"तो क्या मैं आपको कमज़ोर दिख रही हूं ?"

"इसके लिए मेरा मौन रहना ही उत्तम है।"

"कल मैंने अपने-आपको दर्पण में देखा था। मुझे लगा कि मैं बिलकुल तंदुरुस्त हूं। केवल मेरे चेहरे पर काली छायाएं आच्छन्न हैं।"

"नहीं-नहीं, आपका चेहरा अत्यन्त सुन्दर है।" कहते-कहते डाक्टर की निगाहें झुक गईं। संकोच उसके चेहरे पर तैर उठा।

"छोटे बाबू ! आप डाक्टर हैं। आपको जीवन के उन पहलुओं पर तनिक भी विश्वास नहीं है जो अन्तर्मन से सम्बन्ध रखते हैं जैसे मनुष्य के मन की ग्लानि की भावना। क्या ग्लानि की भावना इतनी सहजता से मिटाई जा सकती है ? मैं समझती हूं—यह असंभव है। एक धार्मिक और ईश्वर में अखंड श्रद्धा और विश्वास रखनेवाली स्त्री अपने अपराधों को कदापि नहीं भूल सकती। वह उनको याद कर-करके ग्लानि के मारे मर जाएगी।" कहकर वह बहुत जोर से खांसने लगी।

डाक्टर ने उसकी पीठ पर हाथ फेरा। वह मन ही मन सोचता रहा, 'इसे तन के रोग से अधिक मन का रोग है। मन के ही रोग ने इसके तन को क्षयग्रस्त बना दिया। आह ! इसका अभी भी कैसा अपूर्व सौन्दर्य है ? इस तरह की बीमारी के बाद भी इसका रूप सूर्य की भांति चमक रहा है और....?' वासना के आवेश में उसने पद्म के रूप की अधिक प्रशंसा कर दी।

डाक्टर ने अपने-आपको झटका दिया जैसे वह कर्तव्यच्युत हो रहा हो। उसने जल्दी से अपना बैग संभाला और चल पड़ा।

पद्म शांति से कुछ देर तक पड़ी रही। उसने अपने पास से सबको हटा दिया और कमरे की खिड़कियां और बत्तियां बन्द करवा दीं। उस मौन तिमिर में वह अकेली पड़ी रही। वह ईश्वर से प्रार्थना करती रही कि वह आस्तिक है और चाहती है कि उसे इसी जन्म में अपने पापों का कठोर से कठोर दंड दे दिया जाए ताकि उसे ईश्वर के समक्ष लज्जित नहीं होना पड़े। वह ईश्वर के समक्ष बड़े सम्मान से जाना चाहती है। ताकि ईश्वर उसके समस्त अपराधों को भूल

जाए और उसे अपने चरणों में स्थान दे दे। उसने सब कुछ पति की आज्ञा से किया है। पत्नी के लिए पति की आज्ञा ही सर्वोपरि है। वह···? पर किसी भी पत्नी को पति के गलत इरादों को सम्पूर्ण करने में सहयोग नहीं करना चाहिए। उसे प्राण दे देने चाहिएं पर अपना धर्म नहीं देना चाहिए। इस विचार से वह पुनः अपनी आत्मा के संताप में जलने लगी और उसके गाल अच्छी तरह आंसुओं में भीग गए।

वह एकदम उठी। उसने अपनी माला निकाली और आसन बिछाकर भजन करने बैठी—'प्रभु के भजन के कारण ही मुझे मुक्ति मिलेगी।' वह माला जपती रही, जपती रही।

मां आ गई।

बड़े बाबू स्टेशन पर उसकी अगवानी करने नहीं जा सके। सवेरे-सवेरे ही दो व्यापारी आ गए थे। राजस्थान के एक महन्त का भी ट्रक आया था। महन्तजी भी उनसे मिलना चाहते थे।

मां को यह बुरा लगा। उसके अहम् पर आघात लगा और वह आते ही रुआंसे स्वर में भाषण दे बैठी, "तुम बड़े आदमी बन गए हो। बड़े आदमी छोटों को क्या, अपनों को भी भूल जाते हैं। अपनों को ही नहीं, अपनी मां को भी भूल जाते हैं। उस मां को जिसने उसे नौ माह पेट में रखकर उसका पोषण किया। उसको सूखे बिस्तर पर सुलाकर खुद गीले पर सोई। उसे अनेकानेक कष्ट झेलकर लिखाया-पढ़ाया।···उस मां को तुम स्टेशन लेने नहीं आ सकते?"

"मांजी!" वे दुःख-मिश्रित व्यग्रता से बोले, "आप समझतीं क्यों नहीं? इतने बड़े व्यापार को संभालने के लिए मैं अकेला आदमी ठहरा। दिन-भर क्या कभी-कभी रात-भर उसको संभालने की चिंता में व्यग्र रहता हूं। आप मेरी कठिनाइयों को समझने की चेष्टा कीजिए।"

"भगवान तुम्हें दिन दूनी रात चौगुनी माया दे, पर उस माया के पर्दे में

अपने कर्तव्य भूलना ठीक नहीं हैं।" मां चौंककर बोली, "तुमने मेरी बहू का यह हाल कर दिया है ? मैं उसे स्टेशन पर पहचान भी न सकी। उसे बुखार भी था। जब उसने मेरे चरण-स्पर्श किए तब मुझे लगा—दो जलती हुई सलाखें मुझसे छू गई हैं। जरूर तुम उसकी देखभाल नहीं करते हो।"

"लेकिन तुम्हारी बहू बड़ी ज़िद्दी है। अब तुम आ गई हो, खुद देख लोगी। मैं अभी चलता हूं। तुम स्नान करके पाठ-पूजा करो।"

बड़े बाबू हठात् चले गए। मां उसे देखती रह गई। वर्षों के बाद वह उनसे मिली थी। उसकी इच्छा थी कि वह कुछ देर तक अपने बेटे से बातचीत करे और यह मालूम करे कि वह क्या करता है। लोग उसे पचास लाख की आसामी समझते हैं।···पर बड़े बाबू ने उसे मौका ही नहीं दिया। वे हवा के झोंके की तरह चलते बने। मां कहने से रह गई। पर वह एक चतुर सेठानी थी। उसने अत्यन्त संयम व दूरदर्शिता से काम लिया और नाटक की अभिनेत्री की तरह अपने अन्तस् के भावों को चतुराई से छुपाकर वह उल्लास-भरे स्वर में बोली, "मेरा बेटा करोड़पति बनेगा।"

पद्म को इस वाक्य की कृत्रिमता का भान हो गया और वह मुस्करा पड़ी। मन ही मन बोली, "अब तुम्हारा वह फत्तू नहीं है जिसका गला मां-मां कहते सूखता था। अब वह बड़ा आदमी बन गया है।"

मां पद्म के पास गई। कोमल स्वर में शिकवा करती हुई वह बोली, "तुम क्या थी और क्या बन गई हो ? सूरज का दीया बन गई हो। दिन के उजाले से रात की काली बन गई हो और हां, तुम स्टेशन क्यों आई थीं ? तुम बुखार में अब भी जल रही हो।"

पद्म ने विहंसकर कहा, "नहीं मांजी, मुझे बुखार नहीं है। शरीर की कुछ ऐसी तासीर बन गई है कि वह हर घड़ी जलता रहता है।"

रखड़ी ने अपनी जानकारी का परिचय दिया, "मांजी, इन्हें खांसी भी आती है।"

"खांसी भी आती है ?" मां की आंखें विस्फारित हो गईं।

"और खांसी के साथ खून भी आता है।"

मां स्तब्ध।

"खून ही नहीं, मुझे टी० बी० है टी० बी०।" वह जैसे अपने-आपसे विद्रोह करती हुई बोली।

घहराके पहाड़ टूट पड़ा हो—ऐसा ज़ोर का धमाका हुआ मां के मन में। वह विमूढ़ बन गई।

थोड़ी देर बाद वह बड़ी कठिनता से बोली, "तुम्हें टी०बी० है?"

"हां मांजी! मुझे टी०बी० है। खांसी के साथ खून और खून के साथ सीने में दर्द। हर घड़ी बुखार। मांजी! आपको चाहिए कि आप मुझसे दूर रहें। मैं नहीं चाहती कि यह रोग आप सबको परेशान करे और आपका खानदान इस रोग में तबाह हो जाए।"

मांजी को विश्वास नहीं हुआ। वह जलती हुई दृष्टि से देखकर बोली, "यह नहीं हो सकता। ऐसी सुलक्षणी और सती बहू को यह रोग नहीं हो सकता। तुम मुझे भयभीत करना चाहती हो। तुम झूठी बातों से मुझे आतंकित करके थोड़ी देर के लिए परेशान करना चाहती हो। बहू! तुम्हें मेरी सौगंध है। कहो, मुझे टी० बी० नहीं है। बोलो,...बोलो।"

"आप अपने बेटे से पूछ सकती हैं।" कहकर पद्म स्नान करने के लिए चल पड़ी। मांजी ने उसे रोका, "तुम्हें बुखार आ रहा है।"

"नहीं मांजी, यह मेरे शरीर की तासीर है।"

"लेकिन मैं तुम्हें स्नान नहीं करने दूंगी। तुम्हें मेरी सौगंध है।"

पद्म वापस बिस्तरे पर आकर सो गई।

"आपकी आज्ञा सिर-आंखों पर है।" उसने आंखें बंद करके कहा, "अब आप सब जा सकती हैं। मांजी! आप मेरे ठाकुरजी की सेवा कर लीजिएगा। स्नान के साथ ही मेरा सेवाव्रत चलता है, स्नान नहीं तो प्रभु की सेवा भी नहीं।"

टी० बी० का नाम सुनकर सारे घरवाले आतंकित हो गए। बेचारी रखड़ी का बुरा हाल था। उसने तुरंत यह निर्णय कर लिया कि वह कहीं और जगह नौकरी कर लेगी। वह यहां अब एक क्षण-भर के लिए भी नहीं रहेगी। बाप रे!

टी० बी० वाला मरीज़ आज तक नहीं बचा है।

वह अत्यंत क्षुब्ध हो उठी जिसकी वजह से उसके हाथ से चीनी का एक बर्तन टूट गया। उसने दवा में जरूरत से ज़्यादा पानी मिला दिया और जब वह मंदिर दर्शन करने गई तब उसने न चाहते हुए भी इस रोग की बात अपनी कई सहेलियों को कह दी।

उसकी सहेलियों की आकृति पर किसी तरह के असाधारण भाव नहीं आए।

"तुम लोगों को मेरी बात से अचरज नहीं होता ?"

"नहीं।"

"क्यों ?"

"क्यों क्या ? जो जैसा करेगा, वह वैसा ही पाएगा।"

"मैं तुम लोगों का मतलब नहीं समझी।"

"तुम भोली हो।" एक ने कहा।

दूसरी ने उसकी बात को बीच में ही काट दिया, "यह भोली नहीं, गज़ब की गोली है ; पर इस बेचारी के इतना काम रहता है कि इसे काम के अतिरिक्त अन्य बातों के लिए सोचने का समय ही नहीं मिलता।"

"यह बात एक हद तक ठीक है।" रखड़ी ने उसकी बात की पुष्टि की, "पर मैं उस रहस्य को जानना चाहती हूं।"

"बात यह है, बहिन ! हमने सुना है।" उस स्त्री ने अपना बचाव किया, "ईश्वर जाने यह सही है या झूठ। पर होगी सही ही क्योंकि बिना कुछ किए हुए किसीकी कोई बात नहीं बनती।" उसने एक लंबी सांस ली, "हमने सुना है, पहले पद्म सेठ भगत से फंसी हुई थी। यह भी सुनने में आया है कि यह लक्ष्मी मिल पद्म ने ही सेठ से धोखे से लिखवा ली थी।"

"नहीं। ऐसा नहीं हो सकता।" रखड़ी ने विश्वास के साथ कहा, "तुम बकवास करती हो। मैं इसे नहीं मानती। पद्म बहू ऐसा कभी नहीं करती। वह सचमुच देवी है। उसके चेहरे पर छिनालों जैसी दुष्टता और निर्लज्जता का चिह्न भी नहीं है।" उसकी सांस फूल गई। वह कुछ उत्तेजित भी हो गई।

"तुम्हें इन सब बातों के लिए सोचने का समय ही नहीं मिलता। हम तुम्हें सच्ची बातें ही बता रही हैं। पहले-पहल भगतबाबू ने उसे अपने ही बंगले में रखा था। क्या तुम्हें यह मालूम नहीं है ?"

"नहीं।"

"फिर तुम्हें कुछ भी मालूम नहीं है।"

"लेकिन तुम सभी तो सदा उसकी प्रशंसा करती रही हो।"

"प्रशंसा करना दूसरी बात है। हर पैसेवाले की निंदा उसके मुंह पर नहीं होती। उसके मातहत प्राणी गरीब और स्वार्थी लोग प्राय: सेठों की तारीफ ही किया करते हैं। क्योंकि हम जैसी स्त्रियों का जीवन-निर्वाह का आधार सेठिया-परिवार ही है।"

"राम, राम ! तुम लोग कितनी हेठी मनोवृत्ति की हो !"

उसकी सहेली विकृत हंसी हंसकर बोली, "तुम मेरी भायली हो, तुम्हें सब-कुछ कहने का अधिकार है। पर मेरे कहने के मर्म की सत्यता से तुम इंकार नहीं कर सकतीं। क्या एक गरीब स्वार्थी नौकर अपने सेठ की, चाहे वह महा-नीच क्यों न हो, निंदा कर सकता है ?"

"....।" रखड़ी उसे देखती रही।

"अब तुम्हें ही ले लें, क्या तुम अपनी बहूजी से पूछ सकती हो कि आपके बारे में इतनी गंदी बातें लोग क्यों करते हैं ?"

"मैं उन्हें जरूर पूछूंगी !" उसने अपनी गर्दन को हिलाकर गंभीर स्वर में कहा।

वे सब सहेलियां एक साथ हंस पड़ीं।

"तुम्हें विश्वास नहीं होता ?"

"तुम दुनिया से न्यारी नहीं हो, समझीं।"

"यदि वह इस तरह की पापिन है तो मैं वहां एक घड़ी भी नहीं रहूंगी। मैं अधर्म का साया अपने पर क्यों पड़ने दूं ? कहीं और नौकरी कर लूंगी।" कहकर वह सत्वरता से चरण उठाती हुई चल पड़ी।

बड़े बाबू लौट आए थे। वे मांजी से बड़े चित्त-मन से बातचीत कर रहे

थे। रखड़ी इस बार पद्म के कमरे में गई तब उसके नाक के आगे पल्ला लगा हुआ था।

पद्म ने उसे कुछ नहीं कहा। वह नेत्र मूंदे पड़ी रही।

वह उसे सोई जानकर वापस चली आई।

बड़े बाबू के कमरे के आगे खड़ी हो गई।

बड़े बाबू कह रहे थे, "मैं चाहता हूं कि तुम उसे देश ले जाओ। देश में इसे शांति ही मिलेगी और मुझे भी।"

"तुम्हें मेरी सौगंध है अगर तुम झूठ बोले तो, क्या इसे टी० बी० है?"

"हां।"

"हे राम!" उसकी आंखें फट गईं।

"इसमें घबराने की क्या बात है? मैं चाहता हूं वहां तुम उसे किसी शहर के बाहर रख देना। डाक्टर कहता था कि यह ठीक होना नहीं चाहती है। ढंग से न इलाज कराती है और न दवा लेती है। और हां, मैं आज आसाम जा रहा हूं।"

"मैं यहां आई हूं और तुम आसाम जा रहे हो?" विस्मित-सी मां बोली।

"काम सर्वप्रथम है मां, क्या तुम चाहती हो कि तुम्हारे बेटे के किए-कराए कामों पर पानी फिर जाए। जहां तक मैं जानता हूं वहां तक कोई भी समझदार मां ऐसा नहीं चाहेगी। सच्ची मां वही है जो अपने बेटे के लिए ज़्यादा से ज़्यादा सहूलियतें पैदा करे।"

मां चुप हो गई। बेटे ने उसे चतुराई से पराजय दे दी। इसके अतिरिक्त बड़े बाबू मां के चरण-स्पर्श करके परिहास से बोले, "मां! मैं चाहूंगा कि तुम बुरा नहीं मानोगी। मुझे एक मिल और खरीदनी है, और उसके लिए मुझे लगभग बीस लाख रुपये चाहिएं। मैं चाहता हूं, अपने दबदबे का लाभ उठाकर ये बीस लाख रुपये बाजार से खींच लूं।"

"मेरा तुम्हें आशीर्वाद है कि तुम खूब उन्नति करो।"

मां का उत्तर सुने बिना ही वे हवा की तरह अपने कमरे की ओर उड़े। तभी रखड़ी ने कहा, "सम्पत बाबू आए हैं।"

बड़े बाबू सीधे बैठक में गए और मुस्कराकर बोले, "आप मुझसे मिल में मिल लें। अभी मैं ज़रा बाहर जा रहा हूं।" और उसका उत्तर सुने बिना ही वे भीतर आ गए।

'मेरे रुपये गए।' उसने हठात् अपने-आपसे कहा, 'अरे इसका व्यवहार ही बदल गया है। पहले यह मुझसे बिना काम के दो-चार मिनट बातें करता था। कोई विषय नहीं होता तो वह बनाने की चेष्टा करता था पर अब....?'

सम्पत का मुंह उतर गया। वह बेचारा अपना-सा मुंह लेकर चलने लगा। उसे लग रहा था कि उसका अंग-अंग निर्जीव हो रहा है।

'मैं दलाल हूं। सबसे रुपये ऐंठता हूं पर इसने मुझे......? नहीं, मैं इसको ठीक कर दूंगा। कभी किसी सौदे में सारे के सारे रुपये लेकर उड़ जाऊंगा।' उसकी आंखों में प्रतिहिंसा चमक उठी। निर्जीव होते हुए अंगों में पुनः प्राणों का संचार हुआ।

बड़े बाबू बाहर जा रहे थे। जाने के पहले वे एक बार मां से फिर मिले। उससे प्रार्थना की कि तुम्हें जितने रुपयों की आवश्यकता हो उतने तुम मामाजी से ले लेना और बहू को ले जाने की कोशिश करना।

"पर मैं मथुरा जाऊंगी।

"तुम अपनी बहू को तीर्थ-यात्रा क्यों नहीं करा देतीं? मैंने सुना है कि पुण्य और तीर्थों के दर्शनों से जन्म-जन्म के रोग छूट जाते हैं।"

"मैं उसे कहूंगी।"

वे भावुकता से बोले, "मां! मैं समझता हूं कि मां की सेवा से बढ़कर कोई दूसरी सेवा नहीं है। श्रवणकुमार मां-बाप की सेवा करके भव-बन्धनों से तर गया। मैं ईश्वर से प्रार्थना करूंगा कि मुझे शीघ्र ही ऐसा मौका दे ताकि मैं भी कुछ ऐसा ही पुण्य अर्जित कर सकूं। मैं आपको कसम के साथ कहता हूं कि मैं पैसों के खर्च के भय से या किसी दुर्भावना की वजह से ऐसा नहीं कर रहा हूं, इसमें मेरी विवशता है, परवशता है। मुझे आशा है, मां, तुम मुझे क्षमा कर दोगी।"

मां विह्वल हो उठी। वह गद्गद स्वर में बोली, "मुझे तुम इतनी स्वार्थी

और बुरी नीयत की समझ रहे हो कि मैं तुम्हारा अहित चाहूंगी ? मैं ऐसी मां नहीं हूं। मैं वर्षों के बाद यहां आई हूं और अगर तुम मेरी परीक्षा लेना चाहो तो मैं तुम्हारा इन्तज़ार भी कर सकती हूं। मैं दस-पन्द्रह दिन के बाद भी जा सकती हूं।"

"नहीं, नहीं, तुम अभी जा सकती हो। मैं इधर एक-दो माह अत्यन्त व्यस्त रहूंगा। मुझे ज़रा भी फुर्सत नहीं रहेगी। और फिर मैं अगले महीने देश भी आऊंगा।"

"सच कहते हो ? खाओ मेरी सौगन्ध कि मैं देश आऊंगा।"

"अच्छा, सौगन्ध खाता हूं।" बड़े बाबू ने अत्यन्त सहज ढंग से कहा।

बड़े बाबू पद्म के पास गए।

"अन्धेरा ! तुम उजाला क्यों नहीं करतीं ?" बड़े बाबू नवाबी ठाट की कुर्सी पर बैठते हुए बोले।

"मुझे अन्धेरा पसंद है।"

"जैसी तुम्हारी मर्जी।" उन्होंने हाथ का संकेत करके कहा, "मैं किसीको किसीके लिए विवश नहीं करता। और हां, मैं आज आसाम जा रहा हूं। मेरी इच्छा है कि तुम मां के साथ देश चली जाओ। वहां तुम्हें आराम रहेगा।"

वह खोखली हंसी हंस पड़ी, "मैं यहीं रहना चाहती हूं। मैं जानती हूं कि मुझे भयानक रोग लग गया है। मुझसे सब डरते और कतराते हैं। मैं खुश हूं कि मुझे यह रोग लग गया जो मेरे स्वभाव के अनुकूल है। मैं ईश्वर को धन्यवाद देती हूं कि इस रोग के कारण मुझे आप लोग अधिक तंग नहीं करेंगे।"

"सचमुच तुम मुझे परेशान करने लगी हो।"

"मैं किसीको परेशान नहीं करती हूं।"

"फिर तुम हरदम ऊटपटांग बातें क्यों सोचती हो ?" बड़े बाबू थोड़े अवश हो उठे, "मैं चाहता हूं कि तुम खुश रहो। इस रोग की मुक्ति का सम्बन्ध व्यक्ति के मन की प्रसन्नता से अधिक है।"

"अब आपको कैसे समझाऊं कि मैं प्रसन्न नहीं हूं ? मुझे टी० बी० है। यह

भी ठीक है कि इस रोग का रोगी निश्चित रूप से मरता है। मृत्यु के अत्यन्त करीब पहुंचकर कौन-सा ऐसा प्राणी होगा जो खुश रहना नहीं चाहेगा ?"

"मैं तुमसे प्रार्थना करता हूं कि तुम बाहर घूमा-फिरा करो।"

'नहीं। मुझे अपना घर ही पसंद है।" उसने आंखें मिचमिचाकर कहा, "जब अपने घर से मैंने विदाई ली थी तब पता नहीं किसने कहा था, 'बेटी की डोली घर से विदा होती है और अर्थी ससुराल से निकलती है।'...यह भावना-भरी बातें हैं। आज के कुछ लोग इसे प्रलाप से अधिक कुछ भी महत्त्व नहीं देते हैं। पर इसमें दुखियारी दुल्हन के लिए एक कटु आदेश है, वह आदेश है—जब तुमपर कोई जुल्म करे तब तुम अपनी ही पीड़ा में स्वयं को भस्म कर देना ताकि तुम्हारी मृत्यु अपयश और अपकीर्ति के गंदे वातावरण से दूषित न हो।... तुम्हारा यह समाज एकदम दकियानूसी है। यह नारी के हर नये विद्रोह और सत्य को उसकी नीच प्रवृत्ति की संज्ञा देकर उसे सार्वजनिक रूप से जलील करता है और उने लोक-निंदा का शिकार बना देता है। उसकी आकांक्षाओं एवं इच्छाओं को अपने पांवों से रौंदकर उसे एक गुलाम का जीवन बिताने के लिए विवश करता है। ऐसी स्थिति में स्त्री का ससुराल के घर में मरना ही श्रेष्ठ रहता है।"

"मैं तुम्हारी बातें नहीं समझ सकता।" उन्होंने उपेक्षा से कहा।

"आप अभिनय-प्रवीण हैं। आप सिर्फ अपने ही मतलब की बातें समझते हैं। अगर मैं रुपयों की बातें करती तो आप तुरन्त चौकन्ने होकर मुझसे बातचीत करते, पर इसके अतिरिक्त न आपको कुछ पसंद है और न कुछ आपकी समझ में आता है।"

"क्या तुम मां में साथ देश जाओगी ?" उसने खिड़की खोलकर बाहर थूका, "वहां तुम्हे आराम मिलेगा।"

"मैं यहीं रहना चाहती हूं। वैसे आप हुक्म देंगे तब मुझे जाना ही पड़ेगा। पति-आज्ञा सर्वोपरि। पर मैं यहीं पर रहना अधिक पसंद करूंगी।"

"जैसी तुम्हारी मर्जी।...और हां, मैं आज आसाम जा रहा हूं। तुम दवा बराबर लेती रहना। तुम्हें मेरी कसम है।"

पद्म को ज़ोर की खांसी आ गई थी। इतनी भयानक खांसी थी कि वह अपने पति की सौगन्ध भी नहीं सुन सकी। बड़े बाबू कांप उठे। उन्हें लगा कि किसी क्षण इस भयानक खांसी के साथ इसके प्राणों की शाश्वत लड़ टूट जाएगी। वे जल्दी से बाहर भागे और उन्होंने छोटे बाबू के यहां आदमी भेजा।

डाक्टर तुरन्त आया और दवा देकर कहा, "इन्हें आप आराम करने दीजिए।"

पद्म उस समय डाक्टर से बातचीत नहीं कर सकी। वह सोती रही। उसकी आंखें बन्द थीं। डाक्टर मन ही मन कह उठा, 'इसे आखिर कौन-सी पीड़ा है? कौन-सा दुःख है? यह सही है कि इसके पीछे कोई रहस्य छिपा हुआ है। यह अपने अन्तस् का मर्म किसीको कह नहीं पाती है जिससे वह मन ही मन घुल रही है, अपने को गला रही है।'

वह इसी तरह के अनेक विचारों में उलझता हुआ बाहर चला गया। बड़े बाबू को उसने कहा, "आप इनके लिए एक विशेष नर्स की नियुक्ति करवा दें तो उत्तम रहेगा। सर्व साधारण में इस रोग के बारे में एक भयपूर्ण पूर्वाग्रह है। आपकी कोई भी दासी इसका ढंग से उपचार नहीं कर पाएगी।"

"जैसा आप उचित समझें कर लीजिएगा।"

डाक्टर चला गया।

रखड़ी का पता नहीं था। दो बार मांजी उसे पूछ चुकी थी और दो बार ही पद्म भी।

और उधर रखड़ी सीधे गीता के पास गई।

गीता 'सुख सागर' नामक धार्मिक ग्रंथ पढ़ रही थी।

रखड़ी ने जाकर उससे राम-राम की।

गीता ने चश्मा उतारकर पूछा, "क्या है रखड़ी, आज तू कैसे आ गई?"

"बहूजी ने पूछा है कि आप देश कब जाएंगी?" वह झूठ बोली।

"मैं अभी नहीं जाऊंगी।"

"पता नहीं, उन्हें किसने कहा कि आप देश जानेवाली हैं।"

"मैं जाऊंगी भी तो तेरी बहूजी से मिलकर नहीं जाऊंगी।" गीता के चेहरे

पर धार्मिक ग्रंथ सुखसागर पढ़ते हुए जो सौम्यता और सौजन्यता थी, वह लुप्त हो गई। वह जलन से कुढ़कर बोली, "मैं उस रांड (वेश्या) का मुंह भी देखना पसंद नहीं करती। उसने अपने रंग-रूप से हमें लूट लिया। रखड़ी! तुझे क्या बताऊं, नारी को नागिन के रूप में मैंने उसे ही देखा है। बाप रे बाप, चेहरा संतवंतियों से कम भोला नहीं है पर मन कोयले से भी काला है। मेरे पति पर जादू कर दिया था उस रंडी ने। सब ले गई पर मुझे कोई परवाह नहीं। अभी भी भगवान का दिया सब कुछ है। पेट-भर रोटी आनंद से खा ही लेते हैं। दिन बदलते कितनी देर लगती है? जब वे दिन नहीं रहे तब ये दिन भी क्या रहेंगे?"

रखड़ी ने अपने-आपसे कहा, 'वस्तुतः वह अधिक व्यस्तता के कारण इन सभी रहस्य-भरी बातों से सदा अनजान रह जाती है।'

"अब मैंने सुना है कि उसे टी० वी० का रोग हो गया है। सच मानो, ईश्वर का यह दंड भयंकर पाप करनेवालों के लिए है। मैं कहती हूं कि वह सड़-सड़कर मरे।"

वह मन ही मन बोली 'हे राम! क्या यह खुद इतनी अच्छी है? इसके बारे में भी कई कहानियां प्रचलित हैं कि ये नौकर-चाकरों, साधू-महात्माओं और पंडितों से छिनाल की तरह प्रेम करती है क्योंकि यह चाहती है कि इसके पुत्र हो।" रखड़ी के चेहरे पर पसीने की बूंदें उभर आईं। वह अपने अन्तर्द्वन्द्व को बड़ी मुश्किल से ज़ब्त कर पाई।

"वह जरूर मरेगी। उसे मरना पड़ेगा। वह उस धन का उपभोग नहीं कर सकती। उसका आनंद नहीं ले सकती, क्योंकि उसने एक वेश्या की तरह किसी शरीफ आदमी को लूटकर यह धन इकट्ठा किया है।" घृणा से पुकार उठी गीता।

"अच्छा, मैं चलती हूं। राम-राम!" रखड़ी बड़ी तेज़ गति से घर की ओर चली। रास्ते में उसने एक सब्जीवाले से कुछ धनिया खरीदा ताकि वह इतनी देर गायब होने का बहाना बना सके।

जब वह घर पहुंची तब मांजी ने उसे डांटते हुए पूछा, "कहां मरी थी इतनी देर?"

वह अपने निचले होंठ पर तर्जनी रखती हुई बोली, "मैं कोई अपने काम थोड़े ही गई थी ? मैं बाज़ार धनिया लेने गई थी।"

"ठीक है ठीक। जा, बहूजी को पूछकर आ कि वे मौसमी का रस पीएंगी ?"

रखड़ी वहां से सीधी गई।

'इन्हें टी० बी० है। ये कुलटा हैं। अवश्य इन्हें यह ईश्वर का कठोर दंड है।···मैं अब यहां नहीं रहूंगी। यहां रहना खतरे से खाली नहीं है। टी० बी० जैसा रोग ठीक नहीं हो सकता। दूसरों को भी लग जाता है।' वह बुत की तरह यह सब सोचती रही। पद्म प्रगाढ़ निद्रा में मग्न थी। उसका चेहरा दिन-प्रतिदिन मुरझा रहा था। रखड़ी उसे देखती रही, देखती रही और सोचती रही।

पद्म ने करवट बदली।

"बहूजी ! आप रस पीएंगी ?"

"नहीं !"

"थोड़ा-सा पी लीजिए न।"

"नहीं-नहीं।" उसने थोड़ा तेज़ स्वर में कहा। आवाज़ पर जैसे ही ज़ोर डाला वैसे ही उसे खांसी शुरू हो गई और खून का कफ बाहर आ गिरा। उसने नेत्र मूंदकर अपने को आश्वस्त किया।

रखड़ी का मन घृणा से भर उठा। उसकी आंखों में भय नाच उठा। उसके मन में आया कि वह भाग चले, यहां एक पल भी न रुके। उसका चेहरा आन्तरिक घृणा से विकृत हो गया।

पर उसने यंत्रवत् कपड़े से उस खून को उठाया और उसे कफवाले बर्तन में डाल दिया। उसने मांजी को पुकारा। उसका मन अरुचि से भर उठा।

'यह कैसी नौकरी है ? इससे मेरा जीवन भी खराब हो जाएगा।' उसने तुरन्त सोचा, 'वह आज ही यहां से भाग जाएगी और दूसरी जगह रोटी-कपड़े के बदले ही काम कर लेगी। यहां तनख्वाह बढ़ाने पर भी वह नहीं रहेगी। यहां उसके जीवन को खतरा है, धर्म को खतरा है। क्या एक कुलटा

के स्पर्श से उसका परलोक नहीं बिगड़ सकता ? छि:, छि: !"

"क्या है ?" मांजी ने कमरे के बाहर से ही पुकारा, "क्या बात है ?"

"मुझे लग रहा है कि बहूजी बेहोश हो गई हैं।"

"बेहोश ! रखड़ी, तू यहां ठहर, मैं अभी डाक्टर को कहलवाती हूं।" कह-कर वह बाहर गई और पुन: कुछ सोचकर बोली, "रखड़ी, तू उसे गोली दे दे। डाक्टर साहब ने ऐसा कहा था न ?"

रखड़ी वहां खड़ी रही।

"खड़ी-खड़ी देखती क्या है ? जाकर गोली क्यों नहीं देती ?"

वह चिढ़ गई, 'ये सभी लोग यह रोग मुझे लगवाना चाहते हैं। खुद कोई भी इसके पास नहीं फटकता, सभी मुझे ही इस आग में ढकेलते हैं। छि: ! मैं आज ही यहां से चली जाऊंगी।'

वह यह सब सोचती हुई पद्म को गोली देने लगी। उसने गिलास में पानी भरा। अचानक उसे वहम हुआ कि कांच के गिलास पर क्षय के कीटाणु रेंग रहे हैं। वह नख से सिर तक कांप उठी। उसने बड़ी कठिनता से उस गिलास को पकड़े रखा। उसने पद्म को गोली दी पर उस समय भी उसे यही भ्रम था कि कीटाणु उसकी ओर भागे-दौड़े चले आ रहे हैं। क्योंकि भूखों में टी० बी० का रोग असाध्य और अत्यन्त भयानक माना जाता है।

पद्म ने धीमे से पुकारा, "मांजी है ?"

"हां।"

"उन्हें बुला।"

रखड़ी मांजी को बुला लाई।

पद्म ने अपनी बुखार से तेज व लाल आंखें उठाकर कहा, "मांजी ! आप जा सकती हैं। मैं देश नहीं चलूंगी।"

"नहीं, नहीं। तुम्हें यहां संभालेगा कौन ?"

"मुझे, यहां ईश्वर संभालेगा। ईश्वर से बड़ा कौन रखवाला हो सकता है ? आप आज जाना चाहती हैं न ?"

"नहीं, मैं दो रोज़ बाद जाऊंगी।"

"यह आपकी अपनी मर्जी है। पर आप मेरे लिए न रुकें।"

दो रोज के बाद मांजी चली गई। दरअसल वह पद्म को अपने साथ ले जाना नहीं चाहती थी पर उसने जाते-जाते लोक-व्यवहार का लिहाज रखते हुए उसकी कई बार मिन्नतें कीं। उसने अपने भाई से दस हज़ार रुपये मांगे पर उसने चार हज़ार ही दिए। उसने यह नहीं बताया कि फतह उसे मना कर गया है कि इससे अधिक मां को न देना और न ही इस रहस्य से परिचित कराना मां को।

रखड़ी तीसरे दिन यहां से काम छोड़कर चली गई। धाय मां ने, जो स्वभाव से दयालु थी, उसका उपचार संभाला। वह बड़ी निर्भीक थी और सेवा को श्रेष्ठ मानकर पद्म की देखभाल करने लगी। पर वह संतोष को उससे एकदम दूर रखती थी क्योंकि वह नहीं चाहती थी कि मां के इस भयानक रोग का उसके बेटे पर प्रभाव पड़े और उसकी भी सारी उम्र खांसी की खूं-खूं करते बीते।

पद्म डाक्टर के अतिरिक्त सभी को अपने पास आने के लिए मना करती रहती थी। वह उन्हें टी० बी० की भयानकता के किस्से सुनाया करती थी। बड़े बाबू का एक और पत्र आया था कि वे अभी दस दिन और नहीं आ सकेंगे। वे रुपयों के चक्कर में हैं।

धाय ने पद्म को यह समाचार सुनाया, "बड़े बाबू अभी नहीं आएंगे। वे अभी तक रुपये इकट्ठे नहीं कर पाए हैं।"

"फिर मैं बड़ी शांति से मरूंगी।"

"आपको ऐसे बोल नहीं बोलने चाहिएं।"

"कल मैंने एक सपना देखा था—मैं एक ऊंचे वृक्ष की एक डाल पर हूं। वृक्ष बहुत ऊंचा है और नीचे पत्थर की पहाड़ियां। मैं डर गई। बहुत देर तक उस वृक्ष पर बैठी रही और अंत में मैं गिर पड़ी। मैं भयभीत हो गई। पर प्रभु की कृपा समझो कि वह सपना ही था वर्ना मेरा कितना भयंकर अन्त होता!"

"भगवान आपको चिरायु रखे।"

"भगवान से ऐसी प्रार्थना न करो। क्या तुम चाहती हो कि मैं एक पापिन

स्त्री की तरह कष्ट झेल-झेलकर मरूं ?" उसने तुरन्त धाय का उत्तर सुने बिना ही शान्त स्वर में कहा, 'हालांकि मैं पापिन हूं और मैं इसी तरह ही मरूंगी।'

वह प्रकट में बोली, "तुमने क्या कहा धाय मां ?"

"मैंने यह कहा था कि आप मरने का नाम न लें। बड़े बाबू को दूसरी बहू मिल जाएगी पर आपके बेटे को अपनी मां नहीं मिलेगी।"

"यह सच है। पर तुम मुझे बच्चे के मोह में इस रोग की भयानक पीड़ा में आजीवन तड़पाना चाहती हो ?" वह तरस-भरी हंसी हंसकर सोचने लगी, 'फिर मैंने इसे हृदय से अपना बेटा कहां समझा है ? मैं इसे प्यार नहीं दे सकी। मैं इसे अपनी छाती का दूध नहीं पिला सकी। दूध के बिना पूत कैसा ?'

धाय मां ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह बाहर चली गई।

कमरे में पूर्ववत् एकांत छा गया।

तीसरी रात को खांसी पल-भर के लिए नहीं रुक रही थी।

आसमान साफ था और चन्द्रिका में बंगाली राजा की विशाल बाड़ी दिखलाई पड़ रही थी। आज अचानक असमय सितार का वही दिल की गहराइयों में उतरनेवाला संगीत सुनाई पड़ा।

पद्म अकेली थी।

उसने खिड़की खोली। राजा की बाड़ी स्पष्ट नजर आने लगी। चांदनी में स्नान करती हुई सुन्दर युवती सितार-वादन कर रही थी। वह श्वेतवस्त्रों में वरदा मां लग रही थी। वह उसे श्रद्धालु की तरह देखती रही। देखते-देखते उसके नेत्र भर आए।

न मालूम वह कब तक विमुग्ध-सी वहां खड़ी रही। उसे मालूम ही नहीं हुआ कि वह अप्सरा-सी युवती कब चली गई। कब अमृतमय संगीत रुक गया और कब महानगरी के कोलाहलमय वातावरण में अनपेक्षित एवं अलौकिक शून्यता छा गई।

वह उठकर आई। उसका जी मितलाने लगा। वह भागकर स्नानघर में गई। उसे कै हुई। लाल कै। उसे लगा कि वह बेहोश होनेवाली है पर उसने

अपने-आपको संभाला और कै को पानी से बहाकर वह अपने कमरे तक लड़-खड़ाती हुई आई और उसने बाद में धाय को पुकारा।

धाय आई।

"क्या बात है ?" वह उसे देखते ही घबरा उठी।

"तुम मामीजी को बुला लाओ।"

"क्यों ?"

"मैं थोड़ी देर में मर जाऊंगी।" पद्म के चेहरे पर साधुओं जैसा ओज था और थी शांति।

"यह क्या कह रही हो ?" धाय घबरा उठी।

"देर न करो।" उसके चेहरे पर गहरी ऐंठन-सी दौड़ी।

"अच्छा।" कहकर उसने नौकर को भेजा।

धाय ने उसे सम्बल देकर बिस्तरे पर लेटाया।

सन्नाटा।

"धाय ! संतोष सो रहा है ?"

"जी।"

"धाय मां ! उसकी देखभाल तुम्हें सौंप रही हूं। मृत्यु-पर्यन्त उसे अपनी ममता से विलग मत करना। सचमुच, बिना मां का बच्चा बड़ा अभागा होता है। किन्तु मुझे विश्वास है कि तुम उसे अपनी नज़र से नहीं गिराओगी। गिराओगी से मेरा मतलब यह है कि वह एक अभागी (उसने मन में कहा, पापिन) का बेटा (मन में पाप) है। क्या पता बड़े बाबू दूसरी बहू ले आएं और वह उसे कष्ट और प्रतारणा दे। हम तीन त्रिलोकी के नाथ से कोई भी पाप नहीं छिपा सकते। वह हमारी आत्मा में सत्य का उद्घोष करता रहता है। हमें अपने पापों की याद दिलाता रहता है। उसने मुझे कुछ कहा, और मैंने अपने को अपराधी मान लिया। मैं अपने साथ अपने बच्चे को भी दंड दे बैठी। उसे कभी सम्पूर्ण मातृत्व के साथ प्यार नहीं किया।"

"लेकिन आप जैसी दयावती धार्मिक वृत्ति की स्त्री और दंड, मैं नहीं समझी ?"

"धाय मां ! तुम मुझसे पवित्र हो। तुम किराये की मां हो पर तुम्हारी ममता किराये की नहीं है। ममता किराये पर कभी नहीं मिलती। उसका कर्तव्य अवश्य वेचा जा सकता है। पर तुमने संतोष को ममता दी, सच्ची ममता। तुम यहां नौकरी करने आई थीं और बच्चे की किलकारियों और अठखेलियों में अपने आपको इतना तादात्म्य कर लिया कि तुम सहज स्वाभाविक मां बन गई हो। तुम्हारे मन में किसी तरह का भेद और कलुष नहीं है। तुम अमृतमयी और वात्सल्यमयी हो। प्रभु तुम्हें चिरायु रखे···। पर कुछ सगी माताएं भी ऐसी होती हैं जो द्वेषवश अपने बच्चों को अपने से दूर रखती हैं।"

"नहीं बहूजी, आजकल पैसेवाली लड़कियां बच्चों को दूध इसलिए नहीं पिलाती हैं कि उन्हें अपने यौवन से हाथ धोने का वहम बना हुआ है। वे कहती हैं, बच्चे के निरन्तर दुग्धपान से उनकी···। राम-राम मुझे कहते हुए भी शर्म आती है।"

"पर मैं सचमुच अपने बच्चे से प्यार नहीं कर सकी। पता नहीं क्यों ? मैं समझती हूं कि यह मेरा दुर्भाग्य ही है, या ईश्वर का अभिशाप। कदाचित् परलोक के देने-पावने यहां पूरे हो रहे हों।"

"मैं कुछ भी नहीं जानती।"

गहरा मौन।

कुछ समय बीत गया।

मामा-मामीजी आ गए। वे बहुत घबराए हुए थे।

उन्होंने आकर पद्म को देखा—पद्म की आंखें लग गई थीं। उसके चेहरे पर प्रगाढ़ शांति थी; अखंड निद्रा के कुछ क्षण पूर्व की शांति।

मामाजी ने उसका हाथ पकड़कर नाड़ी देखी और वह बोली, "नाड़ी ठीक से चल रही है।"

मामा ने स्नेहिल स्वर में कहा, "मैं एकदम घबरा गया था। कुछ भी कहे फत्तू, पर कल मैं उसे तार दे ही दूंगा।"

वे लगभग आधा घंटा बैठे रहे और अन्त में वे उठकर बाहर के कमरे में सो गए।

सुबह धूप निकलने तक वह सोई रही। लगता था कि उसे जो गोली बाद में दी गई थी, वह नींद की गोली थी। इस लम्बी नींद ने उसे काफी स्वस्थ कर दिया। वह अपने-आपको दुर्बल नहीं समझ रही थी।

जब डाक्टर आया तब वह बड़ी प्रसन्न थी। उसने डाक्टर से हंस-हंसकर बातें कीं। डाक्टर को उसने बताया, "आज उसने रात को एक सपना देखा, उस सपने में उसने अपने-आपको मरा हुआ पाया।" उसको ऐसा विश्वास था कि सपनों का अर्थ सदा उल्टा होता है। डाक्टर उसके एकाएक प्रसन्न होने के कारण विस्मित था। सोच रहा था, 'यह स्वस्थ है या उन्माद में है?'

मामा-मामी चले गए थे। एक तार बड़े बाबू को दे दिया गया था कि वे तुरन्त आ जाएं।

डाक्टर ने वेदना-भरे स्वर में कहा, "आप ठीक से उपचार नहीं कराती हैं। मेरा वश चलता तो मैं आपका जबर्दस्ती···।"

पद्म ने बीच में ही हंसकर कहा, "मैं बहुत अच्छी हूं आज।"

बड़े बाबू आसाम में सेठ कुन्दनमल से कुछ रुपया ऐंठने गए थे। ऐंठना शब्द का प्रयोग इसलिए किया गया है कि उनकी भावना नितान्त अपवित्र थी। पर अगर वे रुपये ही लेने जाते तो उन्हें ऐसे कौन रुपये देता? इसलिए उन्होंने यह हवा फैलाई कि वे कुछ चाय के बागान खरीदना चाहते हैं। उन्होंने आसाम के जंगलों में खूब घूम-घूमकर अपने विचार की पुष्टि भी की। उनकी योजनाओं तथा कार्यक्रमों से सभी लोग प्रभावित हुए।

इसी बीच उनकी भेंट बसंतलाल से और हो गई। बसंतलाल भी चाय के बागानों का मालिक था और उसके पास खूब रुपये थे। इसका कारण एक यह भी था कि उसका बड़ा बेटा रंगून में जौहरी था और उसने वहां अनाप-सनाप धन कमाया था।

बसंतलाल ने बड़े बाबू को एक दिन भोजन पर बुलाया। इधर-उधर की

बातें होती रहीं। बातचीत में वसंतलाल ने पूछा, "आप चाय बागान क्यों खरीदना चाहते हैं ?"

"आपको क्या बताऊं सेठजी ?" बड़े बाबू गंभीर होकर बोले।

वसंतलाल सदा से लोभी प्रकृति का था। उसे धन के अतिरिक्त भी प्रत्येक वस्तु को संग्रह करने की आदत थी। उसमें एक और खूबी थी कि उसके पास कितना धन है, उसका लोग अनुमान नहीं लगा सकते थे। एक मैली-कुचैली पगड़ी, एक बगलबंदी और घुटनों तक मोटी धोती। रोटी-पानी के व्यसन के अतिरिक्त कोई दूसरा व्यसन नहीं।

'मुझे बताना ही पड़ेगा।" वसंतलाल की आंखों में सांप की आंखों-सी चमक थी।

"एक विलायत के साहब मेरे दोस्त हैं। बड़े ही भले और दयालु हैं। उन्होंने मुझे कहा है कि वे हमारी चाय का सौदा अधिक दाम में एक बाहरी कम्पनी से करा देंगे।"

"मेरे भी चाय के बागान हैं।"

"मुझे पहले कुन्दनमलजी से सौदा तय करना है। मैंने उन्हें वचन भी दे दिया है और व्यापार में वचन भंग करना निहायत ही अनैतिकता है।"

"लेकिन वह खुद बड़ा लोभी है।"

"मुझे उनसे कुछ छीनना नहीं है। अगर उनसे सौदा नहीं पटा तब मैं आपकी चाय खरीद लूंगा।...और मुझे एक नई मिल भी बिठानी है। मैं आपको बता रहा हूं—उस मिल में प्रत्येक साल दो लाख रुपयों का मुनाफा होगा।" बड़े बाबू पल-भर के लिए चुप रहकर बोले, "आपको क्या बताऊं ? लारेन्स मैकेनिकल वर्क्स के लारेन्स साहब मुझे बड़ा चाहते हैं। उनके बड़े भाई रिचर्ड साहब यहां कोई बड़े आफिसर बनकर आ रहे हैं। वे आफिसर बनकर जैसे ही आएंगे वैसे ही मुझे जंगलात के ठेके मिल जाएंगे। आप यकीन रखें, मैंने ऐसी योजना बना रखी है कि मुझे आगामी चार वर्ष में लगभग हर वर्ष में एक करोड़ की बचत होगी।"

वसंतलाल उनकी ओर देखता रहा।

बड़े बाबू बोले, "मैं आपको अपनी पूरी योजना नहीं बता सकता। यह

बिजनेस-सीक्रेट है। पर यह सोलह आने सत्य है कि बिना उद्योग के भविष्य में जीना दूभर हो जाएगा। रुपया पड़ा-पड़ा स्वत: थोड़े ही बढ़ता है। रुपयों को बढ़ाता है व्यापार। लक्ष्मी मिल्स में मैं साधारण नौकर था। उसे मैंने इधर-उधर से रुपये इकट्ठे करके खरीदा, आपकी और ईश्वर की कृपा से आज उससे लाखों कमाता हूं।"

"लाखों !"

"जी। पर सरकार के डर से आपको सही रकम नहीं बताऊंगा। यह भी बिजनेस-सीक्रेट है।

बड़े बाबू खाना खा चुके थे। वे उठते हुए बोले, "और मेरे योग्य कोई सेवा ?"

लोभी का मन ललचा। वह विहंसकर बोला, "मेरी विधवा बहिन के मेरे पास लगभग दो लाख रुपये जमा हैं। मेरा कोई लम्बा-चौड़ा व्यापार है नहीं, इसलिए मैं अपनी बहिन को व्याज देने में सर्वथा असमर्थ हूं। अत: आपसे मेरी प्रार्थना है कि आपको रुपयों की जरूरत हो, तो वे रुपया आप अपने खाते में जमा कर लें।"

"देखिए मुझे रुपयों की जरूरत नहीं है। यदि आप कहें, मेरा मतलब है कि सिर्फ आपके लिहाज से·····।"

"यह मेरी आपसे प्रार्थना ही समझिए।"

"मैं आपकी प्रार्थना कैसे टाल सकता हूं ? पर मैं व्याज चार आना सैकड़ा ही दूंगा। यह सिर्फ आपके कारण वर्ना मुझे तो लोग रुपये ऐसे ही दे जाते हैं। सोचते हैं कि डूबेंगे तो नहीं।"

"कोई बात नहीं।"

"तब आप ऐसे कीजिए, रुपया मुझे दे दीजिए।"

"आप कब जाएंगे ?"

"मैं कल सुबह जाऊंगा।"

"क्या इतनी रकम···?"

"आप चिंता न करें। मैं कुन्दनमलजी की गद्दी में जमा करा दूंगा और

कलकत्ता में उनकी गद्दी से ले लूंगा।"

"ठीक है।"

वहां से सीधे वे कुन्दनमलजी के यहां आए।

जब कुन्दनमल ने उनके पास दो लाख रुपये देखे तो उसकी आंखें भूखे शेर जैसी दहक उठीं। वह इन रुपयों को प्रश्न-भरी दृष्टि से देखता रहा।

बड़े बाबू उसके मन का भेद समझ गए। वे अंगड़ाई लेकर बोले, "आप इन रुपयों को देखकर चकित क्यों हो रहे हैं ? ये बहुत अधिक रुपये नहीं हैं। ये मेरे जैसे आदमी के लिए बहुत कम हैं। फिर मैं जो नया व्यापार शुरू करने जा रहा हूं, उसमें साल का छः लाख का लाभ है।"

"क्या करने जा रहे हैं ?"

"यह मेरी गुप्त बातें हैं। क्या आप इसे ठीक समझते हैं कि अपने व्यापार की गुप्त बातें दूसरों को बता दी जाएं ?"

"नहीं।" उसने एक विद्यार्थी की तरह कहा।

"चतुर व्यापारी वही है जो अपनी योजनाओं को कार्यान्वित किए बिना अपनी पत्नी को भी न बताए। क्योंकि ये स्त्रियां शेखी के मद में मर्दों की बातें खूब रस ले-लेकर दूसरों को सुनाती हैं। ऐसा करने में उन्हें आनन्द के साथ-साथ गौरव भी होता है।"

"आप ठीक कहते हैं।"

"मैं आपको क्या बताऊं ? पेन्सिल की सोल एजेन्सी की बात पक्की हो चुकी थी। भारत में जर्मनी पेन्सिलें केवल मैं ही मंगाता, पर एक दिन बातों ही बातों में मैंने अपनी पत्नी को वह राज़ बता दिया। पत्नी ने अपनी एक भायली को कह दिया। नतीजा यह निकला कि वह एजेन्सी दूसरा व्यापारी मारकर ले गया। उसमें साल की पचास हज़ार की नेट इन्कम थी।"

"मैं आपकी बात को समझता हूं।"

"क्यों नहीं। आपने स्वयं इन जंगलों को आबाद किया है। हाथ से खेतों का सीना चीर-चीरकर सोना निकाला है। भगवान आपके व्यापार को बहुत समृद्ध करें।"

इतना कह उन्होंने खिड़की की राह अनंत आकाश को देखा। आकाश निर्मल था। कहीं-कहीं कोई पक्षी उड़ता हुआ दीख जाता था।

वृन्दनमल ने उनकी गंभीरता को तोड़ते हुए कहा, "आप कुछ हमें भी काम बताइए न ?"

"ज़रूर-ज़रूर।"

फिर बहुत देर तक बातचीत होती रही। बातचीत का मुख्य विषय था, व्यापार द्वारा पैसों की वृद्धि किन सुलभ तरीकों से हो सकती है। बड़े बाबू अत्यन्त नाटकीयता से सफल योजनाओं पर विस्तारपूर्वक बताते थे, उनकी योजनाओं को सुनकर ऐसा प्रतीत होता था कि वे किसी भी मुल्क के सफल योजना मंत्री बन सकते हैं। उनके बोलने का ढंग भी प्रभावशाली था जो ईश्वर-प्रदत्त ही हो सकता है।

उनकी आसाम-यात्रा बड़ी सफल रही।

लाख मना करने के बावजूद भी पद्म ने आज फिर स्नान कर लिया और वह मंदिर में पूजा करने चली गई। धाय मां ने उसे बहुत रोका पर परिणाम कुछ भी नहीं निकला। वह अपने काम में दृढ़प्रतिज्ञ की तरह लगी रही और उसने आज की पूजा विधिवत् समाप्त कर ली। क्योंकि उसे पूरा विश्वास हो गया था कि वह अब दो-चार दिन की मेहमान है और इस अवधि में उसे पवित्र होकर ईश्वर से प्रार्थना करनी चाहिए ताकि उसके पापों को ईश्वर क्षमा कर दे। उसे उन्माद-सा छा गया था, इसलिए वह एकदम कमज़ोर होते हुए भी जवान घोड़ी की तरह काम कर रही थी। उसकी फुर्ती और चुस्ती देखकर सारे नौकर-नौकरानियों को विस्मय हो रहा था।

पूजा से निवृत्त होकर वह गीता का पाठ करने बैठी।

तभी रखड़ी आ गई।

"कैसी हो ?" पद्म ने प्रसन्न मुद्रा में पूछा।

"अच्छी हूं बहूजी।" उसने विनम्रता से उत्तर दिया, "आपका क्या हाल है? मैंने सुना था कि आपकी तबियत बीच में बहुत खराब हो गई थी।"

"हां, हां! खराब क्या, मरने चली थी पर मुझ जैसी स्त्री की सांस भी जल्दी से नहीं निकल सकती। कर्म के भोग भोगे बिना यहां से कोई नहीं जा सकता। मुझे दो-चार दिन और भोगने हैं।" वह इस मृत्यु की बात को इस सहज मुद्रा में कह रही थी जैसे वह कोई साधारण बात कह रही हो; जैसे मरने को उसने दर्पपूर्ण उत्सव समझ रखा हो।

"भगवान आपको चिरायु रखे।"

"भगवान मुझे नहीं, तुम्हें चिरायु रखे।" उसने चिढ़कर कहा। उसका स्वर तेज़ था जिससे वह सहम गई।

रखड़ी विचारमग्न खड़ी रही।

पद्म उसके समीप आकर बोली, "मुझे मालूम है कि तुम यहां से क्यों चली गई? मुझे टी० बी० है न, मैं पापिन हूं न?"

"अरे आप·······?"

"खबरदार! झूठ बोलने की कोशिश की तो ठीक नहीं रहेगा। मैं सब जानती हूं। कल गीता यहां आई थी। मैंने उससे सब पूछ लिया है। वह बड़ी दुष्ट और दूसरों को पीड़ा देनेवाली औरत है। उसे दूसरों को पीड़ा देने में आनन्द आता है। युद्ध में उन्मत्त हुए सिपाही की तरह वह दूसरों की गन्दी-गन्दी बातों को प्रकट करती है। वह बड़ी चतुर है। उसने तुम्हारी बहुत निन्दा की और मुझे बताया कि रखड़ी कह रही थी कि मैं एक कुलटा हूं, मैंने उसके पति से मिल लिखवाकर उसे बर्बाद कर दिया। क्या तुमने ऐसा कहा था?"

रखड़ी का मुख सफेद हो गया।

"नहीं, मैंने ऐसा कुछ भी नहीं कहा।"

"वह बड़ी चतुर है। वह अपने मन की बात दूसरे के माध्यम से करती है जिससे वह निर्दोष कहलाती रहे।"

रखड़ी ने आंखों में आंसू भरकर डरते हुए कहा, "मैंने कुछ भी नहीं कहा। मैं एकदम निर्दोष हूं। मैं आपकी सौगन्ध खाकर कहती हूं कि मैं आपके बारे में

कुछ भी नहीं जानती। यह सब उसीके लगाए हुए गन्दे आरोप हैं।"

"उसने मुझे यह भी बताया कि तुम मुझसे घृणा करती हो। हर धार्मिक और सती स्त्री को कुलटा से घृणा करनी ही चाहिए। अगर उसके पास उसका कोई प्रमाण हो तो समाज व धर्म भी उसे अपने से अलग कर लेता है। तुम तो एक साधारण स्त्री हो। मैं इसे बुरा नहीं मनाती हूं। अब मैं दो-चार दिन की मेहमान हूं। मेरी बदनामी भी हो गई तो मुझे कोई भय नहीं है। पर मुझे दुःख इस बात का है कि यह सब तुम्हारे कारण हुआ है। तुमने ही इसकी गहराई में पहुंचने की कोशिश की। मैं मरते-मरते तुम्हें शाप जरूर दूंगी कि तुमने जिसका नमक खाया, उसकी निन्दा की, उसके घर के भेद को बाहर किया इसलिए तुम्हारी आत्मा को कभी शांति और सुख नहीं मिलेगा।"

रखड़ी घबरा उठी। वह शापित प्राणी की तरह निष्कंप हो गई।

"अब तुम जा सकती हो। मुझे तुम्हारे पर गुस्सा आ रहा है। मैं गुस्से में तुम्हें कुछ बुरा-भला कह दूंगी।"

रखड़ी चली गई।

'सच्ची बात है कि छोटों को मुंह नहीं लगाना चाहिए। इस रखड़ी की आंखों में लोमड़ी की सी धृष्टता चमक रही है।'

वह थोड़ी देर शांत पड़ी रही।

उसकी कुछ परिचित स्त्रियां फिर आईं। इन स्त्रियों से उसे विशेष रूप से चिढ़ थी। क्योंकि ये सब प्रामाणिक रूप से जान चुकी थीं कि कभी पद्म का भगत बाबू से अनुचित सम्बन्ध रहा था, फिर भी वे स्वार्थी स्त्रियां उसकी एक सती नारी से तुलना करती रहती थीं और ईश्वर से हाथ जोड़कर प्रार्थना करती थीं कि प्रभु हमारी दयालु सेठानी को चिरायु रखें। उनकी झूठी बातों से पद्म को सांघातिक पीड़ा होती थी। और वह उन्हें धक्के मारकर निकाल देना चाहती थी पर वह ऐसा सोचकर ही रह जाती थी। उसका साहस उसे ऐन मौके पर जवाब दे देता था कि ऐसा करना सर्वथा अशिष्टता है।

पर आज वह उनके आगमन पर आंखें मूंद कर सो गई। वे स्त्रियां, जिनका पेशा चापलूसी करना था, उसके चारों ओर बैठ गईं और आपस में बातचीत

करने लगीं। उनकी बातों में सत्य का ज़रा भी आभास नहीं था। वे बातें एकदम बनावटी लग रही थीं।

"भगवान ऐसी शुद्ध आत्मा को क्यों कष्ट देता है?"

"क्या दयालु हृदय पाया है। हरएक के प्रति ये दया से भरी रहती हैं।"

"हाथ का ज़रूर उत्तर देती है। जब कभी कोई कुछ मांग ले, इनके दरवाज़े से वह खाली हाथ नहीं जाता है।"

"कुछ स्त्रियां जन्म से ही दाता बनकर आती हैं।"

और पद्म इन सब बातों को सुन-सुनकर अवश हो रही थी। उसे लग रहा था कि वह इन झूठी स्त्रियों को घर से क्यों नहीं बाहर कर देती? वह घृणा से भर उठी। उसने आंखें खोलकर चिढ़े हुए स्वर में कहा, "अब आप जा सकती हैं।"

उन बैठी हुई स्त्रियों पर पहाड़ टूट पड़ा। उनमें जड़ता आ गई और वे एक दूसरे का मुंह देखने लगीं।

"मैंने कहा कि आप सब जा सकती हैं। मेरे सिर में दर्द है और आपको चुप रहने की आदत नहीं है।"

स्त्रियां जिनके चेहरे बाहरी अपमान और उनके आन्तरिक क्रोध से विकृत हो गए थे, चुपचाप चली गईं। कमरे में सन्नाटा छा गया। दूसरे सभी लोग अपने-अपने कामों में व्यस्त थे। ज़ोर-शोर से चर्चा थी कि बड़े बाबू आनेवाले हैं—कल सुबह की गाड़ी से।

पद्म को खून की उल्टी फिर हुई। सारा फर्श खून से भर गया। छितराए हुए खून से अजीबो-गरीब चित्र बन गए।

धाय मां आ गई थी। एक नौकरानी ने मिट्टी से उल्टी को ढक दिया। सबके चेहरे उदास-से लगने लगे। मामीजी भी आ गई थीं। पद्म ने अपने गले का हार धाय मां को देकर कहा, "भगवान की सौगन्ध खाकर कहो कि मैं इस बच्चे को पालूंगी। यह बच्चा मां के होते हुए उसके प्यार से वंचित रहा। शायद बड़ा होकर इसे यह भी मालूम नहीं रहेगा कि मेरी मां कौन थी? पर अब तुम उसे सदा की अपेक्षा अधिक प्यार देना। इसकी सारी ज़िम्मेदारी तुम पर है।"

धाय मां की आंखों में आंसू आ गए।

"तुम सब बाहर चली जाओ। इस कमरे में अन्धेरा कर दो।"

सब उदास-उदास-सी चली गईं। अन्धेरे में उसने श्रीनाथजी के चित्र के समक्ष हाथ जोड़कर कहा, "मैं पतिता हूं। मैंने सतीत्व को कलंकित कर लिया। मैं उस पाप में सुलगती गीली लकड़ी की तरह जलती रही हूं। मुझे अपने स्पर्श से पवित्र करना मेरे प्रभु और मेरे पति की बुद्धि को ठीक रखना, उन्हें क्षमा कर देना क्योंकि उनका मन उनके अपने वश में नहीं है।" और इसके बाद वह निरन्तर रोती रही, रोती रही।

कब उसके प्राण निकले यह कोई नहीं जान सका। जब कमरे में सूर्य की पावन रश्मियों ने प्रवेश किया तब लोगों को यह पता चला कि पद्म के प्राण उसके शरीर से निकल चुके हैं।

फतह बाबू भारत के सबसे बड़े आदमी भले ही न बने हों पर अब उनकी गिनती भारत के प्रतिष्ठित करोड़पतियों में होने लग गई थी। गत उन्नीस वर्ष में उन्होंने हिस्टीरिया के रोगी की तरह येनकेन प्रकारेण रुपये कमाए। आज बड़े बाबू के पास दो काटन मिल्स, चार बाड़ियां, एक ऑयल मिल और कई छोटी कम्पनियां हैं। इसके अतिरिक्त अहमदाबाद की एक बड़ी मिल में उनके बड़ी तादाद में शेयर्स भी हैं।

संतोष अब तरुण हो चुका था।

पितृ स्नेह से वंचित संतोष का जीवन सूखे पत्ते की तरह हवा के झोंके के साथ इधर-उधर उड़ता रहा। मां की उसे स्मृति ही नहीं है। उसने बी० ए० पास कर लिया था और अब एम० ए० में पढ़ रहा था। घर में ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं था जो उसे अपने प्यार में केन्द्रीभूत कर सके। वह प्यासे पंछी की तरह निरुपाय-सा अकेला रहता था। पिताजी यदा-कदा उसे एक अनजाने शिक्षक की तरह पूछ लेते थे, "पढ़ाई ठीक चल रही है? क्यों, आगे पढ़ने की इच्छा है या नहीं? तुम्हें अधिक पढ़ने से कोई लाभ नहीं होगा क्योंकि आखिर तुम्हें व्यापार ही संभालना है।" इन वाक्यों के अतिरिक्त कुछ भी नहीं।

मैं उसका सहपाठी था लेकिन बी० ए० तक पहुंचते-पहुंचते दो वर्ष पीछे रह गया। क्योंकि मेरी जासूसीपने की प्रवृत्ति विशेष गहरी होती गई, फलस्वरूप मैं पढ़ाई से अधिक जासूसी करने लगा। आज वह फिफ्थइयर में था और मैं थर्ड इयर में। अस्तु।

इसके अतिरिक्त संतोष मुझसे हार्दिक स्नेह रखता था। अपने दिल के दुःख-दर्द से वह मुझे सदा परिचित कराता रहता था और कहता था कि उसे हर क्षण कुछ शून्यता-सी महसूस होती रहती थी। संयोग समझिए कि इतनी सम्पन्नता के बाद वह किसी भी लड़की को अपनी ओर आकर्षित नहीं कर

पाया। इसका कारण था—उसकी गम्भीरता और कम बोलना। लड़के-लड़कियों की राय थी कि वह अपने पैसे के मद में गर्वीला बना रहता है। कुछ आधुनिक युवतियां जिन्होंने उसे आकर्षित करना चाहा, उन्हें उसने लिफ्ट नहीं दी क्योंकि वे प्यार की ऐसी रटी-रटाई शब्दावली बोलती थीं जिसमें उनके हृदय की कृत्रिमता स्पष्ट रूप से झलक जाती थी और यह पता लगते किंचित् भी देर नहीं लगती थी कि वे प्यार जैसी भावात्मक संज्ञा से कोसों दूर हैं। वे चतुर व्यापारियों की तरह किसीसे मित्रता करके अपनी वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति करना चाहती हैं ताकि आमोद-प्रमोद का समय विलासी परम्पराओं के साथ व्यतीत हो। दूसरा संतोष को ऐसी लड़कियां अच्छी भी नहीं लगती थीं जो दूसरे लड़कों से खुलकर बोलती हों।

ऐसे वातावरण में संतोष का जीवन एक निश्चित परिधि में घूमता रहा, फलस्वरूप वह अन्तर्मुख होता गया।

धाय मां बूढ़ी हो गई थी। कुछ दिन पहले वह एक उपेक्षिता थी बड़े बाबू की; पर संतोष ने उसे पुत्र-स्नेह दिया और उसे पांच हज़ार रुपये हठ करके पिताजी से दिलवाए और उसे अपने देश भेज दिया ताकि वह अपना शेष जीवन सुख से व्यतीत करे।

हालांकि बड़े बाबू को उसका यह हठ ज़रा भी पसन्द नहीं आया। उसमें उन्हें न्याय की प्रतीति नहीं हुई बल्कि वे कहते रहे, "आदमी को अपने श्रम की कीमत मिलती है और जब वह श्रम के अयोग्य हो जाता है तो उसे छुट्टी दे दी जाती है। इसमें अधर्म का सवाल कैसे उठता है?"

"पर यह हमारी नौकरानी नहीं, मेरी मां है। मैंने इसका दूध पिया है। धाय मां का ओहदा असली मां से भी बड़ा होता है। मैं इसे पांच हज़ार रुपये दूंगा ही ताकि यह अपना शेष जीवन शांति से गुज़ार सके।"

बड़े बाबू ने आखिर संतोष की बात मान ली। उसी दिन उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि बच्चा दूसरे वातावरण से प्रभावित हो रहा है, उसे शीघ्र ही अपनी दुनिया में सम्मिलित कर लेना चाहिए।...फिर वे अपने ही विचार पर हंसे। क्योंकि उन्हें तुरन्त ख्याल आया कि इस उम्र में प्रत्येक युवक उदारता और

विद्रोहात्मक दृष्टि से ही सोचता है।

सम्पत की चरित्र-कथा इस तरह बढ़ी कि बड़े बाबू ने उसकी तमाम सम्पत्ति हड़प ली और उसे अफीमची बना दिया। अब वह उस बूढ़ी नौकरानी के साथ चुहलबाजियां करता हुआ अपना शेष जीवन गुजार रहा है। वह एकांत में बड़ी बाड़ी के एक कमरे में पड़ा रहता है। उसे देखकर किसान के उस बैल की याद आ जाती है जो उम्र-भर खेत जोतता है और बाद में जब वह खेत जोतने के काबिल नहीं रहता तब उसे भूखा व प्यासा छोड़ दिया जाता है। वह रात-दिन अन्धकार से घिरे उस कमरे में पड़ा रहता है।

भोर का समय था।

बाल रवि की रश्मियां संसृति से अपना नाता-रिश्ता जोड़ चुकी थीं।

बड़े बाबू बैठकखाने में बैठे हुए किसी कांग्रेसी नेता से बातचीत कर रहे थे। स्वतन्त्रता के बाद कई व्यापारी गांधीजी के भाषण से अत्यन्त प्रभावित हुए और उनके आह्वान के फलस्वरूप वे देश-सेवा में उतर पड़े। या यों कहिए कि उनका हृदय-परिवर्तन हो गया। ऐसे तुरन्त बदले हुए हृदय के नेता थे श्री मोहनलाल। वे बड़े बाबू के पास चंदा मांगने आए थे। किसी गांधी पाठशाला का निर्माण होने जा रहा था।

बड़े बाबू उनकी बातें ध्यान से सुनते रहे और अन्त में बोले, "आप जैसे व्यक्ति मेरे पास मांगने आ गए हैं। कांग्रेस के नेता हैं आप। बस आप हुक्म कीजिए मैं उतने का चैक दे दूंगा।"

"दस हज़ार।"

"मिस्टर बोस!" बड़े बाबू ने ज़ोर की आवाज़ लगाई। चश्मा लगाए श्रीधर बोस ने प्रवेश किया।

"बोस बाबू! आपको ग्यारह हज़ार का चैक दे दीजिए।"

बोस बाबू चले गए।

थोड़ी देर वे दोनों घुट-घुटकर बातें करते रहे और बाद में बड़े बाबू स्नानादि करने चले गए। चलने के पहले बड़े बाबू बोले, "मेरा परमिट गड़बड़ी में नहीं पड़ना चाहिए।"

संतोष अपने कमरे में बादाम का हलुवा और पापड़ खा रहा था। बड़े बाबू को चाय से बड़ी चिढ़ थी और उनका कहना था कि चाय पीने से आदमी की सेहत और दिमाग दोनों खराब हो जाते हैं।

पूजा से निवृत होते ही बसंतलाल का बेटा हनुवंतलाल आया। उनके सारे रुपयों में से बड़े बाबू ने एक लाख ही लौटाया था और बाद में कुछ दिन उन्हें टालते रहे और अंत में वे एकदम मुकर गए। लेकिन हनुवन्त जब कभी भी आता था वह बड़े बाबू से तकाज़ा ज़रूर करता था।

"क्यों हनुवन्त, कैसे आना हुआ ?" बड़े बाबू आते ही पूछते।

"सेठजी, रुपये ?"

वे निर्दयी की तरह लापरवाही की मुस्कान बिखेरकर बोलते, "तुम लोग पागल हो गए हो ? तुम लोगों ने मुझे क्या समझ रखा है ! क्या मैं रुपये बनाता हूं ? मैं किसी टकसाल का क्या मालिक हूं ?......"

"हम गरीब हैं। आप...?"

"सुनो हनुवन्त !" बड़े बाबू गम्भीर होकर कहते। "यह कहने का बहुत पुराना ढंग हो गया है। गरीब हैं, भूखे हैं, मजबूर हैं, जैसी शब्दावली का अब इस युग में कोई महत्त्व नहीं रहा। इसमें छिपे खोखलेपन से सभी परिचित हो गए हैं। और व्यापार में इन शब्दों का उतना ही प्रभाव रहता है जितना जल्लाद के समक्ष क्षमा और जीवनदान जैसे शब्दों का। मैं तुम्हें अंतिम बार कह रहा हूं कि व्यर्थ में मेरा और अपना समय बर्बाद न करो। मैंने बता दिया है कि बैंक के फेल होने में मेरा कोई हाथ नहीं है। मैंने सिर्फ तुम्हारी विधवा बुआ का ख्याल करके एक लाख रुपये अपनी जेब से दिए हैं।"

हनुवंत सदा की तरह, आज भी चला गया।

घटना इस तरह है कि आज से लगभग दस वर्ष पहले बड़े बाबू ने एक बैंक खोला था। उस बैंक में जब जनता के काफी रुपये जमा हो गए तब उसे फेल कर दिया। उसी बैंक में बसंतलाल को पूछकर बड़े बाबू ने बसंतलाल की बहिन के सारे रुपये जमा करा दिए थे। इस बैंक के फेल होने से बड़े बाबू को लगभग बीस-तीस लाख का लाभ हुआ क्योंकि उन्होंने कई झूठी कम्पनियों का

निर्माण करके सारा रुपया हड़प लिया। बाद में उन्होंने दया करके एक लाख रुपये बंसतलाल को दिए। इसका एक कारण और भी था कि बसंतलाल ने अपनी बहिन को बड़े बाबू के घर के आगे अनशन पर बिठाने की धमकी दे दी थी। लेकिन धीरे-धीरे लोग उनकी चालबाजियों को समझ गए और उन्हें अत्यन्त बेईमान भी कहा।

बड़े बाबू उस कांड में साफ बच गए। उनके मैनेजर को हथकड़ियां पड़ गईं। मध्यम वर्ग के लोग बैंक के आगे खूब रोए-चीखे पर परिणाम कुछ भी नहीं निकला। कहते हैं—गरीबों की आहों से तख्त के तख्त पलट गए हैं पर बड़े बाबू उन आहों से और फलीभूत हुए। उनका व्यापार दिन दूना और रात चौगुना बढ़ता गया।

बड़े बाबू वापस काम में व्यस्त हो गए।

यांत्रिक मानव की तरह हर घड़ी काम-काज।

मनुष्य की यौन भूख कभी भी तृप्त नहीं होती। पर बड़े बाबू इन वर्षों में यह भी भूल गए कि औरत क्यों होती है? जब पद्मा की मृत्यु हुई तब वे चीख-चीखकर नहीं रोए और न ही वे पागलों की तरह गुमसुम बैठे रहे; केवल उन्होंने इतना ही कहा, "कर्म की बात निराली होती है। हर व्यक्ति यहां अपना देना-पावना चुकाकर चला जाता है। पश्चात्ताप व करुणा विलाप करने से मृतक की आत्मा कलपा करती है।"

और उसी रात उन्होंने फोन पर एक सौदे की पांच मिनट तक बातें कीं और उसमें भी उन्होंने दांव नहीं हारा।

किंतु गत तीन वर्षों से वे कभी-कभी अपने जीवन से जब एकदम ऊब जाते हैं और उन्हें एक विचित्र शून्यता सताती है तब वे रात के समय बहू बाज़ार की एक तवायफ के यहां थोड़ी देर के लिए चले जाते हैं। तवायफ का नाम वहीदा है। बड़े बाबू उसे पांच सौ रुपया महावार देते हैं।

इसके साथ बड़े बाबू आजकल कट्टर वैष्णव हो गए हैं। मंदिरों में जाना और नित्य धर्म-कर्म करना। बड़े-बड़े अन्नकूट कराना तथा महन्तों का प्रचार-प्रसार करना।

आज भी उनके बंगले में राजस्थान के कोई महन्त आनेवाले थे। बड़े बाबू ने सारे बंगले को साफ कराया और खुद दो-तीन दिन के लिए व्यापार से फुर्सत लेनी चाही।

संतोष को उन्होंने बुलाया।

संतोष आकर उनके पास चुपचाप बैठ गया।

"मैंने तुम्हें इसलिए बुलाया है कि तुम तीन दिन तक जरूरी कागजात देखकर मुझे बताते रहना।"

कागजात बताते रहने से सीधा तात्पर्य यह था कि बड़े बाबू ने अभी तक यही सोच रखा था कि वे अपने बेटे से बड़ी कूटनीति से काम लेंगे। ताकि धन जैसी अत्यन्त आकर्षक वस्तु उनके बच्चे को उन जैसा स्वार्थी न बना दे। एक बात और भी थी। बड़े बाबू को किसीपर पूरा विश्वास नहीं होता था। अतः वह यही चाहते थे कि सारा काम वे स्वयं देखे तथा सारी जायदाद उन्हीं-के नाम पर रहे किन्तु इधर कुछ ऐसी दिक्कतें तथा परेशानियां उत्पन्न हो रही थीं कि वे अपने बच्चे को विवश होकर कुछ कम्पनियों का मालिक व हिस्सेदार बनाने जा रहे थे अथवा उन्होंने ऐसा सोच लिया था। इन्कमटैक्स विभाग इसका सबसे मूल कारण था। उन्होंने सोच लिया था कि उनका बेटा उनका भागीदार और उनकी कम्पनियों का मालिक होते हुए भी कुछ भी नहीं जान पाएगा। वे उससे इस तरह का काम लेंगे कि उसे धन जैसी भयानक वस्तु अधिक प्रभावित ही नहीं कर पाएगी।

संतोष ने कहा, "यह आज एकाएक मुझपर क्यों बोझ डाल रहे हैं ?"

"क्यों क्या ?" बड़े बाबू का स्वर कठोर हो गया, "आखिर अब तुम बच्चे नहीं हो। जवान बेटे को अपने बाप को सलाह देने के साथ-साथ व्यापार में भी जुट जाना चाहिए।"

"लेकिन······?"

"समझा।" बड़े बाबू का स्वर एकदम बदल गया, "इन निकम्मी डिग्रियों के कारण तुममें भी निकम्मापन आ रहा है। एम० ए०, बी० ए० पास करने से तुम्हें क्या लाभ होगा ? मैं सिर्फ तुम्हारा दिल न दुखे, इस वास्ते अबतक कुछ

बोल नहीं रहा था। वर्ना चार-पांच क्लास की शिक्षा ही तुम्हारे लिए बहुत होती। पढ़ना जितना महत्त्व नहीं रखता, उतना गुणना महत्त्व रखता है। कोई भी काम-काज सीखने से आता है। मैं चाहता हूं कि अब तुम लक्ष्मी मिल्स तथा वैष्णव मिल्स दोनों का काम संभाल लो। आखिर जीवन में तुम्हें किसीकी नौकरी न करके व्यापार ही करना है। फिर आज जैसे जमाने में दूसरों को व्यापार की गुप्त बातें नहीं बताई जा सकतीं और न ही उनपर अत्यन्त विश्वास किया जा सकता। ऐसी स्थिति में तुम्हें मेरा साथ देना ही पड़ेगा।"

'पिताजी ठीक ही कह रहे हैं।' ऐसा संतोष ने मन ही मन सोचा। 'आखिर मुझे एक दिन इस विपुल सम्पत्ति का स्वामी होना ही है।'

"ये डिग्रियां मनुष्य में झूठे अहम् की सर्जना करती हैं। एक व्यापारी को इन सबसे एकदम दूर रहना चाहिए। क्योंकि व्यापार का पहला उसूल है—विनम्रता और बड़े से बड़े अपमान को मधुर मुस्कान के द्वारा पी जाना।··· अपने व्यापार के छोटे से छोटे और बड़े से बड़े काम को समय पर अपने हाथों से खुद करना।"

"मैं कल से दफ्तर चला जाऊंगा पर मैं उन कामों के लिए सर्वथा नया और अयोग्य हूं।"

"मेरे बेटे!" वे उपदेशक की तरह गंभीर होकर बोले, "जब मैं घर से यहां आया था तब मेरे लिए खाने के लाले पड़े हुए थे। सुबह-शाम की चिंता रहती थी। कोई हाथ पकड़कर सहारा देनेवाला नहीं था। इतना भी जानता नहीं था कि व्यापार का क-ख-ग क्या होता है, पर एक लगन थी, एक धुन थी। रात-दिन बस एक ही वाक्य मेरे मस्तिष्क में गूंजता था कि मैं खूब पैसा कमाऊंगा। इतना पैसा कि आज जो लोग मुझे गिरी हुई नजर से देखते हैं वे ही मुझे आदर की नजर से देखें। धुन और परिश्रम की बदौलत आज मेरे पास क्या नहीं है। मेरे वे साथी जो बचपन में मेरा अपमान किया करते थे आज मेरे सहारे पड़े रहते हैं। मुझे हाथ जोड़ते हैं। मेरा थूक अपनी हथेली में लेने को तत्पर रहते हैं। कभी-कभी मैं उनसे बदला लेता हूं। उनका जान-बूझकर अपमान करता हूं और वे अपमान को इस तरह हंसकर पी जाते हैं जैसे मैंने जान-

बूझकर उनका अपमान नहीं किया है। सचमुच, तब मुझे आनंद आता है। एक ऐसा खुमार मुझपर छा जाता है जैसा किसी विजेता के मन पर छाता है। क्योंकि जीवन में लगातार विष के घूंट पीनेवाले को कभी-कभी दूसरों को भी विष पिलाने में आनंद ही आता है। अरे, मैं बहक गया हूं। मैं तुम्हें कह रहा था कि ये डिग्रियां आदमी को निकम्मा बनाती हैं। आदमी इनके बोझ से अपने व्यक्तित्व के रंग-ढंग अवश्य बदल लेता है पर थोड़े ही दिनों में वह उनके बोझ से दब भी जाता है। मेरे कहने का मतलब यह है कि एम० ए० पास को आजकल नौकरी भी नहीं मिलती है। तुम मेरे इकलौते बेटे हो अतः मैं खामोश हूं वर्ना मैं दस कक्षा के आगे एक कदम भी नहीं रखने देता।"

"मैं कल से काम संभालने की चेष्टा करूंगा।" उसने दबे स्वर में कहा।

"यह बात हुई न !" बड़े बाबू प्रसन्नता में चिल्ला पड़े, "मैं अब महन्तजी की सेवा में व्यस्त रहूंगा। वैसे तो व्यापार के अनेक झंझटों में घड़ी-भर भी ईश्वर की आराधना नहीं होती है पर जब महाराजश्री आ ही गए हैं तो पुण्य-लाभ कर ही लेना चाहिए।" कहकर बड़े बाबू कपड़े पहनने लगे। नौकर ने उन्हें दूध लाकर दिया। वे दूध पीकर बोले, "संतोष ! कल से तुम बंगले में ही रहना। यहां रहना तुम्हें शोभा नहीं देता। क्योंकि बिड़ला-डालमिया के परिवार आजकल शाही ठाठ से रहते हैं। मेरी इच्छा यह है कि हमें भी उसी दबदबे से रहना चाहिए। हम किसीसे कम थोड़े ही हैं।"

संतोष खुद भी यह चाहता था। यहां हर घड़ी बड़े बबू का अंकुश रहता था और यह उनके होते हुए घर में आना पसंद भी नहीं करता था। सच कहूं, उनके व्यक्तित्व का आतंक भी एक सीमा तक उसपर छाया हुआ था। इसलिए संतोष ने उनकी यह बात शीघ्र ही स्वीकार कर ली। और बड़े बाबू उसे यहां से इसलिए बंगले भेजना चाहते थे कि संतोष उनके उन गुप्त कार्यों से परिचित न हो।

उसके स्वीकार करते ही बड़े बाबू सम्पत के पास गए। सम्पत अफीम के नशे में मग्न था। बूढ़ी नौकरानी उससे हंसकर बोल रही थी।

सम्पत उसे कह रहा था, "मैंने बीती को बिसरा दिया है। पर यह सच

है.......।"

बड़े बाबू दरवाज़े के बाहर ही रुक गए।

सम्पत बोलता ही गया, "यह सच ही नहीं, सप्रमाण भी है कि तुमने बड़े बाबू के संकेत पर मुझे लूटा है। तुमने उनसे रुपये लेकर मुझे अपने जाल में फंसाया और अफीम खिलाना आरंभ करा दिया। ओह! तुम एक कुशल नटी हो। पर मैं यह जानना चाहता हूं कि बड़े बाबू ने तुम्हें कितना रुपया दिया है, ऐसा नीच और घृणित काम करने का।"

"तुम्हें भ्रम है सम्पत! मैं तुम्हें हृदय से चाहती हूं। क्या कोई स्त्री उम्र-भर किसी पुरुष के संग पालतू पशु की तरह बंधकर रहना चाहेगी जबकि उसे केवल मेहनताना एक बार का ही मिले। तुम बिलकुल बुद्धू हो। तुम कैसे दलाली करते थे?"

"देखो सीता, तुम हर बात में झूठ बोलती हो। क्या तुम्हें मुझे बर्बाद करने के लिए बड़े बाबू ने नहीं कहा था? अगर ऐसा नहीं है तो तुम्हें बड़े बाबू ने अब तक क्यों रख छोड़ा है जबकि वे हर बूढ़े नौकर को छुट्टी दे चुके हैं? पता नहीं, तुमने मुझे जहर क्यों नहीं दिया?"

वह हंसकर सम्पत के सिर पर हाथ फेरने लगी, "तुम सचमुच बुद्धू हो। दलाली जैसा चतुराई का धंधा तुम किस तरह सफलतापूर्वक कर लेते थे, यह मेरे लिए एक आश्चर्य का विषय है। तुम्हें तो किसी दूकान का तकाजागीर होना चाहिए। क्योंकि एक तकाजागीर ही ऐसा सीधा आदमी होता है जो मालिक के कहने से तकाज़ा ले आता है और उसमें उसकी ज़रा बुद्धि खर्च नहीं होती।" और सीता हाथ जोड़कर, आंखें बन्दकर ईश्वर से प्रार्थना करने लगी। वह आंखें खोलकर बोली, "हे राम! तुमने मुझे अपना भी दिया तो कितना बेगाना! मुझपर विश्वास ही नहीं करता। सुनो सम्पत! अगर, भविष्य में तुमने इस तरह की कठोर व नीच बातों से मेरा दिल तोड़ा तो मैं तुम्हारे नज़दीक नहीं फटकूंगी।"

"तुम मुझे ऐसी धमकी देकर ठंडा कर देती हो। सीता! एक बात पूछूं? सौगन्ध खाओ कि सच-सच कहोगी?"

"हां।"

"मुझसे तुमने खूब रुपया ऐंठा है, वे रुपये तुमने कहां जमा कर रखे हैं? मेरी इच्छा है कि उन रुपयों को मिलते ही मैं तुम्हें लेकर कहीं और चला जाऊंगा ताकि हम सुख-शांति के साथ निर्भयतापूर्वक रहें।"

"बावले। मेरे पास कुछ भी नहीं है।"

"झूठ।"

बड़े बाबू ने खंखारा। वे दोनों चौंक गए।

सीता तेज़ स्वर में बोली, "इन अफीमचियों को व्यर्थ की बातें करने में बड़ा आनन्द आता है। बोलना शुरू करने के बाद चुप होने का नाम ही नहीं लेते। बस बोलते ही जाते हैं।"

"तुम आजकल धैर्यशील श्रोता बनती जा रही हो!" बड़े बाबू ने कठोर स्वर में कहा।

"नहीं-नहीं, बड़े बाबू, यह बोलता ही रहता है।"

बड़े बाबू ने सम्पत पर दृष्टि डाली। वह मुंह ढककर सो गया था। बूढ़ी सीता थरथर कांप रही थी।

बड़े बाबू उसपर तेज नज़र फेंकते हुए बोले, "तुम सठिया रही हो। अब तुम्हें मैं जल्दी से जल्दी छुट्टी दूंगा।"

बड़े बाबू के बाड़ी से बाहर निकलते ही सीता आगबबूला हो उठी। कड़कती हुई वह बोली, "सुना, तुम्हारे कारण मेरी नौकरी भी जाएगी। लाख बार कह दिया कि सोच-समझकर बोला करो पर तुम बस बोलने लगते हो तो बोलते ही जाते हो।"

सम्पत ने फिर गर्दन उघाड़ी और बोला, "तुम बहुत चतुर हो। मुझे अफीम खिला-खिलाकर निकम्मा कर दिया और प्रेम का स्वांग रच-रचकर तुमने मुझे लूट लिया और अब इस उम्र में तुम मेरा साथ देने को तैयार नहीं हो!" वह दर्द-भरी आह छोड़कर बोला, "तुममें एक चतुर छलिया के सारे गुण हैं। एक तरफ तुमने मुझे भी लूटा और दूसरी तरफ बड़े बाबू से भी मेहनताना लिया। क्या तुम्हें परलोक का भय नहीं है? हे ईश्वर, इन सब

इन्सानों को क्या हो गया है ? क्या इन्हें मृत्यु के बाद तुम्हारे दण्ड का भय नहीं ? लगता है कि तुम्हारे भयानक दण्ड का भय अब इन प्राणियों के मन से दिन-प्रतिदिन दूर होता जा रहा है ।" कहकर उसने अपनी मुद्रा एक प्रार्थना में निमग्न भक्त की तरह बना ली ।

सीता ने उसे देखकर नाक-भौंह सिकोड़ा और चल पड़ी ।

उस रात बड़े बाबू नहीं सो सके । उन्हें आज फिर नई योजना सता रही थी । जैसी कि उनकी वर्षों की आदत थी, वे किसी भी कार्य को कार्यान्वित करने के पूर्व उसके बारे में अत्यन्त धैर्य से सोचते-विचारते थे । प्रारम्भ से लेकर परिणाम तक विश्लेषण वे बेखूबी करते थे जिससे उन्हें कभी-कभी रात-रात-भर नींद नहीं आती थी पर इससे उनकी सेहत पर ज़रा भी बुरा असर नहीं हुआ । बल्कि उनकी तन्दुरुस्ती दिन-प्रतिदिन ठीक होती गई । प्रकृति भी विचित्र है । बड़े बाबू अपनी सेहत के प्रति जितने लापरवाह रहते थे, वे उतने ही निखर रहे थे । इस निखार के कारण ही सम्पत यह कहता रहता था कि बड़े बाबू के पास युवतियां आती रहती हैं । और उसका रूढ़िवादियों की तरह यकीन हो गया था कि यदि आदमी को जवान स्त्री मिलती रहे तो वह बूढ़ा नहीं हो सकता । वस्तुत: इस वाक्य का प्रयोग अमूमन शिक्षित व अशिक्षित लोग साधारण वार्तालाप में प्रसंगवश करते हैं । बूढ़े लोग इस तरह के वाक्य कहते समय अपनी गहन विद्वत्ता का परिचय देते हुए लगते हैं ।

आज भी बड़े बाबू नहीं सो पाए । महाराजश्री का भव्य स्वागत निरन्तर होना चाहिए, इससे लेकर उनसे कैसे रुपये ऐंठे जाएं, तक की योजना को उन्होंने एक कुशल योजना-मन्त्री की तरह सोच लिया । उन्हें यह भी मालूम था कि महाराजश्री बम्बई में क्या करते हैं । गत वर्ष उनकी भेंट महाराजश्री के एक हाजरिये से हो गई थी । हाजरिया गोस्वामी जाति का था । उसका कहना था कि वह भी उतना ही पवित्र और पूजनीय है जितने महाराजश्री, क्योंकि

उन दोनों का रक्त-गौरव और जातीय गौरव एक ही है; पर भाग्य के कारण वह उनका हाजरिया है। वह हाजरिया, जिसकी बेटी का विवाह होनेवाला था, बड़े बाबू से एक हजार एक रुपया ले गया और उसके बदले उन्हें महाराजश्री की व्यक्तिगत गुप्त बातें बता गया। उसकी बातें सुनकर बड़े बाबू का हौसला बढ़ा और उन्होंने महाराजश्री को एक बार पधारने का अनुरोध किया। करीब दस बार अनुरोध करने के बाद महाराजश्री आने को तैयार हुए और पधार भी गए।

बड़े बाबू इसी तिकड़म में थे कि कुछ ऐसा आयोजन किया जाए जिससे महाराजश्री पर निकटतम निजत्व का प्रभाव पड़े ताकि वे उन्हें उनकी व्यक्तिगत दुर्बलताएं जानने का संकेत दे सकें।

हालांकि बड़े बाबू अच्छी तरह जानते थे कि महाराजश्री जब बम्बई में रहते हैं तब एक बोतल शराब तथा एक स्त्री का रात्रि के भोजन व पानी की तरह सेवन करते हैं। उनकी मोटरें सड़कों पर चीखती-चिल्लाती हवा से बातें करती रहती हैं और अर्थाभाव के कारण महाराजश्री यदा-कदा मंदिर की पूंजी को गुप्त रूप से बेचते रहते हैं। क्या ही अच्छा हो कि उसमें से कुछ हीरे-जवाहरात ही उनके हाथ लग जाएं? कल रात उन्हें इस बात का सख्त अफसोस रहा कि वे निरन्तर प्रयास के बावजूद बातचीत में ऐसा कोई भी संकेत नहीं दे पाए जिससे उनका आंतरिक मंतव्य प्रकट होता हो। लेकिन फिर भी वे इस बात का आभास उन्हें ज़रूर कराएंगे, ऐसी वे दृढ़ प्रतिज्ञा कर चुके हैं।

सचमुच तीन दिन के भीतर-भीतर बड़े बाबू ने उस 'गोपी वल्लभ' को यह भान करा ही दिया कि वे उनके बारे में सब कुछ जानते हैं। बड़े बाबू ने शहर की प्रतिष्ठित घराने की युवतियों को 'अन्नकूट' में बुलाया। सुन्दर युवतियों पर महाराजश्री के चरण फिसलते गए और अन्त में उन्हें यह भी मालूम पड़ गया कि महाराजश्री कुछ ऐसी गोलियों का सेवन करते हैं जिससे उन्हें नशा-सा छाया रहता है।

चौथे दिन की बिदाई के समय महाराजश्री ने बड़े बाबू को अपने यहां आने का निमन्त्रण दे दिया। निमन्त्रण पाकर बड़े बाबू के चेहरे पर सफल

षड्यंत्रकारी जैसी प्रसन्नता छा गई।

'मुझे वह दस करोड़ की कम्पनी खरीदनी है।' उन्होंने मन ही मन सोचा और उनकी आंखों में कभी न बुझनेवाली प्यास जाग उठी।

रात को उन्होंने संतोष के साथ खाना खाया। बाप-बेटे बड़ी देर तक मौन रहे। दोनों अपने-अपने विचारों में तन्मय। अन्त में बड़े बाबू ने ही संतोष से कहा, "मैं कल सप्ताह-भर के लिए बाहर जा रहा हूं। मिस्टर मिल्टन साहब अपनी कम्पनी बेचना चाहते हैं। वे तीन करोड़ नगद और सात करोड़ की जमानत चाहते हैं।"

"मुझे आप हुक्म कीजिए।" संतोष ने विनम्रता से कहा।

"आह! तुम कैसे मेरे बेटे हो? तुमने वास्तव में इन डिग्रियों के चक्कर में अपना सारा समय बर्बाद कर दिया! अगर तुम आरम्भ से ही मेरा कारोबार संभालते तो तुम आज इतने काबिल हो जाते कि दो-चार करोड़ का प्रबन्ध यों चुटकी बजाते हुए कर देते? फिर भी मैं हिम्मत हारनेवाला नहीं हूं। मुझे सब मालूम है कि रुपया आने के क्या तरीके हो सकते हैं!" बड़े बाबू परेशान हो उठे। उन्होंने खाना छोड़ दिया और जल्दी से हाथ धोकर कमरे में चहलकदमी करने लगे। उनके माथे पर बार-बार पड़ रही शिकन ने संतोष को बोलने के लिए विवश किया और वह भी तृप्ति से भोजन किए बिना ही उठ गया, "आप इतने व्यग्र क्यों हैं? अब हमारे पास काफी अच्छी और बढ़िया कम्पनियां हैं। खूब इन्कम है। फिर आप नई परेशानी में क्यों पड़ते हैं?"

बड़े बाबू कन्धे सिकोड़कर एकदम पलटे। उनकी आवाज़ इतनी दबी हुई थी जैसे कोई धरती के बहुत नीचे से बोल रहा हो, "तुम ऐसी निरर्थक बात कहकर मुझे अवश्य बदनाम करोगे! क्या एक करोड़पति दूसरे करोड़पति के समक्ष अपनी हार मान लेगा, वह भी बिना लड़े-भिड़े? यदि वह ऐसा करता है तो समझ लो वह करोड़पति बनने के काबिल ही नहीं है। पैसे की प्यास ही पूंजीपति को पूंजीपति कायम रखती है। छिः, कभी इस तरह की बात दस आदमियों के सामने मत कहना। वे मेरे खून पर हंसेंगे।"

संतोष ने अपने स्वर को प्रार्थना की तरह विनम्र करके कहा, "आप मेरे

कहने का मर्म नहीं समझे ? मैं आपसे यह कहना चाहता था कि मनुष्य को उतना ही व्यापार बढ़ाना चाहिए जिसे वह अच्छी तरह संभाल सके।" वह क्षणभर रुककर बोला, "फिर आज विश्वासपात्र आदमी कहां मिलते हैं ? जिस पर ज़रा भी विश्वास करो वही खाने को दौड़ता है।"

"मैं अकेला अभी दस मिलों का काम देख सकता हूं।" बड़े बाबू ने झुंझलाहट-मिश्रित गर्व से कहा, "आदमी में साहस होना चाहिए। साहस और कर्म के प्रति शाश्वत चेष्टा। संतोष ! अब मुझे पूरा यकीन हो गया है कि तुम्हें ये डिग्रियां निकम्मा बनाकर ही छोड़ेंगी। कल से तुम्हारा कालेज जाना बन्द।"

"पिताजी !"

"बनिये का धर्म है—पैसा कमाना। अगर कोई शिक्षा उसे इस धर्म से विलग करती है तो उसे उस शिक्षा का तुरन्त त्याग कर देना चाहिए !" उन्होंने अपनी उंगलियों को जल्दी-जल्दी हिलाकर कहा, "मैंने जीवन में बड़ी गलती की। मुझे तुम्हें पहले से ही अपने पास रख लेना चाहिए था।"

"पर अब दो ही वर्ष का काम है।"

"अब मैं तुम्हारा कहना नहीं मान सकता।" बड़े बाबू ने बड़ी दृढ़ता से कहा, "आज मुझे अचानक यह महसूस हो रहा है कि मेरा बेटा ठीक रास्ते पर नहीं चल रहा है। बस, मेरी इच्छा है कि कल से तुम कमर कसकर इस मैदान में आ डटो।" और वे मन ही मन बोले, "मैंने इसपर अविश्वास करके अच्छा नहीं किया। इस सौदे में मैं हार गया।"

संतोष कुछ बोलने को आतुर हुआ तभी बड़े बाबू आंखों की पुतलियां नचाकर बोले, "मुझे विश्वास है कि तुम एक निहायत आज्ञाकारी और अच्छे लड़के हो, बाप की आज्ञा को अब एक सपूत बेटे की तरह मानकर चलोगे।"

संतोष को लगा कि वह कुछ कह नहीं पा रहा है। उसका गला रुक गया है और उसकी तमाम विचार-शक्तियां शिथिल पड़ गई हैं। वह उठ गया और बाप को प्रणाम करके बंगले में आ गया। बंगले में उसका मन नहीं लगा तब वह मेरे पास आया और उसने यह दुःखभरी बात सुनाई। मैं सन्न रह गया। मैं कुछ रुकता-रुकता-सा बोला, "क्या यह सच है।"

"बिलकुल। कल से मेरा कालेज जाना बन्द और...।"

"और क्या?"

"यही कि दिनभर व्यापार जैसे नीरस काम में मशीन की तरह चलते रहो। वस्तुत: मैं अभी एम० ए० करना चाहता हूं पर मेरा यह सपना पूरा नहीं होगा। फिर पिताजी रात-दिन तिकड़म सोचते रहते हैं जैसे वे सारे देश का व्यापार अपनी मुट्ठी में कर लेना चाहते हों।"

"तुम्हारे पिताजी अत्यन्त भाग्यशाली और बुद्धिमान व्यक्ति हैं। बड़े-बड़े उद्योगपति उनकी सूझ-बूझ की सराहना करते हैं। मेरी राय है कि तुम्हें अपने पिताजी की आज्ञा को प्रभु-आज्ञा समझकर कार्य प्रारंभ कर देना चाहिए। आखिर तुम्हें ये डिग्रियां क्या काम देंगी?"

"करना ही पड़ेगा। वृज, जब पिताजी अत्यन्त गंभीर होते हैं तब मुझे बड़ा भय लगता है। उनकी आंखों में रोगग्रस्त प्राणी-सा उन्माद और वैसी ही वाचालता-जनित छाया छा जाती है। मैं डरने लगता हूं।"

मैंने उसपर व्यंग्य किया, "अभी उस वातावरण में नहीं रहे हो। कुछ दिन उसी गद्दी पर आसीन रहकर मुझसे मिलना। वैसा ही उन्माद और वैसी ही वाचालता की छाया तुम्हारी आंखों में दिखलाई पड़ेगी। तुम्हारा हर मातहत तुमसे भय खाएगा। तुम्हारी वक्र भृकुटि का आतंक नौकर-चाकरों की नींद हराम कर देगा।"

"मैं इतना निष्ठुर बन जाऊंगा?" उसने अत्यन्त भोलेपन से यह प्रश्न किया। उसकी भंगिमा ऐसी लग रही थी जैसे वह अपने-आपसे भी यह प्रश्न कर रहा हो।

"तुम समझते हो कि तुम्हारे पिताजी आरम्भ से ऐसे ही निष्ठुर थे? नहीं।...और हां, मेरी नौकरी लग गई है। मैं यहां से दूर, बहुत दूर जा रहा हूं। जासूस पिताजी और माताजी ने बनने नहीं दिया पर संवाददाता मैं बन ही गया।"

"तुम मुझसे प्रेम नहीं करते?" संतोष ने एकदम बात को बदला।

"क्यों?"

"अगर मुझसे प्रेम करते तो तुम मुझे छोड़कर नहीं जाते ? वृज, मैं तुम्हें कहीं भी एडजस्ट कर सकता हूं।"

"नहीं मित्र।" मैं भावुकता से बोला, "मेरा रास्ता और तुम्हारा रास्ता सर्वथा विपरीत है। कौन जानता है कि अब हम फिर कब मिलेंगे ? मित्रता चिरंजीव रहे, मेरी यही कामना है।"

मैं सचमुच उसे छोड़कर चला आया और संतोष व्यापार में इतना तन्मय हुआ कि धीरे-धीरे हम दोनों के बीच का पत्र-व्यवहार भी समाप्तप्राय हो गया। मैंने अपनी ओर से कभी भी पत्र का आदान-प्रदान बन्द नहीं किया। पर उसने ही हाथ खींच लिया जिसका मुझे उन दिनों बड़ा दुःख रहा। इससे भी अधिक मुझे इस बात का दुःख रहा कि उसने मेरे अखबार को एक पृष्ठ का विज्ञापन नहीं दिया। जबकि मुझे उन मित्रों ने अहसानमन्द किया जो मुझे यदा-कदा मिलते थे और समय गुज़ारने के लिए मेरा साथ कर लिया करते थे। उस क्षणिक सहवास के समय में उनकी बातें बहुत वज़नदार होती थीं। उनमें मित्रता की गहराई की व्याख्या होती थी और एक-दूसरे को कृतज्ञ होने के आश्वासन भी दिए जाते थे। पर तत्काल, मैं उन आश्वासनों एवं बातचीत को मैखाने में दो शराबियों की हुई बातचीत से अधिक महत्त्व नहीं देता था। बाद में उन मित्रों की वे बातें और आश्वासन कार्य में परिणत होते गए और संतोष मुझसे दूर से दूरतर होता गया। लेकिन एक बात और स्पष्ट कर दूं कि हमारी मित्रता की दूरी का ख्याल बड़े बाबू को नहीं था।""""हां, अगर संतोष मुझे चार-पांच पृष्ठ विज्ञापन दे देता तो मेरा रौब मेरे प्रकाशक पर खूब जम जाता। आज पत्रकारिता का धंधा भी एक उद्योग की तरह है और उद्योग में जो व्यक्ति अपने स्वामी को जितना अधिक लाभ पहुंचाता है, वह उतना ही काबिल और उपयुक्त समझा जाता है। जो सम्पादक सम्पादन के साथ विज्ञापन संग्रह भी कर सकता, उसे कोई भी मालिक पदच्युत नहीं करता; जबकि पत्र का मालिक मध्यम श्रेणी का हो। सच कहता हूं—मुझे संतोष ने विज्ञापन न देकर बुरा ही किया। मेरे हृदय में उसके प्रति आक्रोश भी उत्पन्न हुआ जिसे अब मैं उचित नहीं समझ पा रहा हूं। वस्तुतः वह उन दिनों अत्यन्त व्यस्त था। नया काम

और बड़े बाबू को रुपयों का अभाव। क्या करें ? वे रात-दिन कलकत्ता, बम्बई और राजस्थान का दौरा करते रहते थे और संतोष अन्य सारी जिम्मेवारियां संभाल रहा था।

कुछ दिन बड़े बाबू की दशा आम चुनाव में खड़े होनेवाले उम्मीदवार की तरह रही।

अचानक एक दिन उनकी परेशानी प्रसन्नता में बदली हुई मिली।

मिल्टन साहब ने उन्हें आश्वासन दिया, "हम अपनी कम्पनी सेठ तुमको ही देगा। अभी छः माह की और देर है। कुछ फाइनल नहीं किया है।"

बड़े बाबू को प्रसन्न देखते ही संतोष के चेहरे पर भी उज्ज्वल रेखाएं दौड़ीं।

"आज आप परेशान नहीं दिखते ?"

भोजन करते समय संतोष ने अधरों पर स्मित बिखेरते हुए कहा।

"समझ लो मन में कोई परेशानी नहीं है। वैसे व्यापारी वही अच्छा लगता है जो किसी न किसी काम के लिए परेशान हो।"

संतोष का मुंह उतर गया। उसने सोचा था कि पिताजी इस बात का उत्तर बड़ी शांति एवं प्रसन्नता से देंगे। पर पिताजी ने उसके हृदय पर आघात पहुंचा दिया।

"तुम उदास हो गए ?" पिताजी हंस पड़े, "तुम मेरी बात के मर्म को नहीं समझे।" उन्होंने चुटकी के साथ जम्हाई ली, "मेरे कहने का मतलब यह था कि आदमी को जितना अधिक हो सके अपने कार्य की सफलता के लिए व्यस्त-व्यस्त रहना चाहिए। तभी वह बाजार का बादशाह बन सकता है। संतोष और शांति योगियों के लिए ही उपयुक्त रहती है।"

संतोष इस उत्तर से आश्वस्त नहीं हुआ।

"संतोष, मैं सेठ पन्नालाल के पास जा रहा हूं। क्यों ? वे हमें अपना समधि बनाना चाहते हैं। उनकी लड़की है। मैं तुम्हारा विवाह उससे तय करना चाहता हूं। मुझे वैसे तुम्हारी सम्मति की आवश्यकता नहीं है, पर जवान बेटा दोस्त के बराबर होता है।"

संतोष ने दबे स्वर में कहा, "मैं उस लड़की को......"

अंतिम कौर मुंह में डालते हुए बड़े बाबू ने कहा, "तुम लड़की को देखना चाहते हो ? यह भी उन निकम्मी डिग्रियों का प्रभाव है। क्या कालेजों में हर पुरानी बात का विरोध करना ही क्रांति समझा जाता है। यह सही है तो मुझे कहना पड़ेगा—ये कालेज छात्रों को बुरा बनाते हैं। लड़की को देखने का मतलब है कि अपने जन्मदाता बाप पर अविश्वास करना। क्या यह सच है कि एक बाप अपने इकलौते बेटे के जीवन को विषाक्त करेगा ? या तुम उस लड़के की तरह हो जो नितान्त उच्छृंखल होता है और अपनी तर्क-शक्ति के द्वारा यह साबित करना चाहता है कि लड़की उसके योग्य नहीं है। वह प्रेम की अलौकिक चर्चा करके अपने बाप के किए रिश्ते को तोड़ता है, वह क्षणिक भावना के वशीभूत होकर जो वस्तुतः वासना के प्रतिरूप ही होती है, गरीब लड़की के प्रति प्रेम का नारा बुलन्द करके अपनी महानता का प्रदर्शन करता है जो सही माने में बकवास होती है। क्योंकि इसमें जवानी का जोश अधिक और भविष्य की विषम परिस्थितियों का ध्यान नहीं के बराबर होता है। मेरी मां ने अपनी मर्जी की लड़की से मेरा विवाह किया था, मैं समझता हूं कि उससे सुन्दर स्त्री ढूंढे नहीं मिलेगी। काश ! तुम्हारे स्मृति-पटल पर उस देवी-तुल्य जननी का धुंधला चित्र भी होता। सच, वह एक महान और विदुषी नारी थी। लक्ष्मी का अवतार थी। उसने जिस दिन अपने चरणों के स्पर्श से मेरे घर को पवित्र किया उसी दिन से मेरे पास ऋद्धि-सिद्धि दोनों दौड़ी चली आ रही हैं।"

बड़े बाबू की आंखें सजल हो उठीं। वे हाथ धोकर जल्दी से चले गए। एक स्मृति-चित्र बड़े बाबू के मस्तिष्क में घूम गया।

उस समय वे अलग कमरे में खोए-से बैठे थे।

सुहाग रात थी।

शय्या पर सफेद चादर बिछी थी। इत्र की सुगन्ध आ रही थी। शय्या पर फूल नहीं थे। फूलों का रिवाज राजस्थान में बहुत ही कम है। पद्म घूंघट में सिमटी खिड़की की राह चांद को निहार रही थी। छोटी खिड़की थी। उसमें से झलकता चांद कमरे में अपनी ज्योत्स्ना की आभा बिखेर रहा था।

वह सोचने लगी—अपनी सखियों की मादक और पुलक-भरी प्रथम रात्रि की बातें। चुहलबाज़ियां। समर्पण।

वह उन बातों को याद कर-करके सिहर उठी।

अन्त में फतह ने कमरे में प्रवेश किया।

अद्भुत रूप और किशोर यौवन, जो उस समाज में 'त्रिया तेरह' के सूत्र के द्वारा पूर्ण यौवन कहलाता था, घूंघट में सिमटा बैठा था।

फतह कमरे में गया और उसने घूंघट में लिपटी दुल्हन को ग्यारह रुपये दिए। उसे मुंह दिखाने को कहा। और इसके बाद इधर-उधर की बातें होती रहीं। उन बातों का मुख्य विषय था—रुपया किस तरह कमाया जाए? पद्म को उस मधुर सुखद रात्रि में केवल कमाई की बात अच्छी नहीं लगी। उसकी भावना-भरी आंखों में एक विचित्र-सी प्यास दहकती रही।

वर्षों के बाद आज बड़े बाबू उस प्यास के मर्म को जान पाए हैं। उस प्यास में छिपी उस किशोर बालिका के मन की आकांक्षाओं का शतांश वे अब समझने लगे हैं, कि वह भी अन्य लड़कियों की तरह सुहागरात के दिन चुहलबाज़ियां और प्रणय-रससिक्त बातें कहना चाहती थी चाहे उनका आधार केवल कल्पना ही क्यों न हो? इसके बाद भी बड़े बाबू उस यौवना को विस्मृत-से करते गए। जीवन के संघर्ष और पैसे की तीव्र लालसा के कारण उन्हें यह भी पता नहीं चलता था कि उनके एक सुषमामयी जवान पत्नी भी है। और जब उन्होंने भगत को······ ओह! बड़े बाबू उन बातों को नहीं दुहरा सके। वे मर्मान्तिक वेदना से सिहर उठे।

संतोष उन्हें अबोध बालक की तरह देखता रहा।

"क्या बात है बड़े बाबू?" उसने विमूढ़ बैठे बड़े बाबू के ध्यान को भंग किया, "आप परेशान क्यों हैं? सिर्फ मैं एक बार······।"

"मैं उस लड़की को देख चुका हूं। वह एक अच्छे खानदान की है फिर सेठ पन्नालाल करोड़पति हैं। हमें उनसे लाभ ही लाभ होगा। मैं समझता हूं कि एक चतुर प्राणी को विवाह के मामले में प्रेम, सौंदर्य और पसंद को ज़रा भी महत्त्व नहीं देना चाहिए। विवाह जीवन-भर का एक सौदा होता है और

सौदा ऐसा होना चाहिए जिसमें हानि न हो।"

"लेकिन विवाह एक पवित्र अनुष्ठान होता है।"

"पवित्र अनुष्ठान और अलौकिक सम्मिलन जैसी अनुपम शब्दावली उपन्यासों के लिए ही उपयुक्त होती है। यह व्यवहार में उतनी पीड़ादायक होती है जितनी भूख में ईमानदारी। इसलिए मेरी आज्ञा को तुम्हें मानना ही होगा। तुमने मेरी आज्ञा को......"

बड़े बाबू का चेहरा क्रोध से विकृत, कठोर और उन्मादग्रस्त हो गया। संतोष भय से कांप उठा। और वह जल्दी से कमरे से बाहर चला गया। जैसे बड़े बाबू की जलती आंखों का ताप वह नहीं सह पाएगा।

बड़े बाबू कमरे में अंधेरा करके चहलकदमी करने लगे।

घोर सन्नाटा।......

उन्हें सेठ घनश्यामजी ने मिल्टन कम्पनी को लेकर चुनौती दी है। वे उस कम्पनी को ज़रूर खरीदेंगे, चाहे उन्हें उसके लिए कुछ भी क्यों न करना पड़े। 'कुछ भी क्यों न करना पड़े' इसकी पुनरावृत्ति ने उनकी आंखों में हिंसक भावना को जन्म दे दिया।

मेरे पास उन दिनों संतोष का एक पत्र आया था। वह पत्र बड़ा मार्मिक था। उसमें उसका अन्तर्द्वन्द्व मुखर हो उठा था। उसने अत्यन्त दयनीय भाषा में लिखा था कि उसे आज मुझ जैसे मित्र की बड़ी आवश्यकता है। वह अकेला है और अकेला चना भाड़ भी नहीं फोड़ सकता। उसने जिन-जिन शब्दों का प्रयोग किया था, वे शब्द अत्यन्त वजनदार थे पर उनमें वक्त के तकाजे के कारण प्रयोग किए जाने की ध्वनि भी स्पष्ट झलक रही थी। पत्र को पढ़कर मुझे लगा कि उसने मित्रता शब्द को लेकर जिन महान सूक्तियों का उल्लेख किया है, वह विवशता के कारण ही किया है। उस पत्र में उसके स्वार्थ की बू स्पष्ट आ रही थी।

पत्र का कुछ अंश इस तरह था।

प्रिय वृज !

बहुत दिनों के बाद पत्र लिख रहा हूं। शायद तुम्हें बुरा भी लगेगा। क्या करूं ? काम की व्यस्तता ने मुझे मशीन बना दिया है। मुझसे व्यापार की व्यस्तता ने दूसरों पर सोचने का हक ही छीन लिया है। रात-दिन मैं काम-काज के चक्कर में उलझा रहता हूं। तुम नहीं जानते, मैं कितना दुःखी हूं। 'आदमी के जीवन का धन ही सर्वोपरि सत्य है' इस सिद्धान्त के ज़ोरदार समर्थक मेरे पिताजी मुझे भी इसी सिद्धांत का समर्थक बनाना चाहते हैं। और जैसा तुमने एक बार कहा था कि मैं भी वैसा ही हो जाऊंगा जैसे मेरे पिताजी हैं ; तुम्हारी भविष्यवाणी सत्य में बदल रही है। मुझे लग रहा है कि मैं सभी बातों को भूलकर केवल पैसों पर ही केन्द्रीभूत हो रहा हूं। अगर ऐसा न होता तो मैं तुम्हें पत्र अवश्य लिखता, तुम्हें विज्ञापन अवश्य देता, तुम्हारी उन्नति के लिए ईश्वर से कामना अवश्य करता और तुमने अपने काम में जिस सचाई और कर्तव्यनिष्ठता का परिचय दिया है, उसके लिए तुम्हें समय-समय पर प्रशंसा-पत्र अवश्य लिखता।...... लेकिन मैं कुछ भी नहीं कर सका। मैं अत्यन्त स्वार्थी मित्र हूं। मुझे मित्रता का दम ही नहीं भरना चाहिए। मैं मित्रता के नाम पर कलंक हूं। तो भी तुम्हें अपना ही समझकर यह पत्र लिख रहा हूं और आशा करता हूं कि तुम शीघ्र ही यहां चले आओगे।

बात यह है कि पिताजी मेरा विवाह पन्नालालजी की बेटी से करना चाहते हैं। पन्नालालजी करोड़पति हैं और यह भी ठीक है कि वे लाखों का दहेज देंगे तथा व्यापार में उनकी पिताजी से जो प्रतिस्पर्द्धा है वह भी इससे कम ही होगी। हो सकता है कि वे हमारे प्रतिपोषक बन जाएं। किन्तु उनकी लड़की बड़ी बदसूरत और अनपढ़ है। माना, मैंने जीवन में कभी किसीसे प्यार नहीं किया। मैं किसी भी लड़की को अपनी ओर आकर्षित नहीं कर सका और न मैंने कभी इस ओर प्रयास ही किया है। क्योंकि औरतों की पवित्रता का मैं अत्यन्त चाहक हूं और फैशनपरस्त लड़कियां मुझे अच्छी नहीं लगतीं।

वस्तुतः मैं इस ओर सदा उदासीन ही रहा, पर इसका मतलब यह नहीं है कि मेरी अपनी कोई पसंद ही नहीं है। कम से कम मैं एक अच्छी, सुन्दर, शिक्षित गृहिणी अवश्य चाहता हूं। तुम मेरे बड़े भाई हो। मैं तुम्हें हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूं कि मुझे आकर बचा लो। मैं अकेला कुछ भी नहीं कर सकता। तुम ठहरे पत्रकार। तुम समाज से मुकाबला कर सकते हो। मुझे नया रास्ता दिखा सकते हो।

एक बात और लिख रहा हूं। इसी उथल-पुथल में मैं कल अपने एक कर्मचारी ऊधोदास के घर खाना खाने गया। उसकी वर्षगांठ थी। उसने मुझे चलने के लिए विवश ही नहीं किया बल्कि वह मेरे घर आकर बैठ गया कि जबतक आप नहीं चलेंगे, मैं यहां से नहीं जाऊंगा। खैर। मैं बेमन वहां गया। 'मेरा वहां भव्य स्वागत हो', इसलिए उसने खूब तैयारियां कीं। और जैसे ही थाली लेकर उसकी बहिन आई वैसे ही मेरे मन में उल्लास का संचार हो गया। केसर की कांति लिए हुए उसका गौर वर्ण। पद्मिनी के वर्णन जैसा उसका रूप। मैं उसे निहारता रहा। न मालूम कितने क्षण! मैंने ऐसा रूप नहीं देखा। मुस्कराता हुआ ऊधोदास आया। वह मेरी आंखों की भाषा को जान गया। मुझे हाथ जोड़कर वह मृदु स्वर में बोला, "यह आठवीं कक्षा तक पढ़ी हुई भी है! नाम इसका नीता है। मैंने इसका नाम आधुनिक जरूर रखा है पर है यह पूरी धार्मिक विचारों की। यह खाना भी इसीका बनाया हुआ है।"

गोया मैं उसे देखने आया हूं। उसका भाई मुझे उसके विशेष गुणों का परिचय इस तरह दे रहा था। मैंने धीरे से पूछा, "क्या इसका विवाह हो गया?"

"नहीं छोटे बाबू! अभी तक हमने इसकी सगाई भी नहीं की है।"

"क्यों?"

"अच्छा वर नहीं मिल रहा है। दूसरा हम लाने-खानेवाले आदमी ठहरे। दहेज ज्यादा दे नहीं सकते और दहेज के बिना अच्छा वर आजकल कहां मिलता है?"

वह लड़की मुझे बार-बार खाना परोसने आती थी। मेरी इच्छा होती थी

कि मैं इस लड़की को देखता रहूं। यह मेरे सामने प्रतिमा की तरह खड़ी रहे। पर उसकी लाज-भरी अंखियों ने मुझे देखा भी, यह मैं नहीं कह सकता।

मैं घर आ गया।

मैं क्षण-भर के लिए भी उस लड़की को नहीं भूल सका। मैं उस लड़की को लेकर विभिन्न कल्पनाएं करता रहा। ये कल्पनाएं मैंने अपनी डायरी में विस्तृत रूप से लिख रखी हैं।......मैं चाहता हूं कि मेरा विवाह उससे हो जाए पर यह तभी संभव है जब तुम यहां आकर पिताजी को समझा दो। तुम्हें मेरी कसम है, मेरी मित्रता की कसम है। तुम इस पत्र को तार समझकर चले आओ।

तुम्हारा
—संतोष

इस पत्र को पढ़कर मुझे एक वाक्य याद आ गया, 'बनिया मतलब का यार। काम पड़े तो कर ले प्यार'। क्योंकि जब उसने मुझे एक विज्ञापन देकर भी अनुगृहीत नहीं किया तब मैं उसकी पंचायत क्यों करूं? फिर मुझे उसके पूरे पत्र में खुदगर्जी की बू आ रही थी। मुझे लग रहा था कि अगर ऐसी विषम परिस्थिति नहीं आती तो संतोष मुझे कभी भी पत्र नहीं लिखता। मेरा मन जलन से भर उठा और मैंने निर्णय कर लिया कि मैं वहां नहीं जाऊंगा। इस दृढ़ निश्चय से मुझे आत्मसंतोष का अनुभव हुआ जैसे संतोष मेरी भावुकता को फुसलाने में असमर्थ रहा हो।

फिर भी मैंने उसे और उसके पिता को पत्र लिखा। उसमें मैंने अपनी कई झूठी-सच्ची विवशताओं का उल्लेख करके आने की असमर्थता प्रकट करने के साथ-साथ क्षमा-याचना भी की। संतोष के पत्र में मैंने कोई विशेष बात नहीं लिखी पर बड़े बाबू को पत्र मैंने इस तरह लिखा :

बड़े बाबू!

प्रणाम।

आपको पत्र लिख रहा हूं—विशेष कारणवश। मेरे पास संतोष का पत्र

आया है। उस पत्र में उसने स्पष्ट शब्दों में पन्नालालजी की बेटी से विवाह न करने का मंतव्य प्रकट किया है। कुछ बातें ऐसी होती हैं जिन्हें बच्चे अपने मित्रों को ही स्पष्ट रूप से बता सकते हैं। संतोष का मैं जिगरी दोस्त हूं और आप यह भी खूब जानते हैं कि हमारी मित्रता में स्वार्थ नाम की किसी भी वस्तु का कोई अस्तित्व नहीं है। मैं नहीं चाहता हूं कि इस छोटी-सी बात को लेकर आप और आपके बेटे के बीच कोई गहरी खाई हो। छोटी-सी बात इसलिए, कि आपके पास अतुल धन है और आपको अब रुपयों के पीछे नहीं, बेटे की इच्छा के पीछे भागना चाहिए।

मैं भी इधर-उधर की बातें लिखकर आपके हृदय की भावुकता को स्पर्श कर सकता हूं। आपके गुणों की प्रशंसा करके आपके अहम् को छू सकता हूं और आपके लिए महान दयालु, ज्ञानी, दूरदर्शी और नीतिज्ञ जैसे मर्मस्पर्शी शब्दों से युक्त वाक्यों का प्रयोग करके अपने दृढ़ निश्चय से विचलित करने के लिए आपको कोमल बना सकता हूं। पर मैं ऐसी निरर्थक बातें लिखकर आप जैसे व्यस्त आदमी के समय को खराब करना नहीं चाहता। मैं स्पष्ट शब्दों में आपसे इतना ही कहना चाहूंगा कि आप अपने बेटे का विवाह उसकी मनपसंद लड़की से ही करें। और वह लड़की है—आपके नौकर ऊधोदास की बहिन नीता।

मैं कार्यव्यस्तता से आपके पास अभी आने में विवश हूं पर आपके बेटे का यह विवाह-सम्बन्ध ही आपके हित में रहेगा क्योंकि आज के लड़कों को आप जानते ही हैं।

पत्र की आशा में,

आपका ही

—वृज

मुझे बड़ी हैरत हुई कि बड़े बाबू ने मेरी बात स्वीकार कर ली। उन्होंने मुझे धन्यवाद का पत्र देते हुए लिखा कि तुमने मुझे पत्र लिखकर कृतार्थ कर दिया वर्ना संतोष के मन की साध को मैं पूरा करने में सर्वथा असमर्थ रहता। मैं तुम्हें

किन शब्दों में धन्यवाद दूं, यह मैं लिख नहीं सकता।······मैं निहाल हो गया हूं। और मैंने इस पत्र की एक प्रति संतोष को भेज दी।

कुछ दिनों के बाद ही संतोष का विवाह हो गया।

दोनों पति-पत्नी आनंद से रहने लगे। संतोष बड़े बाबू से थोड़ा भिन्न स्वभाव का निकला। वह समय से काम-काज करता था और रात को वह अपनी पत्नी को लेकर घूमने-फिरने जाया करता था।

वस्तुत: बड़े बाबू ने इस रिश्ते में अपनी कुशल बुद्धि का परिचय दिया था। बेटा विद्रोही न हो, इसलिए उन्होंने यह रिश्ता मंजूर कर लिया किंतु मन में उन्होंने एक गांठ बांध ली कि वे अपनी पराजय का प्रतिशोध कभी जरूर लेंगे। ऐसा प्रतिशोध लेंगे जिसको यह बेटा सदा याद रखेगा।

किंतु सेठ पन्नालाल बड़े नाराज हुए। उन्होंने इसे अपनी मानि-हानि समझा तथा उन्होंने बड़े बाबू को खूब खरी-खरी सुनाई।

सेठ पन्नालाल बोले, "आदमी की ज़बान की कीमत बहुत होती है। पहले लोग अपनी ज़बान के पीछे अपने घर तक को फूंक देते थे पर ज़बान को झूठा नहीं होने देते थे।"

"बेटे के हठ के सामने मुझे झुकना पड़ा। आखिर विवाह उसे करना था, मुझे नहीं।"

"तभी कहता हूं कि बच्चों को म्लेच्छों की भाषा न पढ़ाओ। ये जैसे ही अंग्रेज़ी की दो-चार पंक्तियां सीखते हैं, आसमान सिर पर उठा लेते हैं।"

"पर इस भाषा के बिना काम भी नहीं चलता। एक व्यापारी के बेटे को संसार की हर भाषा को सीख लेना चाहिए। चाहे वे भाषाएं म्लेच्छों की हों या दुश्मनों की। अच्छा और सफल व्यापार हम तभी कर सकते हैं जब हम हर जगह की भाषा से परिचित हों। भाषा से बच्चे नहीं बिगड़ते, बच्चे बिगड़ते हैं समय से। ज़माने की हवा ही बदल गई है। पहले आदमी खानदान को

देखते थे कि लड़की और लड़का किस खानदान का है—और अब वे शिक्षा और रंगरूप को देखते हैं।"

पन्नालाल जी बिगड़ पड़े, "इसीलिए मैंने अपनी बेटी को आपको पहले ही दिखा दिया था। मैं जानता था कि बाद में कोई ऐसा-वैसा प्रश्न न उठे। आपने मेरी प्रतिष्ठा को धूल में मिला दिया। बात होकर बीच में खत्म हो जाने से लड़की का विवाह और कठिनता से होता है। क्योंकि इसके पीछे एक वाक्य और जुड़ जाता है कि उसकी पहले सगाई होकर बाद में छूट गई थी अथवा इसकी बात फलां आदमी के बेटे से होकर एकाएक खत्म हो गई थी। आज के ज़माने में लड़की के रंगरूप से अधिक ऐसी बातें अधिक हानिप्रद होती हैं।"

बड़े बाबू चुप रहे। उनकी आंखों में वेदना तैर उठी। संकोच से उनकी गर्दन झुक गई।

सेठ पन्नालाल दर्द से तड़पकर बोले, "मैं आपको सौगंध दिलाकर पूछता हूं कि लेन-देन के मामले की बात तो नहीं है? क्योंकि ऐसा भी देखा गया है कि जब दहेज कम होता है तब लड़कों के बाप तरह-तरह का बहाना बनाते हैं और वे लड़कों को माध्यम बनाकर ऐसी विवशता का अभिनय करते हैं जो वस्तुतः उनकी चालें होती हैं। और जिनके सूत्रधार उनके अपने लड़के नहीं, वे खुद ही होते हैं।" वे क्षण-भर रुककर बोले, "यदि ऐसी कोई बात है तो आप मुझे स्पष्ट कहिए। मैं दहेज की रकम और बढ़ा सकता हूं।"

"नहीं, नहीं। ऐसी कोई बात नहीं है सेठजी। आपकी दया से मेरे पास क्या नहीं है? अगर मेरे एक लड़का और होता तो मैं इसकी बात ज़रा भी नहीं मानता और इस बाप की अवज्ञा करनेवाले को घर से बाहर निकाल देता—काला मुंह और गीले पांव करके। मैं आप जैसे खानदान से रिश्ता करके गौरव अनुभव कर रहा था। सेठ साईंदास-माईंदास का खानदान भाग्यशालियों को ही मिलता है।"

वे वेदना में डूबकर बोले, "आह! इस खानदान की बात का ही दुःख है। मैंने सोचा—बराबर का सगा कहां मिलता है? मेरी लड़की आपकी बहू बनकर अपने-आपको भाग्यशालिनी समझेगी।"

"मुझे आपके दुःख की अनुभूति है। एक बेटी का बाप ऐसे मार्मिक आघातों को नहीं सह सकता। मैं एक बार फिर प्रयास करूंगा।"

बड़े बाबू आए और उन्होंने किसी तरह का प्रयास नहीं किया। आज के इकलौते लड़के अपने मां-बाप को किस तरह उचित और अनुचित ढंग से दबा सकते हैं, ये वे भली भांति जानते थे। घर से बाहर निकल जाने से लेकर आत्महत्या करने तक की धमकी देते हैं और प्रायः वे तारुण्य के जोश में ऐसा कर भी देते हैं। फिर व्यापार को संभालने के लिए उन्हें उसकी बहुत जरूरत थी।

लेकिन उन्होंने पंडित को यह सलाह दी, कि तुम अप्रत्यक्ष रूप में मेरे खुद का प्रस्ताव सेठजी की काली-कलूटी बेटी के लिए कर दो। बात इस तरह तुम उनके सामने रखना जैसे तुम खुद यह प्रस्ताव मेरी ओर से नहीं, खुद अपनी ओर से रख रहे हो। मेरी इच्छा का भी आभास उन्हें नहीं होना चाहिए।

पंडित आंखें फाड़कर उन्हें देखता रहा।

"तुम्हें अचरज हो रहा है। क्यों? क्या इस उम्र में लोग विवाह नहीं करते हैं? बहुत-से करते हैं। और मैं विवाह पहले भी कर सकता था लेकिन मैंने ऐसा नहीं किया। मुझे विवाह में कोई दिलचस्पी नहीं है। सिर्फ बेटे द्वारा इनकार किए जाने पर मैं यह कर रहा हूं ताकि सेठजी की इज्जत बची रहे।"

"पर यह कैसे संभव है कि एक लड़की जो बेटे के लिए मांगी जा रही थी, बाप के लिए मांगी जा सकती है?"

"सब संभव है। इस युग में क्या नहीं हो सकता? सिर्फ दलाल अच्छा होना चाहिए। आज के आदान-प्रदान का मूलभूत आधार ही मेरी समझ में दलाल है। अगर यह दलाल नामक जीव नहीं होता तो आज प्रत्येक के सामने गंभीर, जटिल और दुरूह समस्याएं खड़ी हो जातीं। मैं तुम्हारी परीक्षा ले रहा हूं कि तुम एक चतुर दलाल हो कि नहीं? बात इस ढंग से होनी चाहिए कि सेठ पन्नालालजी मुझे किसी तरह के दो कटु शब्द भी न कहें। उन्हें इस बात का विश्वास हो जाए कि मेरे मुतल्लिक जो तुम कह रहे हो, अपनी ओर

से ही कह रहे हो, इसमें मेरा किंचित् भी हाथ नहीं है।"

"लेकिन यह संभव नहीं।" पंडित ने सहमते हुए कहा।

बड़े बाबू ने उसे तिरस्कारपूर्ण दृष्टि से देखा। कुछ झिड़कते हुए वे बोले, "तुम खाक के पंडित हो। तुम्हें तो किसी सेठ-साहूकार का हाजरिया होना चाहिए। शादी-विवाह की बात करानेवाला पंडित अपने हुनर में इतना निपुण और दूरदर्शी होता है कि वह असंभव को संभव और संभव को असंभव बना देता है।"

"मैं कोशिश करूंगा।"

बड़े बाबू ने उसे एक बार और हिदायत दी कि वह इस चतुराई से बात करे ताकि पन्नालालजी को यह भान न हो कि यह तोता उन्हींका रटा-रटवाया है।

पंडित सेठ पन्नालाल के पास गया। हाथ जोड़कर पंडित ने पश्चात्ताप-भरे स्वर में कहा, "ऐसा नालायक बेटा मैंने जीवन में नहीं देखा। बाप बेचारा झोली फैलाकर अपनी इज़्ज़त की भीख मांग रहा था और शाहज़ादे साहब अकड़ में ऐंठे ही जा रहे थे। बार-बार 'सिद्धान्त' शब्द की दुहाई लगा रहे थे मानो वे सिद्धान्त के लिए जीवन की हर खुशी बलिदान करने को आतुर हैं।...आपको क्या बताऊं सेठजी, आखिर बड़े बाबू की आंखों में आंसू आ गए। उनका लड़का उसी समय बिना कुछ बोले चला गया। सच कहता हूं—मैंने अपने जीवन में इतने बड़े आदमी को इतना दीन और विवश नहीं देखा। मैंने अपनी आंखें बन्द कर लीं और प्रभु को लाख बार धन्यवाद दिया कि कम से कम उसने मुझे ऐसी नालायक औलाद नहीं दी।" पंडित चुप हो गया। सेठ पन्नालालजी समझ गए कि लड़के ने साफ इन्कार कर दिया है। अतः वे तनिक गुस्सीले स्वर में बोले, "बड़े बाबू के लड़के के इन्कार कर देने से मेरी बेटी कुंवारी नहीं रहेगी। पंडित जी, आप देखना कि मैं कितना अच्छा दूल्हा अपनी बेटी के लिए लाऊंगा। जहां जर वहां लाखों वर! आखिर रुपयों की शक्ति का भी पता लगाना है।"

पंडित थोड़ी देर के लिए गंभीर मौन धारण किए बैठा रहा। एकाएक वह उछलकर बोला, "आप बुरा न मानें तो मैं एक सलाह दूं?"

"कहिए।"

"आप यह जानते हैं ही कि बड़े बाबू की पत्नी…।"

"पंडितजी ! मैं कोई गरीब नहीं हूं। मेरी बेटी को बूढ़ा बैल नहीं चाहिए। मैं उसके लिए अच्छे से अच्छा वर ढूंढ़ लाऊंगा। मैं उसे नरक की आग में नहीं झोंक सकता।"

"मैंने आपको सलाह दी थी। अगर मैं आपकी रुचि देखता तो उनसे बात करता !"

"आप ऐसी चर्चा फिर कभी करेंगे तो ठीक नहीं रहेगा।"

पंडित वापस चला आया और उसने सारा हाल बड़े बाबू को कहा। पंडित ने यह भी कहा, "पन्नालालजी ने आपको बूढ़ा बैल भी कहा।"

"क्रोध में व्यक्ति पागल हो जाता है। अगर उस स्थिति में वह एक आदमी को गधा भी कह दे तो गुस्सा नहीं करना चाहिए। सामान्य स्थिति के बाहर होते ही आदमी में पशुता के अंश आ जाते हैं।"

पंडित चला गया।

बड़े बाबू बड़ी देर तक चिंता में लीन रहे।

धीरे-धीरे दिन ढल गया।

रात के झिलमिलाते पंख आकाश में फैल गए।

बड़े बाबू मन बहलाने के लिए तवायफ के यहां चले गए।

नीता ने मुस्कराते हुए संतोष का स्वागत किया।

साधारणतया मारवाड़ी स्त्रियों से वह थोड़ी भिन्न थी। वह सिवाय बड़े बाबू के किसीसे पर्दा नहीं करती थी। उसे राजस्थानी जेवर तथा पहनावा भी पसंद नहीं था और उधर संतोष को उसका फैशन अधिक पसंद नहीं था। वह कभी भी अपने मित्रों को अपने घर नहीं लाता था। क्योंकि आज के मित्रों का उसे अधिक भरोसा नहीं था। वह अपनी पत्नी का कभी भी अन्य सहेलियों,

सखियों और सम्बन्धियों के साथ अकेले बाहर नहीं जाने देता था। वह उन्हें बहाने करके टाल देता था।

वैसे उसका अपना निजी सम्बन्धी कोई नहीं था। पर पैसेवालों को लोग जातिगत रूप से भी चाचा-मामा बना ही लेते हैं और बन भी जाते हैं, और वे आमन्त्रणों और अपनत्वपूर्ण बातों द्वारा ये प्रयास करते हैं कि वे सब उनके अपने ही हैं। हालांकि इस तरह के अपनत्व का अभिनय निहायत कुशल आदमी ही कर सकते हैं, फिर भी उनके वाक्यों में उनके हृदय का खोखलापन गूंजता ही रहता है। नीता को यह सब पसंद नहीं था फिर भी लौकिक रूप में उसने आनेवाले मुंहबोले संबंधियों का अनादर नहीं किया। वह उनसे मिलती थी। अपनी प्रशंसा सुनती थी। कभी-कभी किसीके विशेष आग्रह-अनुग्रह पर वह संतोष को बिना पूछे उनके घर चली जाती थी। तब संतोष उसे पति-भक्ति और अपनी नापसंदगी पर एक अत्यन्त सुन्दर भाषण दे देता था। उसे इस बात के लिए आग्रह करता कि उसका यह रवैया उसे ज़रा भी पसंद नहीं है। कभी-कभी इसका अशुभ फल निकल सकता है। वह आज के युवकों की अनैतिकतापूर्ण प्रेम-कथाएं अपनी पत्नी को सुनाया करता था तथा उसे बताया करता था कि वे किस तरह रूपवती बहिनों के भाइयों से और पत्नियों के पतियों से दोस्ती करते हैं और किस तरह बाद में वे उन्हें फुसला कर पथभ्रष्ट करते हैं।

औरतों की पवित्रता को वह इतना ही पसंद करता था जितना धर्मभीरु अपने हृदय की पवित्रता को करता है। उसे यह भी विश्वास था कि स्त्रियों को अधिक स्वतंत्रता देने से वे शीघ्र ही किसी न किसीके द्वारा अपवित्र कर दी जाती है। इन बातों को लेकर वह इस वाक्य को मन ही मन आशंकित-आतंकित पुरुष की तरह खूब दुहराया करता था कि स्त्री नजदीकवाले पुरुष को ही चाहती है। और इसलिए वह संझा होते ही चाहे कितना ही महत्त्वपूर्ण कार्य क्यों न हो, घर आने की चेष्टा करता था।

इधर इस तरह रोज़-रोज़ के आने का अर्थ बड़े बाबू ने यह लगाया कि उसका बेटा अपनी बहू के रूप पर आसक्त है। और यह आसक्ति उन्हें व्यापारिक हानि पहुंचा रही है क्योंकि उसका मन बहू में लीन रहता होगा।

कल बड़े बाबू ने संतोष को बुलाया था। तत्काल संतोष नीता के साथ सिनेमा देखने को जा रहा था। बड़े बाबू का संदेश पाकर वह सीधा बाड़ी आया।

जब वह बड़े बाबू के घर पहुंचा तब बड़े बाबू सम्पत को डांट रहे थे। सम्पत बूढ़ी नौकरानी को ज़बरदस्त गालियां इस बात को लेकर निकाल रहा था कि आज उसने उसे खाना ठंडा और बासी दिया था। जब उसकी गालियां बड़ी देर तक बन्द नहीं हुई तब बड़े बाबू को उस घटना के बीच दखल देना पड़ा।

सम्पत ने आंसू भरकर कहा, "बड़े बाबू, यह आजकल बहुत लोभिन हो गई है। यह मुझे ठंडा और बासी खाना देना चाहती है। मैं समझता हूं कि यह हमारे भोजन के बजट में से काफी रुपयों की बचत करती है। सच, इसके संग्रह करने की भावना बढ़ती जा रही है।"

बड़े बाबू ने क्रोध-भरी आंखों से देखकर कहा, "रोटियों के बीच तुम बड़े बाबू को क्यों घसीटते हो ? तुमने ऐसा क्यों कहा कि यह सब बड़े बाबू के संकेत पर हो रहा है ?"

"मैंने ऐसा नहीं किया।"

नौकरानी चिल्लाकर बोली, "ये एकदम झूठ बोलते हैं। अभी थोड़ी देर पहले इन्होंने आपको बेईमान और कपटी कहा था।"

सम्पत आकाश की ओर देखकर बोला, "आह ! यह कितना झूठ बोलती है ! सीता, परमात्मा से डरो। अपने मालिक को प्रसन्न करने के लिए सबके मालिक ईश्वर को अप्रसन्न न करो।"

सीता अपनी आंखें मिचमिचाकर बोली, "यह सचमुच एक अफीमची है बड़े बाबू। क्या कोई भला और समझदार आदमी इस तरह बेहयाई और निर्भीकता से बोल सकता है ? मैं कहती हूं कि ये एकदम नशेबाज के लक्षण हैं, ऐसा अनर्गल किन्तु प्रभावशाली प्रलाप ऐसे ही लोग कर सकते हैं।" वह आंखों में भय नचाकर बोली, "मुझे यह भय है कि यह कभी अधिक नशे में हमारी घर की इज्जत पर कीचड़ न उछाल दे।"

"मैं सब समझता हूं। मुझे अगर इसपर दया नहीं आती तो मैं इसे घर से बाहर निकाल देता। और यह अफीम के अभाव में पागलों की तरह सड़कों पर घूमता फिरता, अफीम की एक-एक डली के लिए यह भीख मांगता, चोरियां करता और लोगों से पिटता! पर मैं एक दयालु स्वभाव का व्यक्ति हूं। इसने मेरी खूब सेवा की है, इसलिए मैं इसपर दयालु ही बने रहना चाहता हूं। मैं नहीं चाहता कि मेरा कृपापात्र या स्वामीभक्त नौकर सड़कों पर भूखा और प्यासा मारा-मारा फिरे। पर आजकल यह बहुत ही उल्टी बातें करने लगा है। मुझे यह डर है कि कहीं इसे पागलखाने में भर्ती न करना पड़े।"

पागलखाने का नाम सुनकर सम्पत कांप उठा। वह उठकर आया और उसने बड़े बाबू के पांव पकड़ लिए, "यह छिनाल झूठ बोलती है। इसने मुझे बर्बाद कर दिया। यह एक वेश्या है, अत्यन्त नीच और कमीनी वेश्या, जो आदमी को जोंक की तरह चूस लेती है। काश! इसने मेरे साथ जिस तरह का अभिनय किया, उसी तरह का आपके साथ करती। तब आपको मेरे अन्तस् की पीड़ा का पता लगता। इसने मुझे अफीम खिला-खिलाकर निकम्मा और आधा पागल बना दिया है। और आप बड़े बाबू, इसकी बातों में आते हैं? आखिर मैं आपका इससे भी पुराना नौकर हूं। क्या यह औरत है इसीलिए इसकी बात में सत्य का अंश अधिक है? मैं आपको कहता हूं कि यह औरत सत्य उतना ही बोलती है जितना नादान-निर्भीक बच्चा अपराध करने पर झूठ बोलता है।"

"अगर यह झूठ बोलती है तो तुम्हें इसकी बातों में नहीं आना चाहिए। तुम इसकी बातों में आकर कुछ भी कहते हो, वह मेरे लिए पीड़ादायक बन जाता है।"

उसने अपना अपराध स्वीकार कर लिया हो, ऐसी उसकी उदास मुद्रा हो गई। वह अपराधी की तरह नज़रें नीची करके बोला, "मैं मूर्ख हूं। पता नहीं, नशे के वशीभूत होकर क्या-क्या बक जाता हूं। मुझे आप क्षमा कर दें और इसे कह दें कि यह मेरे पास न आया करे। मुझे यह भय है कि कहीं यह मेरे और आपके बीच द्वेष और शत्रुता की दीवार खड़ी न कर दे।"

दूसरे नौकर ने बड़े बाबू को संतोष के आने की सूचना दी।

बड़े बाबू ने उस नौकर को कहा, "सम्पत को दूध लाकर दे देना। और सीता, तुम आज से यहां मत आना।" जब उन्होंने ऐसी आज्ञा दी तब उनके अधरों पर एक भेद-भरी मुस्कान बिखर गई और उन्होंने मन ही मन सोचा, 'सम्पत, तुम सीता के बिना नहीं रह सकते !'

संतोष उनकी बैठक में प्रतीक्षा कर रहा था। हरी बत्ती हरे रंग में मिलकर और सुन्दर हो गई थी। उसमें अपने-आपमें डूबा संतोष बुत की तरह लग रहा था। बड़े बाबू के पांवों की आहट सुनकर वह चौंका। उठकर उसने हाथ जोड़े।

बड़े बाबू ने गम्भीर स्वर में कहा, "मैं कल राजस्थान जा रहा हूं। मुझे महाराजश्री ने बुलाया है। वे मेरे द्वारा कुछ हीरे-जवाहरात बेचना चाहते हैं और कुछ सोना भी। मैं समझता हूं कि इससे हमें काफी लाभ होगा।"

"लेकिन जो वस्तुएं मन्दिर की हैं, उन्हें बेचना कहां तक न्यायसंगत है ? यह गैरकानूनी भी है।"

"तुम अभी तक बच्चे हो।" कुछ चिढ़कर बड़े बाबू उत्तेजित स्वर में बोले, "व्यापार का अपना एक तरीका होता है। उस तरीके से वह बड़े से बड़े अपराध से बच सकता है और कानून की तेज़ आंखें भी उसे नहीं देख सकतीं।"

संतोष बड़े धैर्य से बोला, "फेयर बिज़नेस ही मनुष्य का आर्थिक और नैतिक उत्थान करता है।"

"फेयर बिज़नेस कभी होता होगा, मुझे पता नहीं था। परन्तु कलियुग में सारे व्यापार की नींव ही छल-कपट और झूठ पर रखी हुई है। संतोष ! मुझे भय है कि मेरे सौ वर्ष पहुंचने पर तुम व्यापार को चौपट करके रख दोगे। क्योंकि इस जमाने में 'फेयर बिजनेस' की बात ही पतन की सूचक होती है। मैं तुमसे प्रार्थना करूंगा, हालांकि मेरा धर्म तुम्हें हुक्म देना है परन्तु मैं तुमसे धर्म के विरुद्ध प्रार्थना ही करूंगा, कि भविष्य में तुम सत्य और धर्म की दुहाई न देकर व्यापार की श्री-वृद्धि की तरकीबें सोचना। सत्य और धर्म जैसे शब्द इस पूंजीवादी ज़माने में नशे की गोलियां बन गए हैं जो गरीबों को समय-समय पर मुफ्त बांट दी जाती हैं।......"

"फिर पाप क्या है ?" संतोष के अन्तस् ने बरबस ही पूछा ।

"पाप कुछ नहीं है । वस्तुतः इस शब्द की प्राचीन युग में आवश्यकता के अनुसार उपयोगिता भी थी और तब यह देश भी ऋषि-मुनियों का देश कहलाता था । किंतु अब यह देश एक तिजारती देश बन रहा है । अब त्याग-तपस्या, पाप-पुण्य और नैतिकता जैसे प्राचीन और रूढ़िगत शब्दों का प्रयोग आदमी का दकियानूसीपन प्रकट करते हैं। क्योंकि इन सब शब्दों को हटाकर हमने एक अत्यन्त शक्तिशाली शब्द की रचना कर डाली है, वह शब्द है—व्यापार । यह शब्द इतना व्यापक और विशाल उदर का है कि इसमें ये सारे वज़नदार शब्द रुई के फाहों की तरह तैरते हुए लगते हैं अथवा विशाल सागर में गिरती हुई नदियों की भांति इनका अस्तित्व लगता है । संतोष ! व्यापार का अपना एक निजी उसूल होता है और वह उसूल है—रूढ़िगत व संस्कारजनित आतंकों, प्रकोपों और हमलों से मुक्त होकर कार्यरत रहना ।····तुमने मुझे कह दिया कि मन्दिर का धन बेचना गैरकानूनी है ? लेकिन जो मन्दिर का स्वामी बनकर देवदूतों की तरह सार्वजनिक जीवन में भ्रष्टाचार फैलाता है और पवित्रात्मा बनकर छिपे रूप से वेश्या, शराब और मांस का सेवन करता है और मन्दिर के धन को कागज़ के चंदोवा की तरह उड़ाता है वह इस 'पाप' शब्द के बारे में क्यों नहीं सोचता ? तुम कदाचित् नहीं जानते, कि आज सेठ लोगों में धर्म की सेवा का जो ढोंग है वह महज़ एक दिखावा है । क्योंकि हर धनवान तिलक-छापों के ढोंग द्वारा महन्तों के समीप आकर मन्दिरों की सम्पत्ति को हड़प जाना चाहता है । मन्दिरों के महन्तों के कृपा-पात्र बनकर उनकी दुर्बलताओं से भिज्ञ होकर उनसे अनुचित कार्य कराने के लिए विवश करना चाहता है। चूंकि व्यापार शब्द एक भयानक मगरमच्छ हैं, वह सहजता से 'सभी भावुक प्राणियों की दृष्टि में अनैतिक कार्यों को' हल्के भोजन की तरह पचा लेता है । और वह अपने साधनों को चाहे वे कितने ही नीच, अनैतिक और धर्मविहीन क्यों न हो, उन्हें युक्तिसंगत ही मानता है । अतः मैं तुमसे अनुरोध करना चाहूंगा कि तुम ऐसी कच्ची बातें फिर कभी नहीं करोगे और 'व्यापार' शब्द के सभी अंग-प्रत्यंगों को जान लोगे ।"

संतोष का मुंह उतर गया । उसे लगा कि वास्तव में उसने बड़ी भूल की

है। वह एक व्यापारी का बेटा है। एक दिन करोड़पति होगा। उसे वही कार्य करना चाहिए जिससे उसके धन की वृद्धि हो और पिता और इस जग की दृष्टि में उसकी योग्यता का लोहा माना जाए।

वह अत्यन्त कोमल स्वर में बोला, "आप ठीक कहते हैं। मैं सदा आपके चरण-चिह्नों पर चलने का प्रयास करूंगा।"

"फिर सुनो, तुम कल अहमदाबाद चले जाओ और मैं राजस्थान जाऊंगा। बोर्ड ऑफ डायरेक्टरों की मीटिंग है। तुम इस बात पर ज़ोर देना कि मज़दूरों को बोनस कम से कम बांटा जाए तथा उन्हें बंधुत्व का विश्वास दिलाकर यह कहा जाए कि वे हिंसक और देश की योजनाओं को असफल करनेवाले इन ट्रेड यूनियनों के नेताओं के चक्कर में न पड़ें।"

संतोष ने उठते हुए पूछा, "आप कब तक वापस आ जाएंगे ?"

"पांच-सात दिन में।"

"मैं जाऊं ?"

"हां !" बैठक में गहरा मौन छा गया।

वड़े बाबू से पहले ही संतोष अहमदाबाद से लौट आया। पहली बार उसे यह महसूस हुआ कि एक व्यापारी के दृष्टिकोण, कार्यकलाप तथा तरीके आम आदमियों से बिलकुल भिन्न होते हैं। उसकी जागरूकता सराहनीय होती है और इतनी परेशानियों व समस्याओं के बीच उसमें जो एक दृढ़ धैर्य व शांति रहती हैं, उसे सर्वथा उल्लेखनीय रहना चाहिए। उसकी कठोर साधना पुराण में वर्णित तपस्या से कम नहीं है। वह रात-दिन अपने धर्म के अनुसार व्यापार के दायरे को फैलाने में संलग्न रहता है। सेठ रामजी भाई का तरुण बेटा कितना चतुर है। उस मीटिंग में उसके सुझावों को प्रथम मान्यता प्राप्त हुई। क्या वह उतना ही तेज़ और पते की बात कहनेवाला नहीं बन सकता ? उसने निश्चय किया कि एक बार वह सभीको अपनी योग्यता से चकित कर देगा। जीवन में लोक-

प्रियता प्राप्त करने के लिए साधन के प्रति तन्मयता और कठोर श्रम की अत्यंत आवश्यकता है।

वह बंगले आया।

उसकी पत्नी नीता नायलान की अंग-प्रदर्शक साड़ी में एक तरुण से गंभीरता-पूर्वक बात कर रही थी। वह तरुण उसे देखकर जल्दी से बंगले से बाहर हो गया। उसकी चुप्पी ने संतोष के मन में सन्देह के अंकुर उत्पन्न कर दिए। उसे वैसे ही इस तरह की बातें पसन्द नहीं थीं। उसका मुख उत्तेजित हो गया। वह कार से जैसे ही उतरा, वैसे ही उसने अपनी पत्नी नीता को देखा—वह भी सदा की तरह उसका स्वागत नहीं कर सकी। उसकी हंसी में सूखापन था।

"आप जल्दी आ गए, अच्छा ही हुआ।"

"क्यों ?"

"मेरा मन नहीं लगता है आपके बिना। इस बंगले में भय भी लगता है।"

अपने कमरे में कपड़ों को खोलते हुए संतोष के मन में आया कि वह उसे कह दे कि इस अनुपस्थिति में तुम अपने परिचितों से स्वतंत्रतापूर्वक मिल भी सकती हो। पर बिना किसी खोज-बीन के इस तरह का आरोप लगाना उसने उचित नहीं समझा। यहां उसकी व्यापारियोंवाली धीरजता काम दे गई। उसने भृकुटी उठाकर पूछा, "वह लड़का कौन था ?"

"वह हमारा पड़ौसी है।"

"यहां क्यों आया था ?"

"नौकरी के लिए।"

"और मुझसे बिना मिले हुए ही चला गया ?" उसने अपने शब्दों पर जोर देकर कहा।

"मैंने उसे कहा भी था, परन्तु जाने क्यों वह नहीं रुका, कदाचित् वह अपनी दयनीय दशा के कारण नहीं रुका हो। आपने उसके मैले-कुचैले कपड़े देखे ही होंगे। आदमी में सीमा से अधिक हीनता आ गई है।" वह एकदम बात को बदल-कर बोली, "आपकी यात्रा कैसी रही ? आपकी सेहत ठीक रही न यात्रा में ?"

"तुम्हें कैसी लगती है ?" उसने चिढ़कर कहा।

"आप गुस्से में क्यों बोलते हैं ?" उसने भी ज़रा तेज स्वर में उसके समीप आकर कहा, "क्या वहां किसीसे लड़कर आए हैं ?"

"जी ।" उसने अपनी नजरें दूसरी ओर घुमा लीं ।

"क्या बात हुई ?" उसने एकदम विनीत स्वर में कहा ।

"मुझे अभी परेशान न करो । मेरा मन ठीक नहीं है ।" उसके स्वर में झुंझलाहट थी ।

नीता चुप हो गई । उसने मन ही मन जान लिया कि यह सब प्रभुदत्त के आगमन की प्रतिक्रिया है । उन्हें मेरा बोलना-हंसना पसन्द नहीं है दूसरों से । वह भी खामोश और अपने काम में व्यस्त हो गई । उसे अपने पति का यह व्यवहार अच्छा नहीं लगा । जब ऐसी ही इच्छा थी तब कोई गंवार लड़की ले आते ।

उस रात मियां-बीवी रससिक्त बातें नहीं कर सके । केवल कुछ क्षण संतोष ने उत्तेजना के वशीभूत इधर-उधर की प्रणय-भरी बातें कीं । उसके मन से यह संदेह नहीं गया कि वह व्यक्ति कौन था ? पर प्रश्न, एक जलता प्रश्न उसे हर घड़ी कचोटता रहा, पीड़ा देता रहा, उद्विग्न करता रहा ।

सुबह ही बाड़ी से फोन आया था कि सेठ शिवकुमारजी आए हुए हैं । शिवकुमारजी उनकी मिल के नये सोल एजेंट थे । उनका व्यापार मध्य प्रदेश में था । संतोष सुबह ही वहां चला गया । शिवकुमारजी से बातचीत करके उसने वहीं पर खाना खाया । आज घर पर खाने की उसकी इच्छा नहीं हो रही थी । कदाचित् उस युवक की बात वह अब भी नहीं भूला था ।

शिवकुमारजी चले गए । संतोष वहीं पर कार्य में तन्मय हो गया । तभी उसे ज़ोर की हंसी सुनाई पड़ी । उसने ज़ोर से पुकारा, "कोई है ?"

महाराज आया । महाराज से तात्पर्य रसोइया से है ।

"देखो कौन हंस रहा है ?"

"हंसता कौन होगा ? वही सम्पत होगा ।"

सम्पत का नाम सुनते ही संतोष का मन ममता से भर आया । जब वह छोटा था तब सम्पत उसे बहुत स्नेह किया करता था । उसे कन्धों पर बिठलाता

था और उसके लिए वह बढ़िया-बढ़िया खिलौने लाया करता था। उसके मन में करुणा का उद्रेक फूट पड़ा। और आज एक घटना लोचनों के समक्ष सजीव-सी नाच उठी।

संतोष को बचपन में कागज़ के हवाई जहाज़ उड़ाने का बड़ा शौक था। वह बार-बार सम्पत को तंग करता था। सम्पत उसे बिना कुछ कहे कागज़ के हवाई जहाज़ बना-बनाकर दे दिया करता था। वह उड़ाता जाता था और सम्पत उससे बात करता हुआ बनाकर देता जाता था। कभी-कभी बड़े बाबू उसे डांट देते थे पर सम्पत कोमल स्वर में कहता था, "क्यों गुस्सा करते हैं, बिना मां का बेटा है, जितना इसे सिर चढ़ाओगे उतना थोड़ा।"

संतोष उन स्मृतियों से गद्‌गद हो गया।

उसे सम्पत से मिले लगभग सात माह हो गए थे। उसे दुःख के साथ अपने-आप खीझ भी हुई। 'सचमुच आदमी बड़ा स्वार्थी और अहसान फरामोश होता है।' वह इस वाक्य को मन ही मन कहता हुआ सम्पत के कमरे की ओर चला।

सम्पत सीता का हाथ पकड़े खड़ा था।

"तुम मुझसे क्यों नाराज़ हो ? मैं तुम्हें एक बार नहीं, हजार बार कह सकता हूं कि मैं बुरा हूं, बुरा। बुरा ही नहीं अत्यन्त दुष्ट और निर्दयी हूं। मैं तुम्हारे हृदय पर बार-बार आघात पहुंचाता हूं। समझ लो मैंने तुम्हारे हृदय को छलनी कर दिया है, टुकड़े-टुकड़े कर दिया है। लेकिन तुम बड़ी दयालु हो न, तुम जवानी में मुझसे कभी भी नाराज़ नहीं होती थीं।" उसकी आंखों में वेदना चिनगारियों-सी दहक उठी, "मुझे याद है कि तुम पहले कभी भी नाराज़ नहीं होती थीं चाहे मैं तुम्हारा कितना अपमान क्यों न करूं। पर अब तुम बदल गई हो। तुम क्या, मुझसे मेरा भाग्य बदल गया है। बड़े बाबू ने मुझे कहीं का नहीं रखा। मेरा सारा रुपया हड़प लिया और मुझे बर्बाद करने के लिए तुम्हें भेज दिया। मैं भी खूब मूर्ख हूं। क्यों बार-बार उन बातों को दुहराता हूं जिनके दुहराने से तुम नाराज़ होती हो।"

संतोष का मन घुटने लगा।

सीता क्रोध में स्थिर बनी खड़ी रही।

सम्पत उसके हाथ को चूमता हुआ बोला, "मैं बहुत दुःखी हूं सीता ! मुझे बड़े बाबू ने बर्बाद कर दिया पर तुम्हें मुझसे नाराज़ नहीं होना चाहिए। आखिर तुम मुझसे पूरे एक युग से प्यार करती हो। एक युग से प्यार करनेवाली स्त्री क्या अपने प्रेमी को छोड़ सकती है ?"

"मैं तुम्हारी बकवास से परेशान हो गई हूं।......" वह झल्लाकर बोली, "हमेशा-हमेशा तुम एक ही बात को क्यों दुहराते हो ? आखिर मैं भी आदमी हूं। मुझमें......!"

"ओह ! तुम सिर्फ आदमी हो और आज का आदमी सब कुछ सह सकता है। वह सहिष्णुता की सीमा को भी पार कर गया है। पर मैं एक पागल हूं और जो वस्तुतः पागल है वह यह सब कैसे सह सकता है। मुझे जब-जब अपने जीवन के स्वर्णिम दिन याद आते हैं तब-तब मैं दुःख से चीख पड़ता हूं। काश ! मैं शादी कर लेता और स्त्री नामक कमज़ोरी से बच जाता।"

"फिर स्त्री के लिए मिन्नतें क्यों करते हो ?"

"स्त्री मेरे लिए अब दूसरा अफीम है। जिस तरह अफीम के बिना मुझे चैन नहीं पड़ता, उसी तरह मुझे स्त्री के याने तुम्हारे बिना नींद नहीं आती। फिर अब तुम मुझे छोड़ नहीं सकतीं। आखिर तुमने मुझे कृत्रिम प्यार भी वर्षों किया है। जो काम वर्षों किया जाता है वह आदमी की आदत बन जाता है। तुम अब मुझे छोड़कर नहीं जा सकतीं।" उसने प्रफुल्ल होकर कहा, "जा सकती हो ?"

"हां।"

"फिर जाओ।" कहते हुए उसके चेहरे पर बाल-हठ जैसी भावना चमक उठी जिसमें भय और आदेश दोनों होते हैं।

सीता चलने लगी। बूढ़े बन्दर की तरह उछलकर सम्पत ने सीता का हाथ पकड़ लिया। उसे सहलाकर बोला, "अच्छा, मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि अब मैं कभी भी तुम्हारे दिल पर आघात नहीं पहुंचाऊंगा। पर मैं बड़े बाबू को कोसे बिना नहीं रह सकता।......ज़रा बैठो।" यह कहकर उसने सीता का हाथ पकड़कर बैठने का आग्रह किया। वह खड़ी-खड़ी बोली, "क्या बात है ?"

"ज़रा बैठो न ?" इस बार सम्पत के चेहरे पर अपार करुणा थी। सीता बैठ गई।

"सीता ! मैं बड़े बाबू को इतनी बद्दुआ देता हूं कि एक दिन उनका अनिष्ट अवश्य होगा। सच कहना, उन्होंने मेरा सत्यानाश नहीं किया ?" उसने अपनी दृष्टि उसपर जमा दी।

"गड़े हुए मुर्दे उखाड़ने से क्या लाभ ?" भावाभिभूत-सी वह बोली, "बड़े बाबू का वश चले तो वे अपने बेटे को भी दांव पर लगा सकते हैं। वे एक विचित्र किस्म के आदमी हैं। ऐसे आदमी जिन्हें संसार की सम्पत्ति अपनी कर लेने की हविस है। मुझे भय है कि कहीं वे पागल न हो जाएं।"

"वे ज़रूर पागल होंगे।"

"अब मैं जाती हूं। छोटे बाबू बैठे हुए हैं। उन्हें पूछूं कि आपको किसी चीज़ की ज़रूरत तो नहीं है ?"

"हां-हां।"

संतोष झट से सीढ़ियों के पीछे हो गया। जब वह वहां से चली गई तब वह सम्पत के पास आया। सम्पत के अफीम लेने का समय हो गया था। उसने अपने छोटे-से बटुए से अफीम की डली निकाली और उसे सुपारी की तरह चबाने लगा।

"काका, कैसे हो ?"

वह चौंक पड़ा, "अरे तुम ? कब आए बेटे ?"

"अभी आया हूं काका।"

"कैसे हो ?"

"मैं ठीक हूं।......काका ! तुम इस अफीम को इस तरह मुंह में कैसे रख लेते हो ? तुम्हें यह खारी नहीं लगती ?"

"नहीं बेटे ! सदा के सेवन से यह जीभ ही खारी हो गई है। अब इसे मीठी चीज़ भी खारी ही लगती है।"

"काका ! क्या तुम अब भी पूर्ववत् अपना काम कर सकते हो ?"

"क्यों नहीं ? मैं पागल थोड़े ही हूं ? मैं निकम्मा बना दिया गया हूं। मैं

पुरानी मशीन की तरह पुनः गतिशील हो सकता हूं। पर तुम्हारे पिता'''मुझे डर लगता है कि कहीं तुम अपने बाप की निंदा सुनकर मुझे जलील न कर दो। मैं दुःखी हूं। मैं अब शांति से मरना चाहता हूं और मेरे लिए शांति, मेरा यह छोटा-सा कमरा और मौजूदा व्यवस्था ही है।"

"मैं आपको कुछ भी नहीं कहूंगा। निंदा ईश्वर की भी लोग करते हैं।" उसने कुछ सत्य बातें सुनने के लिए मधुर स्वर में नीति की बात कहकर उसे प्रोत्साहित किया। उसकी इच्छा हो रही थी कि सम्पत बड़े बाबू की कुछ कमज़ोरियों से उसे परिचित कराए। यह मनुष्य का स्वभाव होता है कि वह दूसरे की दुर्बलता से परिचित हो।

सम्पत ने समीप पड़ी गिलास को उठाकर पानी का घूंट पिया। क्षण-भर चुप रहकर वह बोला, "आदमी मैंने हज़ारों देखे हैं पर बड़े बाबू जैसा आदमी मैंने कहीं भी नहीं देखा। उनमें एक पूंजीपति जैसी विचित्र सहिष्णुता और हृदयहीनता है।"

"मैं तुम्हारा मतलब नहीं समझा।"

"मेरा कहना है कि बड़े बाबू में सब गुण हैं।" वह मन ही मन तुरन्त बोला 'अवगुण' हैं। वह फिर प्रकट रूप में रुक-रुककर बोला, "वे गुण उनके खज़ाने में वृद्धि ज़रूर कर सकते हैं पर प्यार की सीमा अवश्य घटाते रहते हैं। तुम नहीं जानते, एक बार मिल में हड़ताल हुई थी तब बड़े बाबू ने हड़ताल को असफल कराकर ही छोड़ा। पुलिस की गोली से लगभग तीन मज़दूर मरे और बड़े बाबू को लगभग एक लाख का लाभ हुआ। उसके ठीक तीसरे दिन बड़े बाबू ने मज़दूर के नेता रामआसरे को गुंडों द्वारा कत्ल करा दिया। रामआसरे खुद मिल में मजदूर था। आह! जब उसकी पत्नी ने इसी बाड़ी के समक्ष आर्तनाद किया तब मेरे रोंगटे खड़े हो गए। धरती की सारी करुणा उसके रोदन में फूट पड़ी। वह दहाड़ मार-मारकर रो रही थी। बड़े बाबू बड़ी देर के बाद बाहर निकले और दुष्ट खलनायक की तरह चेहरे पर उदासी लाकर विगलित स्वर में बोले, 'बहिन! मुझे क्षमा करना कि मुझे आने में देर हो गई। क्या करूं मैं पूजा में बैठा हुआ था।'

" 'मैं लुट गई, मैं बरबाद हो गई।' वह ज़मीन पर लोट रही थी।

" 'मुझे भी ऐसा ही लग रहा है कि तुम्हारा सर्वनाश हो गया। रामआसरे एक अत्यन्त ईमानदार और कर्तव्यनिष्ठ मज़दूर था। मज़दूरों के लिए वह निरन्तर संघर्ष करता आया था; और यह उसका धर्म भी था कि वह अपने साथियों के लिए संघर्ष करे, उनके हित में सोचे और उन्हें संगठित करके अपने अधिकार दिलाएं।...मैं उससे इसीलिए प्रसन्न भी था। मुझे ज़िन्दगी से जूझनेवाला व्यक्ति बहुत अच्छा लगता है।...तुम आंसू न बहाओ। मैं तुम्हें तुम्हारे अधिकारों से वंचित नहीं करूंगा और कानून को मैं खुद मजबूर करूंगा कि वह अपराधी का पता लगाए।'

"बड़े बाबू के इस आश्वासन को सुनकर वह चली गई। लेकिन हर मज़दूर तुम्हारे बाप से घृणा करता है। उनके नाम पर थूकता है।

"और तो और, उन्होंने तुम्हारी मां को मृत्यु-दान दिया। वह बेचारी इनके प्यार के लिए तरसती रहती थी और ये बुभुक्षित इन्सान की तरह पैसों के पीछे भागते रहते थे और अन्त में उसे टी० बी० हो गई और वह मर गई। उसकी जीवन-भर एक ही तमन्ना रही कि उसे उसका पति हृदय से प्यार करे। पर बड़े बाबू उसे प्यार नहीं कर सके और वे.. बुरा न मानना, मैं एक अत्यन्त पीड़ा-दायक बात कहने जा रहा हूं, शायद तुम्हें अपमानजनक भी लगे, पर मैं कहूंगा ही, मुझे बड़े बाबू की प्रशंसा (वस्तुतः उसने इस शब्द को निन्दा के लिए ही प्रयोग किया था) करने में बड़ा आनन्द आता है। आखिर वे मेरे स्वामी हैं। मैंने उनका नमक खाया है। मुझे उनकी प्रशंसा करनी ही चाहिए।...तो मैं कह रहा था कि उन्होंने तुम्हारी मां की हत्या की। यह बात बिलकुल गुप्त है, पति की उपेक्षा भी पत्नी के लिए धीरे-धीरे प्रभाव करनेवाला ज़हर ही होती है। और बाद में ढलती उम्र में, वे चरित्रहीन हो गए। वे छुप-छुपकर कई छोकरियों को बुलाते हैं।"...सम्पत के चक्षुओं में घृणा-सी तैर उठी। शरीर में कम्पन आ गया, वह तेज़ स्वर में बोला, "सीता भी उनकी अपनी ही प्रेयसी थी जो बाद में उनके संकेत पर मेरी हो गई। यह एक विधवा है जो अपने धर्म को छोड़कर एक मातहत शरीफ रखैल का पेशा करती है और अपने स्वामी की

आशा पर दूसरों को लूटती है। पर मैंने इसे अपने बन्धन में बांध लिया है। अब इसकी आदत हो गई है कि यह मुझसे दिन में एक-दो बार झड़प करे। अब यह झड़प भी हमारे आनन्द में शरीक हो गई है।"

"अच्छा, मैं चलता हूं।" संतोष ने इस तरह कहा जैसे सम्पत की बातों का उसपर कोई प्रभाव नहीं हुआ है, जैसे वह उसका अनर्गल अलाप ही है। सम्पत को झटका-सा लगा। 'क्या उसकी सच्ची बातों का छोटे बाबू पर कुछ भी असर नहीं हुआ ?' उसने घृणा से मुंह बिचकाकर जाते हुए संतोष की पीठ को देखकर थूका, "जैसे नागनाथ वैसे सांपनाथ।"

संतोष के ओझल होते ही सीता घबराई हुई-सी आई। वह व्यग्र स्वर में बोली, "तुमने ज़रूर कोई अनुचित बात छोटे बाबू से कही होगी वर्ना वे मेरे हाथ का नाश्ता किए बिना नहीं जाते।"

"मैंने जो कुछ कहा, वह उसके पूछने पर कहा।"

"क्या कहा ?"

"मैंने कहा कि बड़े बाबू इन्सान के रूप में शैतान हैं।"

"हाय-हाय, क्या तुम चैन से जीवन भी गुज़ारना नहीं चाहते हो ? मुझे पक्का विश्वास है कि इस बार तुम्हें वे अपने घर से ज़रूर बाहर निकाल देंगे।"

"निकाल दें तो निकाल दें।" उसने गुस्से में कहा।

"जाओगे कहां ? सड़कों पर मारे-मारे फिरोगे ?"

"फिरता रहूंगा।"

"एक अफीमची सुख में ऐसी ही हेकड़ी दिखाता है। मुझे अब पूरा-पूरा विश्वास हो गया है कि तुम पागल हो गए हो या तुम्हें पागलपन के दौरे आते हैं। शायद तुम्हें पता नहीं कि एक बार पहले भी तुम इसी तरह बड़े बाबू से झगड़कर अपनी बेटी के घर गए थे। उस बेटी के घर जिसे तुमने पचास हज़ार रुपये नकद दहेज में दिए थे और उसके बदले में उसने तुम्हें एक बूढ़ा कुत्ता समझा था। तुम वहां सूखी रोटियां खाते-खाते भूखों मरने लगे और शीघ्र ही यहां वापस भाग आए। क्योंकि तुम धनवानों के स्त्री-पुरुषों का धर्म भी विचित्र है। जब तक पति, पिता, भाई, मामा इत्यादि के पास रुपया रहता है तब तक

तुम्हारी स्त्रियां तुम्हें उस नाम के अनुसार इज़्ज़त देती हैं ; बाद में वे तुम्हें कुछ भी नहीं समझतीं। इसलिए मेरा कहना मानो और किसान के बूढ़े बैल की तरह मालिक की ओर टुकुर-टुकुर देखते रहो।"

सम्पत का आवेश ठंडा हो गया। वह कुछ देर तक मौन बैठा रहा। बाद में बोला, "बड़े बाबू मुझे घर से नहीं निकाल सकते। मेरा उनके पास लगभग सवा लाख रुपये हैं। आज किसी और के पास होता तो उतना ही ब्याज और हो जाता। ईमानदारी से यही कहा जा सकता है कि अब उनके पास मेरी दूनी रकम हो गई है।"

"बस-बस, चुप रहो और मैं तुम्हें वही नाश्ता कराती हूं जो मैंने छोटे बाबू के लिए बनाया है।" सीता के अधरों पर एक स्निग्ध मुस्कान बिखरी और वह चली गई।

सम्पत सोचने लगा, 'मैं शीघ्र ही आवेश में आ जाता हूं। मुझे आवेश में नहीं आना चाहिए। सीता ठीक कहती है कि मुझे गहरा मौन धारण करके टांग टूटे घोड़े की तरह पड़े रहना चाहिए—इस घुड़शाल जैसे कमरे में।' और उसने सदा की तरह प्रतिज्ञा की कि भविष्य में वह कभी भी इस तरह की बातें नहीं कहेगा।

सीता नाश्ता ले आई। उसने नाश्ता करते हुए कहा, "फिर भी स्त्रियां स्वभावतः पुरुषों की अपेक्षा अधिक दयालु होती हैं। तुम्हें देखकर मुझे कुछ ऐसा ही लगता है।"

सीता ने कहा, "यह सब तुम मेरे कारण कहते हो क्योंकि मुझे लग रहा है कि तुम फिर जवान की तरह उत्तेजित होओगे वर्ना स्त्रियों के बारे में तुम्हारी राय बहुत गंदी होती है। तुम उन्हें सदा धोखेबाज़ कहते हो।"

"पर तुम्हें नहीं।" उसने ढीठता से कहा।

"मुझे भी।" वह कड़ककर बोली और चली गई।

सुबह ही सुबह संतोष को बड़े बाबू का बुलावा आया। उसने जल्दी से स्नानादि किया और चलने को उद्यत हुआ।

नीता ने विनम्र शब्दों में कहा, "चाय पीते जाइए। बादाम का हलुआ भी तैयार है। सवेरे-सवेरे खाली पेट अच्छा नहीं रहेगा।"

नीता धार्मिक कृत्य से निवृत्त होने आसन पर बैठ गई।

संतोष को भूख लगी थी इसलिए वह नाश्ता करने बैठ गया। नाश्ता उम्दा बना था पर उसने सदा की तरह उसकी कोई प्रशंसा नहीं की। हालांकि रसोई बनानेवाली ब्राह्मणी ने प्रशंसा सुनने की आशा में संतोष से यह पूछा भी कि हलुआ कैसा बना है किंतु संतोष ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह केवल नाश्ता करता रहा। बेचारी ब्राह्मणी का चेहरा उतर गया।

नीता उसके पास ही बैठी हुई रामायण पढ़ रही थी।

सासु ससुर गुरु सेवा करेहू। पति रुख लखि आयसु अनुसरेहू॥
अति सनेह बस सखी सयानी। नारि धरम सिखवहिं मृदुबानी॥
सादर सकल कुअँरि समुझाईं। रानिन्ह बार-बार उर लाईं॥
बहुरि बहुरि भेंटहिं महतारीं। कहहिं बिरंचि रचीं कत नारी॥

नीता का स्वर मधुर था। 'कहहिं बिरंचि रचीं कत नारी' को उसने ज़ोर देकर दुहराया। हलुए का कौर लेते-लेते संतोष उठा और भड़ककर बोला, "अपने खसमों को दुःख देने के लिए।" और वह इतना कहकर हाथ धोने लगा। उसके चेहरे पर आक्रोश की रेखाएं नाच उठीं।

नीता रामायण को नमस्कार करके उठी और बोली, "नहीं। जीवन और जगत का समस्त कष्ट उठाने के लिए। पतियों की व्यर्थ उपेक्षा, घृणा और दुत्कारें सहने के लिए ही नारी का जन्म हुआ है।"

"नीता! तुम मुझे तंग न करो।"

"मैं आपको तंग करती हूं या आप मुझे कष्ट पहुंचा रहे हैं? व्यर्थ ही

मस्तिष्क में वहम बसा लेते हैं। कह दिया कि वह लड़का बेचारा गरीब है और नौकरी के लिए आया था पर आप मानते ही नहीं। मैंने हज़ार बार कह दिया कि मैं इन सब घुड़कियों से नहीं डरती। मैंने कोई चोरी नहीं की। आखिर उस लड़के से ब त कर ली तो कौन-सा अपराध हो गया ?"

"तुम डरो क्यों ? धन पास में है न ? बुज़ुर्गों ने ठीक कहा है कि औरत को पांव की जूती ही समझना चाहिए।"

"बुज़ुर्गों ने यह भी कहा है कि नारी को पूजना चाहिए।"

"बहस न करो।" कहकर वह चला गया।

एक मुख्य घटना का मैंने पीछे संकेत किया था। मैं चाहता हूं कि अब उस पर थोड़ा-सा प्रकाश डाल ही लूं।

उस लड़के के देखने के बाद संतोष के मन में सन्देह के बादल छाते गए। जैसा कि मैं पहले बता चुका हूं कि उसे नीता का फैशन ज़रा भी पसन्द नहीं था और न ही उसे उसका कहीं आना-जाना ही अच्छा लगता था। पर जिस दिन उसने उस अनजान लड़के के साथ उसे बातचीत करते हुए देखा, उसके बाद नीता के चेहरे पर जो तुरन्त प्रतिक्रियाएं हुईं उनसे उसे एक वहम हो गया। ...और एक दिन जब नीता अच्छे मूड में थी और वह यह भूल चुकी थी कि पति को उसपर सन्देह है तब उसने यों ही बातों ही बातों में साधारण रूप में यह कह दिया,"हां वह लड़का उसकी ओर इधर आकर्षित हो रहा था।" सहज भाव से यह कहने के बाद नीता के हृदय पर झटका-सा लगा। उसने संतोष की ओर देखा—उसका मुख उदास था। उसे लगा कि अभी पति का अतीव स्नेह प्रदर्शन एक चाल था, उसमें इस बात को जानने का रहस्य था। वह उदास हो गई।

इसके बाद बंगले के लोगों को यह पता शीघ्र ही चल गया कि उन दोनों पति-पत्नी के बीच कोई दुराव है। वे आपस में कम बोलते हैं और कभी-कभी उनके सोने के कमरे से उत्तेजित और तेज़ बातचीत सुनाई पड़ती है जिसका आधार आपसी वैमनस्य ही हो सकता है। अब संतोष बाबू सदा अकेला खाना खाते हैं और जैसा कि पहले सन्तोष बाबू बाहर जाने के नाम से पीले पड़ जाते

थे, अब बाहर के नाम से उल्लसित हो जाते हैं। उनमें एक स्फूर्ति आ जाती है।

धीरे-धीरे यह खबर बड़े बाबू के कानों में भी पहुंची।

बड़े बाबू सृष्टि-मंच के कुशल अभिनेता थे। वे एकांत में बैठकर गंभीरता से हर बात पर आदि से अंत तक विचार करते थे।

और एक दिन दोपहर को जब सन्तोष कानपुर जाने को तैयार हो रहा था तब बड़े बाबू ने वकील की तरह निःसंकोच होकर कठोर स्वर में पूछा, "बहू से कुछ अनबन हो गई है ?"

"नहीं तो।"

"झूठ क्यों बोलते हो ? मेरी तेज़ आंखें आदमी के अन्तस् का मर्म जानने की अभ्यस्त हो चुकी है।"

"पर आपको केवल वहम है।"

"मुझे वहम अवश्य है किंतु मेरे वहम का सदा कोई न कोई आधार होता है। बात क्या है ?" उन्होंने कड़ककर पूछा।

"कुछ भी नहीं। आप···?"

"बेटा, आत्मवंचना पाप है। सन्देह को व्यापक बनाकर अपने जीवन को विषाक्त बनाना सर्वथा बुद्धिहीनता है। किसी बात का शीघ्र स्पष्टीकरण ही लाभप्रद होता है।"

"मैं आपको कुछ···?"

"मुझे दुःख है कि मेरा एक बेटा अपना दुःख मुझे नहीं कह रहा है। इससे अधिक मुझ जैसे बाप का दुर्भाग्य क्या हो सकता है ? मैं नहीं चाहता तुम मेरी लक्ष्मी जैसी बहू को अपमानित-लांछित करो। मुझे यह भी विदित हुआ है कि तुम्हें उसके चरित्र पर सन्देह है। अगर ऐसी बात है तो मुझे दुःख है कि तुम मेरी बहू को नहीं समझ पाए हो। वह एक नितान्त साध्वी और कोमल स्वभाव की स्त्री है। वह गंदे पानी की नाली कभी नहीं हो सकती और न ही उसे तुम वह डगर कह सकते हो जिसपर हर कोई इन्सान चला जाए।"

"नहीं, नहीं, ऐसी बात नहीं।" उसने डरते-सहमते हुए कहा। उसका स्वर

कांप रहा था और उसके चेहरे पर सफेदी झलकने लगी थी।

"तुम्हारा कांपता हुआ स्वर और चेहरे की परेशानी मुझे बता रही है कि तुम उसे कुलटा समझने लगे हो। अगर यह सही है तो मुझे कहना पड़ेगा कि तुममें कुछ अक्ल नहीं है और तुम हिन्दुस्तानी फिल्म के लेखकों की तरह सोचते हो। मैं तुम्हें विश्वास दिला रहा हूं कि वह साध्वी और सती है। तुम्हें वापस अपना हंसता-गाता संसार बसा लेना चाहिए।"

संतोष की सांस रुक रही थी। उसने बड़ी मुश्किल से इतना ही कहा, "मेरा चुनाव गलत हो गया है।"

"यह तुम्हारी अक्ल का दिवालियापन है। तुम नहीं जानते कि मैं तुम्हारी मां की कितनी इज़्ज़त करता था? मैंने इस घर की इज़्ज़त बनाने के लिए कौन-सा सुख नहीं छोड़ा? मैं नहीं चाहता कि तुम उन सबपर पानी फेर दो।"

संतोष को सम्पत की बातें याद हो उठीं। वह घृणा से भर उठा। उसने मन ही मन कहा, 'आपने मेरी मां को मारा, आप हत्यारे हैं। सम्पत को आपने जीते जी मार दिया।....पर मैं उनकी तरह मन में कुंठाएं लेकर मरना नहीं चाहता। क्या आप समझते हैं कि कोई पत्नी अपने पति से यह कहेगी कि उसका किसीके साथ अनुचित सम्बन्ध है?'

"क्या सोच रहे हो?"

"कुछ भी नहीं।"

"बहू को कुछ भी न कहना। वह देवी है। औरत अनादर की वस्तु नहीं है। वह सर्वथा पूजनीय और विश्वसनीय होती हैं।"

लेकिन बड़े बाबू को इस घटना की सारी पृष्ठभूमि मालूम थी कि वह लड़का उसके पास आया था और संतोष की अनुपस्थिति में वह बहू से मिला था और अचानक संतोष के आ जाने से वह घबराकर चला गया। पुरुष के लिए इतनी घटना ही काफी होती है—स्त्री को तंग करने के लिए।

रसोई बनानेवाली ब्राह्मणी ने इस रहस्य का पता नीता से लगा लिया और उसने बड़े बाबू को यह घटना ज्यों की त्यों बता दी। उस समय बड़े बाबू के चेहरे पर कुटिल रहस्य-भरी मुस्कान थी।

बड़े बाबू नीता से भी मिले और उसको यह आश्वासन दिया कि वह कोई भी चिन्ता न करें। यह संतोष का बचपना है। फलस्वरूप नीता की हिम्मत बढ़ गई और वह संतोष से यह कहने लगी कि अगर उसने उससे बातचीत कर भी ली तो कौन-सा गुनाह कर दिया ? आकर्षित होना कोई पाप नहीं है। इत्यादि।

उसकी इस स्पष्टवादिता-भरे उत्तरों ने संतोष के संदेह को और बल पहुंचा दिया। उसे लगा कि जो पत्नी इतनी बुलंदगी से ऐसी निम्न बातें कह सकती है, वह···? उसका शंकालु मन इस तरह की बातों को निम्न ही समझता था।

धीरे-धीरे उनका दुराव बढ़ता ही गया।

अब मैं पुनः छूटे हुए प्रसंग पर आता हूं।

अपनी बहू से झगड़कर वह सीधा बड़े बाबू के पास पहुंचा। बड़े बाबू उस समय बड़े उत्तेजित और उद्विग्न थे। वे अपनी बैठक में सरगर्मी से टहल रहे थे। संतोष ने जैसे ही कमरे में प्रवेश किया वैसे ही बड़े बाबू ने उसे अर्थ-भरी तीखी दृष्टि से देखा। वह तीखी दृष्टि एक उन्मादित प्राणी की ही हो सकती है जिसमें गुस्सा, आतंक और निष्ठुरता से मिश्रित विचित्र जलन की दीप्ति रहती है। बड़े बाबू की उस दृष्टि को कोई सहन नहीं कर सकता है। संतोष उस आकृति को देखकर अपने मन की सब बातें सदा की तरह भूल गया।

बड़े बाबू बार-बार हाथों को मल रहे थे। बार-बार वे नाक से फूं-फूं की अजीब आवाज कर रहे थे।

संतोष भयभीत बालक की तरह उनके सामने खड़ा था। वह कुछ भी नहीं बोल पा रहा था। उसके बोलने की हिम्मत भी नहीं हुई।

"मैं आज हार गया। मुझे मेरे प्रतिद्वन्द्वी ने वह पराजय दी है जिसकी मुझे इस जन्म में क्या, सात जन्मों में भी आशा नहीं थी। यह सब तुम्हारे कारण हुआ। इसके जिम्मेवार तुम हो !"

"मैं कुछ भी नहीं समझा।" उसने बड़े बाबू की ओर देखते हुए कहा।

"तुम कैसे समझोगे ? तुमने काली-गोरी का प्रश्न खड़ा करके मुझे तबाह

कर दिया। आह! कितनी बढ़िया कम्पनी मेरे हाथ से चली गई। काश! तुम सेठ पन्नालालजी की लड़की से विवाह कर लेते?" बड़े बाबू ने चंचलता से एक-दो बार विचित्र तरह से हाथ हिलाया। उनके हाथों की उंगलियों में इतना कठोरपन आ गया था जितना हिस्टीरिया के रोगी की उंगलियों में आता है। संतोष को वहम हो गया कि शायद पिताजी को दौरा आनेवाला है। इस विचार से उसका चेहरा पीला पड़ गया और आंखों में भय नाच उठा। वह थोड़ा-सा उनके समीप बढ़ा। किंतु बड़े बाबू ने अपनी बड़ी-बड़ी मूंछों पर हाथ फेरकर कहा, "इस पराजय के ज़िम्मेवार तुम हो। मुझे पन्नालाल ने ऐन मौके पर धोखा दे दिया। आदमी की बात की कीमत कुछ भी नहीं है। इस घटना के बाद मुझे यकीन हो गया है कि मैं किसीका विश्वास नहीं करूंगा। पन्नालाल ने मुझसे बदला भी कितना भयंकर लिया है! मुझे करोड़पतियों में नीचा दिखा दिया है!"

"मैं आपका मतलब नहीं समझा।"

बड़े बाबू धम्म से बैठ गए। आरामकुर्सी पर उनके पांव हिल रहे थे। संतोष उनके सामने बैठ गया।

"मेरी सारी कोशिशों पर इस पन्नालाल के बच्चे ने पानी फेर दिया। इस कम्पनी के लिए मैंने क्या नहीं किया! महाराजश्री से अपना सम्बन्ध बिगाड़ा। क्योंकि मैं उनके कुछ हीरों को स्वादिष्ट लेमन की गोलियों की तरह पचा गया। और तो और, उनके जेवरात बेचकर सारे रुपये लेकर मैं सीधा कलकत्ता चला आया। अगर मुझे ऐसा मालूम होता कि यह कम्पनी मुझे नहीं मिलेगी तो मैं अपनी उस मुर्गी को धीरे-धीरे हलाल करता अर्थात् यह एक करोड़ की सम्पत्ति लेकर सीधा यहां नहीं चला आता।...मैंने पन्नालालजी को अन्त में यह भी कहा कि आप उसमें अपनी पार्टनरशिप डाल लें पर उन्होंने मुझे थप्पड़ जैसा उत्तर दिया, 'मैं तुम्हारे साथ एक पैसे का भी धंधा नहीं कर सकता। तुमने मेरी पगड़ी उछाली और मैंने तुम्हारा मूंछ का चावल नहीं रहने दिया।'...वह मुझे सीधा आपसे तुम-तुम कहने लगा।...और मुझे इस तरह विदा कर दिया जैसे मैं कोई संस्था का चदाखोर हूं। मैं उसकी यह उपेक्षा और बर्ताव नहीं सह

सकता। मैं उससे बदल लूंगा। उसे अपनी करनी का फल चखाऊंगा।"

बड़े बाबू की बड़ी-बड़ी मूंछें कत्थक नृत्य करने लगीं।

संतोष सदा की तरह मौन रहा।

बड़े बाबू ने कहा, "फिर भी कुछ रुपयों का बंदोबस्त हो जाए तो मैं अपनी शान रख सकता हूं।"

"जब प्रतिष्ठा का ही सवाल आ गया है तब आप किसी महाराज को अपनी मिल गिरवी रखकर इतनी रकम प्राप्त कर सकते हैं। बेकारी में महाराजा लोग आपका यह सौदा मंजूर कर लेंगे अथवा बैंकों से भी रुपया लिया जा सकता है।"

"मैंने यह प्रण कर रखा है कि दूसरों के रुपयों से यह खेल खेलूंगा। खैर, इतनी गहरी और गंभीर बातें तुम नहीं समझ सकते? तुम अहमदाबाद जाओ और 'मीनू भाई चुन्नी भाई' के मालिक चिमन भाई से मिलो। उन्हें यह कागज़ात दिखाना और कहना कि अगर आप यह कम्पनी खरीद सकते हैं तो आपको बहुत लाभ होगा। यह एक अच्छी 'गुडविल' की कम्पनी है और इसके अन्तर्गत जितने भी कन्सर्नस हैं, वे अच्छी आमदनी के हैं।"

"जैसी आपकी आज्ञा।"

"हवाई जहाज़ से जाना।"

उसको भेजकर बड़े बाबू निश्चिन्त हो गए। पर जैसाकि उनका स्वभाव है कि बात के प्रति वे व्यग्र से व्यग्रतर हो जाते हैं, आज भी ऐसा ही हुआ। वे पन्नालाल द्वारा किए गए तिरस्कार और अपमान को बड़ी देर तक नहीं भूल सके।

वे दिन-भर सदा की तरह अपना कार्य करते रहे। व्यापारियोंवाली स्थिरता उनमें मौजूद रही। किन्तु उनके अन्तस् की व्यापारियोंवाली सजगता भी नहीं सोई थी। उन्हें बार-बार पन्नालाल की याद हो उठती थी। तब उनका मन क्षण-भर के लिए मौजूदा वातावरण से हटकर कहीं और भटक जाता था। राग, द्वेष और हिंसा से भर जाता था। आंखों में आग बरसने लगती थी और हाथ-पांव ऐंठने लगते थे।

रात का खाना खाते समय उन्होंने एक सम्पूर्ण योजना बनाई।

वे सोचते रहे—पन्नालाल ने मेरा अपमान किया ।

पन्नालाल ने मेरा तिरस्कार किया ।

पन्नालाल ने मुझे एक चंदाखोर की तरह निकाला ।

पर क्यों ?

बड़े बाबू गंभीर होकर विश्लेषण करने लगे । उन्होंने खाना बीच में ही बन्द कर दिया । महाराज उन्हें बड़ी देर तक साभिप्राय दृष्टि से देखता रहा । उसकी हिम्मत नहीं हुई कि वह बड़े बाबू को यह कहे कि रोटी ठंडी हो रही है।

बड़े बाबू ने फिर विचारा—

क्योंकि मैंने उसकी पहले पगड़ी उछाली ।

मैंने उसका मर्मान्तक अपमान किया ।

मैंने अपने वचनों का पालन नहीं किया ।

मैंने उसकी लड़की को लांछित किया ।

क्यों किया ?

बड़े बाबू चौंककर इधर-उधर देखने लगे । महाराज उनके सामने बुत-सा खड़ा था ।

"क्या बात है ?" उन्होंने क्रोध से महाराज की ओर देखा ।

"आपको क्या चाहिए ?" उसने कांपते हुए पूछा ।

बड़े बाबू ने इधर-उधर देखा, "मिठाई ।···क्या रसगुल्ला है ?"

"जी ।"

"दो दे दो ।"

बड़े बाबू ने दो-चार कौर और लिए । एक रसगुल्ला भी खाया और बाद में वे पुनः समाधिस्थ हो गए ।

'मैंने अपने बेटे की इच्छा के लिए यह सब किया ? मेरे बेटे ने लड़की के गुण को नहीं, रूप को देखा और अब परेशान हुआ घूमता है । लेकिन पन्नालालजी के एक और बेटी है न ? हां है ?···' जादुई परिवर्तन आ गया बड़े बाबू के चेहरे पर । कोमलता की रेखाएं उनके होंठों पर नाचती हुई भेद-भरी मुस्कान में मिल गईं । वे जल्दी-जल्दी खाना खाने लगे । जैसे उन्होंने अपने मन

में पूरी योजना पर सफलतापूर्वक सोच लिया हो।

"बाबू सा', एक रसगुल्ला ?"

"बस।" बड़े बाबू ने बड़े उत्साह से हाथ धोया।

"आप बड़े खुश नज़र आ रहे हैं। पहले मैं आपकी आकृति देखकर डर गया था।" महाराज ने चाटुकारिता से कहा।

"महाराज ! अन्धे को आंखें मिल जाने से जो खुशी होती है, वही खुशी मुझे अभी हो रही है। मैं प्रभु को धन्यवाद देता हूं कि उसने मेरी विचार-शक्ति को बहुत तेज़ बनाया है।"

"आपको खुश देखकर मुझे भी खुशी होती है।"

"यह एक वफादार नौकर के लक्षण हैं।"

बड़े बाबू बाहर चले गए।

उसके कुछ दिनों बाद ही इस तनाव की खबर संतोष और नीता के सभी परिचितों में फैल गई। उनसे किसीने कोई प्रश्न नहीं किया पर घर की नौकरानियां चोरी-छुपे उन्हें लेकर अवश्य चर्चा करती थीं। उनकी आंखों में एक निरादर की भावना चमका करती थी, जिससे नीता नौकरानियों पर बार-बार झल्ला पड़ती थी। संतोष की मनःस्थिति बड़ी विचित्र थी। वह अन्तर्वेदना में जल उठा और उसे लगता था कि उसकी बीवी जितनी रूपवती है, उसका हृदय उतना ही कुरूप है।···और वह एक चरित्रहीन स्त्री के कार्य-कलापों को मन ही मन दुहराकर व्यग्र हो जाता था। उसके समक्ष किस्सा तोता-मैना की कुछ बेवफा नायिकाएं घूम जाती थीं और वह मर्मान्तक वेदना से कराह उठता था।

कल ही की बात है।

उसकी मिल का एकाउण्टेट उसे कह रहा था, "एक दरिद्र जवान छोकरे को मैंने आपके बंगले से निकलते देखा। आजकल ऐसे लड़के चोरियों में सिद्ध-

हस्त होते हैं, आपको होशियार रहना चाहिए।"

संतोष के कलेजे पर ऐसी बात से तीर चल जाता। वह एकदम उद्विग्न हो जाता और उसके फड़कते हुए होंठों के बीच से एक विचित्र किन्तु धीमी ध्वनि होती—हुम् हुम् हुम्। चाहे वह लड़का कोई भी हो किन्तु उसके मस्तिष्क में एक ही लड़के की तस्वीर छा गई थी।

एक दिन बड़े बाबू ने उसकी व्यग्रता को और बढ़ाया। वे उसे डांटने लगे। कहने लगे, "तुम निरे मूर्ख हो। तुममें मेरा खून ही नहीं। यह अधीरता और व्यग्रता नादान बच्चों में होती है। केवल मन ही मन बड़बड़ाते रहते हो। आखिर बात क्या है? जो मन में है, उसे साफ-साफ क्यों नहीं कहते?"

वह दर्द-भरे स्वर में इतना ही कह पाया, "मुझे आपकी बहू ने परेशान कर दिया है। वह मुझसे बहुत ज़बान लड़ाती है।"

"मर्द की तरह शासन क्यों नहीं करते? मैंने पहले ही कहा था कि रूप की जगह खानदान को देखो पर मेरी किसने सुनी? आदमी ज़रा-सी अंग्रेज़ी क्या पढ़ लेता है, गोया अपनी ही बुद्धि को श्रेष्ठ समझता है? पर मुझे तुम्हारी एक बात अच्छी नहीं लगती कि तुम अपनी बहू को सन्देह की दृष्टि से देखो। बहू आखिर लक्ष्मी होती है। उसका निरादर दरिद्रता को लाता है। खानदान को बदनाम करता है।" और बड़े बाबू की इस बात से वह और उद्विग्न हो जाता और घर आकर वह नीता से झगड़ पड़ता कि तुम पिताजी को सिखला-सिखलाकर मेरे पास भेजती हो।

नीता उसका विरोध करती थी। उसे विश्वास था कि बड़े बाबू उसके पक्ष में हैं और इसी आधारहीन विचार से वह संतोष के थप्पड़ का जवाब मुक्के से दे दिया करती थी। धीरे-धीरे उन दोनों के बीच वातावरण विषाक्त हो गया और वाक्-युद्ध इस सीमा तक पहुंच गया।

"वह लड़का क्यों आता है?"

"वह लड़का हज़ार बार आएगा।"

"तू कुलटा है।"

"मैं महा कुलटा हूं! बस!"

और फिर परस्पर विषाक्त बातें। संतोष का मन विचलित हो गया। उसे लगा कि नीता उसके जीवन में जहर उड़ेल देगी। वह उससे डरने भी लगा। क्योंकि उसको किसीने कह दिया था कि चरित्रहीन स्त्रियां अन्त में पति को भी मार देती है या तांत्रिकों से मरवा देती है।

एक दिन ज़रा-सी बात को लेकर संतोष ने नीता को पीट दिया। बड़े बाबू ने उसे भला-बुरा कहा और नीता को भी डांटा। निदान, संतोष मरने की धमकी-भरा यह पत्र लिखकर चौथे दिन चुपके-से गायब हो गया। उसके गायब होते ही बड़े बाबू ने नीता को आड़े हाथों लिया जो मुझे रसोई बनानेवाली ब्राह्मणी ने बताया।

बड़े बाबू दूसरे ही दिन आए और बिलखती हुई नीता को डांटकर बोले, "मैं तुम्हें ऐसी नहीं समझता था। आखिर तुमने मुझसे मेरे बेटे को अलग करा ही दिया। अगर उसे कुछ हो गया तो मैं तुम्हें ज़िंदा नहीं छोड़ूंगा।...... मैं जानता हूं कि तुम सती हो पर गत दिनों का व्यवहार देखकर मुझे लगा कि तुम्हारे मन में ज़रूर कहीं न कहीं खोट है। पति के साथ ऐसा दुर्व्यवहार मैंने कहीं नहीं देखा। झगड़े-फसाद, मन-मुटाव, लड़ाई आदि होती रहती है किन्तु पत्नी ऐसी स्थिति उत्पन्न नहीं करती कि उसका पति उसीके सुहाग को खत्म करने को विवश हो। यह तुम्हारे लिए लज्जा की बात है, अत्यन्त लज्जा की। मैं कहता हूं कि मुझे मेरा बेटा जल्दी से जल्दी वापस दे दो अन्यथा मैं किसी अनर्थ का ज़िम्मेवार नहीं रहूंगा। और हां, इस बात का ख्याल रहे कि यह भेद भेद ही बना रहे।"

नीता का साहस रात के सपने की तरह खंड-खंड हो गया। उसने भी यह निश्चय कर लिया कि अगर संतोष एक माह के भीतर नहीं आया तो वह भी अपने प्राण दे देगी।

स्थिति बड़ी गंभीर थी।

जो मैंने कहानी का फ्लैश बैक दिया था वह यहां खत्म हो गया है। अब स्थिति यह है कि अगर एक माह में संतोष का पता नहीं लगा तो नीता मर जाएगी।

इस गंभीर और विकट वातावरण में बड़े बाबू की तटस्थता और स्थिरता ने मुझे संदेह में डाल दिया और मुझे लगा कि हो न हो संतोष की खबर बड़े बाबू को अवश्य है। चाहे कुछ भी हो, एक बाप अपने इकलौते बेटे के लिए, जो बिना कुछ कहे मृत्यु की धमकी देकर चला गया है, ऐसी शांति से नहीं रह सकता।

मैं सम्पत के पास गया।

मैंने उसके समक्ष अपने मन की इस जिज्ञासा को रखा। उसने मुझे तुरन्त बताया, "यह संभव है। बड़े बाबू के पेट की पाचन-क्रिया इतनी तेज़ है कि उसमें हर वस्तु बिना किसी गड़बड़ी के रह सकती है।"

मैंने नीता से भी यह प्रश्न किया, "मुझे ऐसा लग रहा है कि इस दुर्घटना को घटित कराने में बड़े बाबू का हाथ है। बड़े बाबू यह जानते हैं कि संतोष कहां है। क्या एक बाप ऐसी स्थिति में इस शांति से बैठ सकता है?"

नीता ने स्पष्ट शब्दों में विरोध किया, "यह संभव नहीं। बड़े बाबू उन्हें बहुत प्यार करते हैं। वे इतने नीच और कमीने नहीं हो सकते।"

लेकिन मैंने एक दुष्टता की। मैंने एक अन्य सम्वाददाता को कह दिया कि संतोष के गुम हो जाने की यह खबर तुम छाप दो। उसने मेरे संकेत पर यह खबर प्रकाशित भी कर दी। फिर क्या था? लोगों की भीड़ बड़े बाबू के यहां लग गई। टेलीफोन पर टेलीफोन आने लगे। बड़े बाबू अब क्या करते, उन्हें विवश होकर यह मानना पड़ा कि लड़का गायब है। उनके मुख से ऐसा निकलना था कि चर्चा ने और गंभीर रूप धारण कर लिया। बड़े बाबू की परेशानी आने-जानेवालों ने और बढ़ा दी पर कारण अस्पष्ट ही रहा।

इससे नीता की व्यग्रता और बढ़ गई।

चौथे दिन दुखी महाराज ने मुझे एक राज़ और बताया।

उस राज़ ने मुझे बड़े बाबू के प्रति घृणा से भर दिया। संतोष के गायब हो जाने की खबर को लेकर रसोई बनानेवाला महाराज बहुत दुखी हो गया। 'इकलौता बेटा, और वह भी बिना कारण चला जाए, यह ठीक नहीं है।' उसे रह-रहकर यही लगता था कि जरूर बड़े बाबू ने उसे डांटा होगा जिससे वह

चला गया होगा। वह जानता था कि बड़े बाबू अत्यन्त निष्ठुर हैं और अपनी बात के लिए उनमें दृढ़ निश्चय रहता है। वह नीता के मनमुटाव से अनजान था।

पर कल उसने मुझे एक नई बात और बताई।

वह बात यह थी कि बड़े बाबू अपने उसी पंडित को, जो चतुर दलाल था, यह कह रहे थे, "एक माह में नीता आत्महत्या कर लेगी तब मैं पन्नालाल की छोटी बेटी का विवाह अपने बेटे संतोष से कर दूंगा। क्योंकि मुझे विश्वास है कि संतोष कभी मर नहीं सकता। वह अत्यन्त कायर प्रकृति का है।"

मेरे पांवों के नीचे की ज़मीन खिसक गई। क्या आदमी इतना नीच हो सकता है? धन की भूख सभी भूखों से भयानक है जिसकी तृप्ति की कोई सीमा नहीं।

मुझे याद आया कि मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि जो प्राणी किसी एक विशेष उद्देश्य के लिए अपना जीवन अर्पित कर देता है वह अपनी समस्त कल्पनाशक्ति से अपनी आकांक्षा के एक ही प्रतीक से चिमटा रहता है। बड़े बाबू की आकांक्षा और उद्देश्य सिर्फ पैसा ही पैसा था। वे चाहते थे या उनका ऐसा प्रयास रहता था कि संसार का सारा पैसा उनकी मुट्ठी में आ जाए और वे कुबेर का ओहदा प्राप्त कर लें। इस पैसे की तीव्र इच्छा के कारण उनके मन का शैतान भी दिन-प्रतिदिन निर्दयी और दुष्ट होता जा रहा था। जब उन्हें यह पता लगा कि नीता जैसी भावुक युवती जो उन्हींके संकेतों पर अपने पति से झगड़ा करती रही है, आत्महत्या कर सकती है तब उन्होंने अपनी पूरी शक्ति से यही चाहा कि वह मर जाए और वे पन्नालालजी की बेटी को अपनी बहू बनाकर ले आएं ताकि वे अपने अपमान का बदला वापस ले सकें कोई बढ़िया मिल खरीदकर।

उनकी मैं सम्पूर्ण योजना समझ गया। मैंने थोड़ी और जासूसी से पता लगाया कि जो लोग संतोष की और नीता की चर्चा करते थे, वे बड़े बाबू के ही गुर्गे थे और बड़े बाबू चाहते थे कि इन मियां-बीवी में गहरा मनमुटाव हो जाए और वह पन्नालाल की बेटी को अपनी बहू बना ले ताकि उनका एक प्रतिद्वंद्वी और मर जाए।

छिः!

मैं घृणा से भर उठा। मैंने निश्चय कर लिया कि मैं बड़े बाबू से सीधी बातचीत करूंगा।

रात के भोजन के समय मैं उनके पास गया। आजकल मैं उनके यहां नहीं रहता हूं क्योंकि उस समाचार के छपने के बाद बड़े बाबू मुझसे सख्त नाराज़ हो गए थे और उन्होंने मुझे कमीना तक भी कहा था।

मैंने उन्हें अपने आने की सूचना दी तथा साथ में यह भी कहलाया कि एक अत्यन्त आवश्यक एवं गोपनीय कार्य है।

गोपनीय शब्द ने उनपर ज़ोरदार असर किया और मुझे उनसे मिलने की इजाज़त मिल गई।

मैंने उन्हें जाते ही नमस्कार किया।

उन्होंने अर्थ-भरी दृष्टि डालकर मुझसे कहा, "खाना खाओगे ?"

"नहीं।"

"हां, अब बताओ, क्या कहना चाहते हो ?" वे रोटी को अपने अगले दांतों से तोड़ने लगे जैसे बच्चा बचपन में तोड़ा करता है क्योंकि उनके अगले दांत ही पहले आते हैं।

"एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात मैं आपसे आज करने आया हूं। क्योंकि अगर वह पत्र में छप गई तो आपकी निश्चित रूप से बड़ी बदनामी होगी। शायद आप अपने लोगों में मुंह दिखाने के लायक भी न रहें।"

बड़े बाबू ने आवेश में तत्-तत् कहा और वे गुस्से में थाली को आगे खिस-काते हुए चीखे, "तुम मुझे बार-बार इस तरह की धमकी क्यों देते हो ? क्या मैंने अपने बेटे को स्वयं गायब करा दिया है ? क्या मैं इतना गया-गुज़रा हूं कि मुझमें इन्सानियत का ज़रा भी अंश नहीं है।" उनकी मूंछें नाचने लगीं। उनकी आंखों में शैतानों जैसी दहक थी।

"मैं धमकी नहीं देता लेकिन मैं आपको एक परामर्श देना चाहता हूं कि आपकी इस चाल का कहीं संतोष को पता न चल जाए। आखिर वह भी आपका बेटा है और आपकी बहुत-सी जायदाद का मालिक भी है। यह एक अत्यन्त विचारणीय प्रश्न है कि आपका परस्पर द्वन्द्व न छिड़ जाए।"

"तुम्हारा मतलब है कि वह नादान लड़का मुझसे झगड़ा करेगा ?"

"अब यह कैसे संभव है ? मैं अभी कुछ भी प्रामाणिक रूप से नहीं कह सकता हूं कि संतोष ज़िंदा है या मर गया है ! पर मुझे अभी-अभी एक दूसरा पत्रकार बता रहा था कि वह आपके कब्ज़े में है और आप उसको तब तक छुपाए रखना चाहते हैं जब तक नीता मर न जाए। मुझे वह पत्रकार यह भी कह रहा था कि उन दोनों के बीच वैमनस्य की आग लगानेवाले भी आप ही हैं, क्योंकि आप लालचवश पन्नालालजी की बेटी को अपनी बहू बनाकर उन्हें पुनः प्रसन्न करना चाहते हैं।" मैं बड़ी दृढ़ता से साहस को बटोर-बटोरकर बोल रहा था।

बड़े बाबू का चेहरा एकदम लाल हो उठा और वे पागलों की तरह चीख पड़े, "चुप हो जाओ। निकल जाओ यहां से। जाओ। तुम्हें जो कुछ भी करना है, वह कर लो।"

मैं उनकी भयानक आकृति देखकर डर गया। उन्होंने आवेश में थाली को उठाकर ज़ोर से दीवार पर फेंक दिया। मैं अप्रतिभ हो गया। मेरा खून जमने लगा। मैंने किसी आदमी के चेहरे पर ऐसी नृशंस और विकराल भावनाएं पहले कभी नहीं देखी थीं। बड़े बाबू अनिमेष दृष्टि से मुझे देख रहे थे और कांप रहे थे। उनकी आंखों में हिंसा थी, हिंसा।

"मैं आपकी तरह गुस्से में कोई अनुचित कदम नहीं उठाऊंगा। मेरा कोई कदम आपकी प्रतिष्ठा के लिए ज़बर्दस्त कलंक बन सकता है। तब आपके अपने सेठिया-समाज में आपका ओहदा एक हत्यारे से अधिक नहीं रहेगा और आपको उससे अत्यन्त दुस्सह पीड़ा मिलेगी। मैं यही चाहूंगा कि आप इस तरह की नीच मनोवृत्ति का परित्याग कर दें और अपने बेटे को बुला लें। मुझे पूरा विश्वास है कि बच्चा आपके अपने अधीन है।"

मेरी कम्पनहीन वाणी के कारण बड़े बाबू सहम गए। कुछ हकलाते हुए वे बोले, "मैं अपने इकलौते बेटे के लिए कितना दुखी हूं, यह मैं ही जानता हूं। तुम मुझे सांत्वना देने के बजाय और सताना चाहते हो, सताओ। मुझे इससे बड़ा संताप पहुंचेगा। सचमुच मुझे अब मालूम हुआ कि तुम इतने निर्दय और दुष्ट हो।"

'यह कितना अभिनय-प्रवीण है।' मैंने मन ही मन सोचा, 'क्या पैसा आदमी को इस सीमा में ला देगा ? उसे इतना दुष्ट, निर्दयी और स्वार्थी बना देगा ?'

"मैं खुद चाहता हूं और ईश्वर से प्रार्थना भी करता हूं कि मेरा बेटा सकुशल घर वापस आ जाए। और तुम तो एक चतुर जासूस हो। तुम्हें इसके लिए गलत नहीं, सही प्रयास करने चाहिएं। मुझे भय है कि कहीं उसे डाकू उठाकर नहीं ले गए हों।" वे क्षण-भर चुप रहकर पुनः बोले, "जब से तुमने उसके गुम हो जाने की खबर अखबार में छपवा दी है, तब से पुलिसवालों, दूसरे परिचितों एवं अपरिचितों ने मेरे नाकों में दम कर दिया है। हर समय मतलब-बेमतलब तंग करते रहते हैं और बिना पूछने पर भी पुलिसवाले कहते हैं, 'खोज ज़ोर-शोर से जारी है।' मैं तुम्हें पूछता हूं कि तुम्हें ऐसा करने से क्या मिला ?"

'ये इस उम्र में भी दुःख का अभिनय कितना उम्दा कर रहे हैं ?' मैंने एक बार फिर अपने मन में कहा। 'लगता है कि यह वह आदमी नहीं है, जो मुझे पहले-पहल मिला था। जो बहुत कम बोलता था और जिसके चेहरे पर कोमलता नाम की हल्की कांति भी नहीं थी।'

मैं उठा और अपनी बात का अन्त करता हुआ बोला, "आपको मालूम रहना चाहिए कि अखबारवाले बाल की खाल खींचते हैं। अच्छा यही होगा कि आप अपने बेटे को बुला लीजिए और उसे साफ-साफ कह दीजिए कि तुम्हारी बहू पवित्र है। यह सब मेरे द्वारा फैलाया गया ज़हर था।"

मैं उनका उत्तर सुने बिना ही बाहर चला आया।

"बृज, बृज, बृज !" वे ज़ोर से चीखे।

पर मैंने उनकी ओर पलटकर नहीं देखा। वस्तुतः मेरे मन ने उनको देखना स्वीकार भी नहीं किया। क्योंकि ऐसी बात सुनकर उनके चेहरे पर कितनी भयंकर प्रतिक्रिया हो सकती है, इसे मैं खूब जानता था।

मैं जल्दी-जल्दी सीढ़ियां उतर गया।

बड़े बाबू का चेहरा संताप से पीला पड़ गया और उन्होंने निःशक्त प्राणी की तरह अपनी गर्दन को धीरे-धीरे उठाया।

उन्होंने ज्यों ही दर्पण में अपना चेहरा देखा त्यों ही उन्हें पहली बार ऐसा महसूस हुआ कि वे बूढ़े हो गए हैं। उनका सारा खून कहीं गायब हो गया है। उनके चेहरे पर अनेक झुर्रियां हैं।

वे निराशा से मन ही मन तड़प उठे, 'यह मानवता के हामी अपनी मानवता से दूसरों को क्यों परेशान करते हैं? मैं एक व्यापारी आदमी हूं और मुझे येन-केन प्रकारेण अपने धन को दिन दूना और रात चौगुना करना चाहिए पर यह वृज, मेरी कठिनाई से की गई सारी योजना को असफल कर रहा है। मैं बर्बाद हो जाऊंगा। मैं लुट जाऊंगा।' —

वे अर्थ-पिपासु की तरह चहलकदमी करने लगे।

'वह जरूर सारी घटना को अखबार में छापेगा। यह भी सही है कि वह उसमें यह भी लिखेगा कि इसमें मेरा हाथ है। और लोग यह सब जानते ही मुझे अपमानित करेंगे और मुझे राक्षस तक कहेंगे। इस एक घटना के पीछे लोग भूली हुई बातों को दुहराएंगे जैसे भगत की मिल का हड़प जाना, अपनी बीवी को भगत को···और उसकी बीवी से खुद······! कुन्दनलाल की रकम। बैंक का फेल करना और सम्पत को अफीमची बनाकर निकम्मा करना।'

वे इन सब बातों को याद करते-करते तड़प उठे और अन्त में टूटकर पड़ गए। उन्हें महसूस हुआ कि वे निर्जीव हो रहे हैं।

तभी फोन की घंटी बजी।

बड़े बाबू ने अरुचि से रिसीवर उठाया, "हलो!"

"मैं पुलिस इन्स्पेक्टर घोष बोल रहा हूं। क्या आपको छोटे बाबू की कोई सूचना मिली? हम अपनी ओर से अत्यन्त प्रयत्न कर रहे हैं।"

"हां-हां, वे आ रहे हैं। आप तंग न करें।" वे अनायास कह उठे। लगता

था कि वे अत्यन्त आतंकित हो गए हैं।

उन्होंने रिसीवर रख दिया और अपने चेहरे पर आए पसीने को पोंछने लगे। वे अवश थे और उनकी आकृति पर अरुचि की भावना नाच रही थी।

और सचमुच तीसरे दिन संतोष आ गया और उसने इतना ही कहा, "मैं कुछ दिन आराम करना चाहता था इसलिए चुपचाप यहां से खिसक गया।"···

···बड़े बाबू उन दिनों कलकत्ता नहीं रहे। वे बाहर चले गए थे। वे जानते थे कि सैकड़ों लोग उन्हें बधाई देने आएंगे और वे उनकी झूठी बधाइयों और अपने कृत्रिम सहानुभूतिपूर्ण उत्तरों से परेशान हो जाएंगे।

मैं और नीता उसे स्टेशन पर लेने गए थे।

वह मुझसे कुछ अधिक नहीं बोला। वह बहुत उदास था और उसके चेहरे पर सूखापन था।

मैं उसी रात संतोष के बंगले गया।

वह अपने दफ्तरों की फाइलों में व्यस्त था। उसके कमरे के बाहर कई व्यक्ति बैठे थे जो उससे मिलने को इच्छुक थे। यह अभिनय वह सिर्फ इसलिए कर रहा था कि लोग उसके बाहर जाने के पीछे किसी विशेष रहस्य को न समझें। इस तरह की कार्य-व्यस्तता उसके उद्देश्य की पुष्टि में सहायक ही सिद्ध हो रही थी।

मेरे आने की सूचना पाकर वह उठकर बाहर आया।

सभी उम्मीदवारों को उसने अभी जाने को कह दिया।

हम दोनों ने साथ-साथ भोजन किया। भोजन करते-करते मैंने पूछा, "तुम भाभी से मिले?"

"नहीं।"

"तुम्हें उससे तुरन्त मिलना चाहिए।" मैंने सहज भाव से कहा, "वह बहुत दुःखी होगी। उसे अपने व्यवहार के लिए दुःख है। और तुमने भी व्यर्थ ही

उसपर सन्देह किया। तुम्हारे चले जाने से उस बेचारी को हार्दिक कष्ट पहुंचा। मेरी समझ में नहीं आता कि तुमने अपने मस्तिष्क में इस प्रकार की भ्रांत-निराधार धारणाएं बना कैसे लीं?"

वह मूक रहा।

"अगर तुम नहीं आते तो सचमुच में नीता आत्महत्या कर लेती और तुम्हें एक अत्यन्त भद्दी, अनपढ़ और जाहिल लड़की को अपनी पत्नी स्वीकार करना पड़ता जो तुम्हारे जीवन में जहर के सिवाय कुछ भी नहीं घोल सकती थी।"

वह इस बार भी मूक रहा।

"मुझे तुम्हें पाने के लिए रात-दिन एक करने पड़े। यह मेरा सौभाग्य ही समझो कि यहां के नौकर-चाकर मुझे बल देते रहे वर्ना मुझे यह पता कदापि नहीं लगता कि तुम्हें गायब करने में बड़े बाबू का हाथ था और वे यह भी जानते थे कि तुम कहां हो।"

"मैं अपनी मर्जी से गायब हुआ था।"

"गलत।" मैंने तुरन्त कहा, "नीता का उस लड़के से किसी तरह का अनुचित सम्बन्ध नहीं था और न है। मैंने इसकी पूरी जांच की है और तुम्हें बताए देता हूं कि तुमने उस लड़के और नीता के बारे में जो भी बातें सुनी हैं, वे निराधार हैं और बड़े बाबू के इशारों पर की गई थीं। नीता ने भी उन्हींका संकेत पाकर तुम्हारा कठोर शब्दों में विरोध किया था। मैं खुद हैरान हूं कि आदमी इतना नीच कैसे हो सकता है। क्षमा करना, मैंने तुम्हारे बाप के लिए अपमानसूचक शब्द का प्रयोग किया है। धन का लालच इस युग में मैंने कई आदमियों में देखा है और वे उसके लिए तरह-तरह की निम्न से निम्नतर तिकड़में भी करते हैं पर इस तरह की जलील तिकड़में सचमुच ही अत्यन्त निकृष्ट कोटि का आदमी ही कर सकता है।" और मैंने उसे सारी बातें विस्तृत रूप से बताई।

उसने भोजन करना छोड़ दिया। वह उठकर चला गया। ब्राह्मणी को यह अच्छा नहीं लगा और उसने मुझे घूरकर देखा जैसे उसकी बुझी-बुझी आंखें मुझे घृणा से देख रही है।

मुझे हैरानी हुई कि संतोष ने तुरन्त वापस आकर मुझसे कहा, "अब तुम जा सकते हो, अच्छा हो कि तुम मुझसे कुछ दिन मिलते रहो। अभी कुछ दिन मुझे तुम्हारी ज़रूरत है। मैं बहुत परेशान हूं, परेशान।"

मैं चला आया।

इसके बाद मैंने उससे कई बार पूछा कि तुम्हें यहां आने के लिए किसने मजबूर किया, इसका उत्तर उसने मुझे नहीं दिया। कदाचित् उसे भय था कि इस सत्य को प्रमाणित रूप से बताकर वह अपने को मेरे कब्ज़े में कर देगा। पंजीवादी युग का अविश्वास का रोग उसके प्रत्येक सदस्य में फैला हुआ है।

चौथे दिन बड़े बाबू आ गए।

दोनों बाप-बेटे आपस में बोले नहीं। बड़े बाबू को इससे बड़ा सदमा पहुंचा और इसके बाद वे बार-बार उन्मादग्रस्त प्राणी की तरह अपने कमरे में बैठे हुए बड़बड़ा उठते थे। आजकल उनका मन व्यापार में नहीं लगता था और उनकी यह इच्छा रहती थी कि वे संसार का सारा धन इकट्ठा करके अपने सामने रख लें और उसे देखते रहें। इस विचारमात्र से उनकी आंखों में लोमड़ी जैसी विचित्र धूर्तता और बन्दर जैसी चंचलता आ जाती थी और वे कुछ नोटों को हाथ में लेकर इस तरह देखने लगते थे जैसे कोई भक्ति-विह्वल होकर भगवान की मूर्ति को देखता है। वे घंटों अपने कमरे में बैठे रहते थे और समय-समय पर अपने व्यापारिक मामलों को सुलझाने के लिए जाया करते थे। उन्होंने कई बार यह प्रयास भी किया कि वे संतोष से मिलें। उसे व्यापारिक मामलों के ऐसे गुर बताएं जिसके द्वारा वह किसीसे भी मात न खाए पर संतोष ने उनसे एकान्त में बातचीत करने से साफ इन्कार कर दिया। जब कभी वे बुलाते थे तो वह उनकी ओर आदर-भरी नज़र से देखता भी नहीं था। वह नीची गर्दन किए उनकी बातें इस तरह सुनता था जैसे कोई प्रलापी का प्रलाप सुन रहा हो। और एक दिन संतोष ने एक प्लास्टिक का कारखाना बेच दिया। जब वह खबर बड़े बाबू को मिली तब वे पागलों की तरह चिल्ला पड़े, "सचमुच वह मेरी औलाद नहीं है। उसमें मेरा खून हो ही नहीं सकता। मैं उसे बर्बाद कर दूंगा। उसे सारी सम्पत्ति से वंचित कर दूंगा।" लेकिन वे कुछ भी नहीं कर

सके। वे यह जानते थे कि उन्होंने ही इन्कमटैक्स से बचने के लिए कई कंपनियों का मालिक उसे बना दिया है और उनमें से अब वह एक भी कम्पनी को छोड़ने को तैयार नहीं है। यहां तक कि वह उनके बारे में उनकी बहुमूल्य सलाह की भी जरूरत नहीं समझता था। तब वे कराह उठते और वर्षों से रुग्ण व्यक्ति की तरह टूट जाते।

बड़े बाबू कुछ दिन से बीमार थे।

उन्हें निमोनिया हो गया था। कुछ दिन उनकी हालत चिंताजनक रही। तेज़ बुखार में वे बार-बार चिल्ला पड़ते थे, "मेरी योजना पूरी हो जाती तो मैं एक कम्पनी और खरीद लेता, मैं सारा पैसा इकट्ठा कर लेता। द्वारकानाथ! मुझे मरने के पहले सबसे बड़ा धनवान बना दे।"

उनकी चिंताजनक हालत पर संतोष कई बार आया। मुझे लगा कि धीरे-धीरे वह भी अपने बाप की तरह निष्ठुर और पैसों पर केन्द्रित हो रहा है और उसकी आंखों में भी वही स्थिरता दिखलाई पड़ने लगी है जो दुष्ट और मंजे हुए व्यापारियों की आंखों में चमकती रहती है। वह आजकल उतना ही व्यस्त रहता है जितना कुछ दिन पूर्व उसका बाप रहता था। जीवन के अन्य धंधों के प्रति वह इतना ही उदासीन है जितना उसका बाप।

वह बाप की रुग्णावस्था में बार-बार नये-नये दस्तावेज बनाता और उन्हें उनपर दस्तखत करने के लिए विवश करता। बूढ़ा तब भयानक चीख के साथ चिल्लाता और कहता, "मैं जानता हूं कि तुम मेरी सारी सम्पत्ति हड़प जाना चाहते हो। मुझे दिवालिया करना चाहते हो पर मैं इसपर दस्तख्त नहीं करूंगा। निकल जाओ यहां से!"

मैं आपको एक बात और बताना भूल गया हूं कि बड़े बाबू को उस रोग ने दो नये रोग और दिए थे। पहला वे बहरे हो गए थे और दूसरा उनकी एक टांग में इतना भयानक दर्द रहता था कि वे चल-फिर नहीं सकते थे।

संतोष उनके पास बार-बार आता था तब वे पागलों की तरह चीखते थे और उसे लुटेरा तक कह देते थे पर संतोष उनके कथन का जरा भी बुरा नहीं मानता था। उसके होंठों पर वैसी ही निष्ठुर मुस्कान नाचती रहती थी। वह

संकेत में कुछ कहता और बड़े बाबू अन्त में मजबूर कैदी की तरह दस्तावेज़ों पर दस्तखत कर देते थे ।

मुझे यहां रहते लगभग अब एक वर्ष होने जा रहा था । संतोष चाहता था कि मैं उसके यहां ही रहूं और मैंने एक बार यह निश्चय भी किया कि मैं यहीं पर रहूंगा । मैंने एक मासिक पत्र की योजना भी बनाई जिसके लिए संतोष से धन की स्वीकृति भी मिल गई ।

मैं बीच-बीच में नीता से भी मिला करता था । उच्च वर्ग के दम्पतियों की तरह उसका जीवन था अर्थात् स्त्रियों को कुछ भी काम नहीं है और पुरुषों के पास फालतू समय नहीं है । कभी-कभी राजा की अनेक रानियों की तरह उनके प्रणय की रात्रि आती है तब वे प्रफुल्लता से विभोर हो जाती है ।

एक दिन मैं बड़े बाबू के पास गया ।

बाड़ी में घुसते ही मुझे सम्पत की याद आ गई ।

मैं उसके पास गया । वह मुझे देखते ही पुलक उठा । उल्लास से चीखता हुआ बोला, "बृज बाबू ! ओह ! मुझे इधर आपकी याद बहुत सता रही थी । मैं अपनी बात कहने के लिए उतना आतुर था जितना स्वाती-बूंद के लिए पपीहा । बैठिए ।"

मैं चुपचाप बैठ गया ।

वह इधर-उधर देखता हुआ बोला, "मैंने एक दिन कहा था न, बड़े बाबू का बड़ा भयानक अन्त होगा । मेरी वाणी प्रभु की वाणी की तरह सत्य हो रही है । आज वे एक कमरे में बन्द कैदी की तरह चीखते रहते हैं । मैं आपको कहता हूं कि इनकी मृत्यु भी मुझसे पहले होगी ।"

मैं शांत रहा ।

"मैं कभी-कभी उनके पास जाता हूं । ऐसी दशा में भी वे ईश्वर का नाम नहीं लेते बल्कि रुपयों की बात करते हैं । वाकई ऐसा लालची भी मैंने नहीं देखा । फिर भी मैं खुश हूं । क्योंकि मेरे दुश्मन को प्रभु ने खूब दंड दिया है । आह ! जब उनकी अर्थी निकलेगी तब मैं उसके पीछे इस थैली के सारे रुपयों को उछाल दूंगा ताकि बड़े बाबू की आत्मा शांति पाए ।"

मेरा दम घुटने लगा।

मैंने बड़े बाबू के कमरे में प्रवेश किया। कमरे में नीरवता छाई हुई थी। नीरवता के साथ धुंधलका।

शय्या पर सफेद चादर बिछी थी और सफेद चादर ओढ़े हुए पड़े थे बड़े बाबू जैसे कोई निर्जीव मुर्दा दफनाने के लिए रखा हुआ हो। मैं सिहर गया। स्तब्ध-सा खड़ा रहा।

महाराज ने कमरे में प्रवेश किया।

मैंने उससे पूछा, "छोटे बाबू और बहूजी यहां दिन में कितनी बार आते हैं?"

महाराज ने स्पष्ट शब्दों में कहा, "यहां वे पांच-सात रोज में एक बार आते हैं। बाबू सा! पैसेवालों का संसार सबसे अलग होता है। सारा धन अब छोटे बाबू के नाम हो गया है न, अब इस बूढ़े की किसे दरकार है?" उसका गला अवरुद्ध हो गया।

तभी बड़े बाबू ने आंखें खोलीं।

महाराज ने उनके पास जाकर अत्यन्त जोर से कहा, "वृज बाबू आए हैं!"

बड़े बाबू ने धीमे से करवट बदली। उनका मुख देखकर मुझे आघात पहुंचा। वह प्रचंड मुख और प्रभावशाली व्यक्तित्व जिसे देखकर आदमी नख से सिर तक दहल जाता था, वह अब मुरझा गया है और उस कांतिहीन मुख पर करुणा का सागर लहरा रहा है।

उन्होंने बुझी-बुझी आंखों से देखा और वे हठात उठ बैठे। उनके चेहरे की सफेदी बढ़ने लगी और आंखों की करुणा कठोरता में परिवर्तित होने लगी। मैंने समझा कि उनको पहले की तरह ही क्रोध के दौरे पड़ते होंगे, सो मैं उन्हें पकड़ने के लिए आगे बढ़ा। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि कहीं वे पलंग पर से लुढ़क न जाएं किन्तु उन्होंने मुझे बुरी तरह से धक्का दिया। मैं दीवार से जा टकराया। मुझे आश्चर्य हो रहा था कि उनमें अभी इतनी शक्ति कहां से आ गई है? कदाचित् युद्ध के सिपाही इसी हिंसक क्रोध के बल पर इतने जूझारपन से लड़ते हैं।

मैं हतप्रभ-सा खड़ा रहा।

वे अपने अगले दांतों से निचले होंठों को भींचते हुए कांपते स्वर में बोले, "तुम यहां क्यों आए हो ? मैं तुम्हें इस घर में खड़ा हुआ नहीं देख सकता। तुम मेरे असली दुश्मन हो। तुमने ही मुझे ऐसी हालत में पहुंचाया है। मुझसे मेरा सारा धन छीना है। याद रखना—मैं परलोक में भी तुमसे इसका बदला लूंगा। मैं तुम्हें माफ नहीं कर सकता। नहीं कर सकता।" उनकी जबान लड़-खड़ाने लगी पर अन्तस् का क्रोध उमड़ रहा था, "तुम्हारे कारण मेरा बेटा मुझसे सब छीनकर ले गया। वह मेरा दुश्मन बन गया। वह मुझसे घृणा करता है पर मैं भी उसे प्यार नहीं करता। क्या तुम समझते हो कि वह मेरा धन दबा लेगा ? नहीं-नहीं-नहीं ! मैं उसे परलोक में नहीं छोड़ूंगा। उसे मेरा पावना देना ही पड़ेगा। अन्यथा मैं अपने रोने से देवता के स्वर्ग को हिला दूंगा। क्योंकि आज मेरा बेटा जिस प्रतिष्ठा पर आसीन है, उसके पास जितना भी पैसा है, वह सब मेरी बदौलत है। मेरी मेहनत का फल है। वह तो एक राजा के दुष्ट और कमीन बेटे की तरह असमय ही सिंहासन का स्वामी बन गया है और मेरी संचित पूंजी को सिगरेट के धुएं की तरह उड़ा रहा है।"

बड़े बाबू को खांसी आ गई। मैं कुछ देर तक स्तंभित-सा खड़ा रहा। बाद में मुझे ऐसा लगा कि शायद बड़े बाबू का मानसिक संतुलन बिगड़ गया है।

खांसी रुकते ही वे पुनः हकलाते हुए बोले, "तुम यहां से चले जाओ वर्ना मेरी सांस सदा-सदा के लिए टूट जाएगी। मुझे तुम यमदूत की तरह भयंकर लगते हो क्योंकि तुम्हारे ही कारण मैं बेवक्त ही मरने जा रहा हूं। जाओ, निकल जाओ !" क्षण-भर रुककर वे बोले, "अगर मुझे यह मालूम होता कि तुम इतने खतरनाक हो तो मैं तुम्हें गोली से उड़वा देता और बाद में संसार का सारा रुपया इकट्ठा कर लेता।"

बूढ़े की आँखों में सांप की आंखों जैसी चमक थी।

मैं चला आया और सीधा संतोष से मिला। मैंने उससे कहा, "कुछ भी हो तुम्हें ऐसी दशा में अपने पिता के पास रहना चाहिए। ऐसी गंभीर स्थिति में तुम लोगों का अलगाव न्यायसंगत नहीं है।"

"तुम्हारी भावुकता अभी तक नहीं गई है। वे हमें देखकर काफी शोरगुल मचाते हैं। और डाक्टर ने हमें हिदायत दी है कि उन्हें जितनी शांति दी जाएगी, वे उतनी ही देर से मरेंगे।"

जब संतोष ये वाक्य कह रहा था तब उसके चेहरे पर तनिक कोमलता और करुणा नहीं थी। वह बाप के मरने की बात पुत्रजन्म की तरह मुझे सुना रहा था। मैं यह नहीं सह सका। मुझे लगा कि संतोष बदल गया है और कल यह अपने बाप की तरह जीवन के अन्य आयामों से विरक्त और निरपेक्ष होकर केवल पैसों को सर्वोपरि मानने लग जाएगा। उसका कोई अपना विशेष लक्ष्य नहीं होगा। पैसा ही उसका प्रभु और सत्य बन जाएगा।

और एक दिन मैं उसे बिना कुछ कहे ही भाभी से मिलकर चला आया। भाभी ने कारण पूछा, मैंने कहा, "मैं ऐसी तीव्र गति से संचालित यांत्रिक दुनिया में नहीं रह सकता। यहां की आदमियों की दौड़ का मैं धावक नहीं हूं। मैं उसी दौड़ में खूब तेज दौड़ सकता हूं जिसमें मानवीयता की रक्षा का ध्येय हो। यहां की दौड़ में बहुत पीछे रह जाऊंगा।" भाभी ने संतोष को मेरे जाने के बारे में कहा। संतोष का उलाहना-भरा एक पत्र आया था। उसके बाद कोई भी पत्र नहीं आया। आज मुझे पुनः अपने संवाददाता के पद पर काम करते एक वर्ष हो रहा है। सुना है संतोष को एम० पी० का टिकट भी मिल गया है।

० ० ०